

भाव-गीताञ्जली

(अशुभ < शुभ < शुद्धभाव)
(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

निमित्त:-बिटिया सुश्री जिनकृपा जैन द्वारा प्रथम इष्ट
श्री महावीर जी, श्री पद्मपुराजी तीर्थ प्रथम दर्शन

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

“परम देव-शास्त्र गुरु” अनंत कृपा श्री आदिनाथजी दिगम्बर जैन
दिव्य चैत्याल्य “गुरु प्रतीक्षालय” चीतरी (डूंगरपुर)

ग्रंथांक-322

संस्करण-2019

प्रतियाँ -500

मूल्य-151/-

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 08233-734502

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आशीर्वाद पत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी को प्रतिनमोस्तु सहित आशीर्वाद।

आप गीताञ्जली के माध्यम से धर्म की प्रभावना कर रहे हैं। आपने अधिकतर सभी विषयों पर लिखा है। आप इसी तरह अनवरत रूप से अपनी लेखनी चला कर भव्य जीवों का धर्म मार्ग प्रशस्त करें तथा आप निस्पृह साधना के द्वारा समस्त जन-जन पर दिगम्बर जिन धर्म की अमिट छाप छोड़े। आप स्व कल्याण तो निश्चित रूप से कर ही रहे हैं और आपकी लेखनी, पर-कल्याण करने में परम सहायक बने-यही आशीर्वाद-

ग.आ. कुन्थुसागर

28/6/2019

श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि

आचार्य श्री कनकनन्दी जी मुनिराज

ऐसे हैं गुरुदेव हमारे.....

जैन विश्व भारती लाडनूँ सहित 59 विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के साहित्य पर पी.एच.डी., एमफिल और डी.लिट की जाती है। इन कोर्स को करने वालों को भारत सरकार द्वारा 25000 प्रति माह स्कॉलरशिप प्रदान की जाती है। आचार्य श्री कनकनन्दी जी के साहित्य यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त है।

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव अद्वितीय ज्ञानी हैं। वे 30 भाषाओं के ज्ञाता हैं उसमें से 14 भाषा व्याकरण सहित जानते हैं। विश्व में पढ़े जाने वाले लगभग सभी विषयों को पढ़ते और पढ़ाते हैं। ऐसा कोई विषय बाकी नहीं जिसका ज्ञान उन्हें ना हो। वे वर्तमान के सबसे एडवांस विषय क्वॉन्टम थ्योरी व Quantum thoery, Black hole thoery को पढ़ते और पढ़ाते हैं यही कारण है कि इसरो के वैज्ञानिक तक उनसे अध्ययन करने आते हैं। वर्तमान में इसरो के अनेक वैज्ञानिक गुरुदेव के शिष्य हैं और पूरे विश्व में अनेक वैज्ञानिक शिष्य हैं।

अलौकिक गणित को पूरे विश्व में 3 (तीन) या 4 (चार) लोग ही जानते हैं उसमें से आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव एक हैं। गुरुदेव ज्योतिष, मंत्र मंत्र विज्ञान,

शकुन विज्ञान, अंग स्फुरण, विश्व के 40 दर्शन, राजनीति, अंतर्राष्ट्रीय कानून, अलौकिक गणित, 12 प्रकार का मनोविज्ञान, इतिहास, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, बायोलोजी, भूगोल, अर्थशास्त्र, गणित आदि 30 प्रकार के विषयों को पढ़ते और पढ़ाते हैं।

आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव पूरे नदी संघ के साथ-साथ वर्तमान में 20 आचार्य व 300 साधुओं के शिक्षा गुरु हैं।

सन् 1985 शमनेवाड़ी (कर्नाटक) में आचार्य श्री कुन्थुसागरजी गुरुदेव, आचार्य श्री देशभूषण जी गुरुदेव के सानिध्य में 50 साधुओं को धवला ग्रंथ का स्वाध्याय कराया/(शिविर लगाया) गया। उसमें आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव को शिविर का प्रशिक्षक नियुक्त किया गया। गुरुदेवों ने उनके ज्ञान को देखकर उनको सर्वप्रथम सिद्धान्त चक्रवर्ती की उपाधि प्रदान की।

आचार्य श्री देशभूषणजी गुरुदेव, आचार्य विमलसागरजी गुरुदेव व आचार्य भरतसागरजी गुरुदेव इनको कलिकाल के अकलंक व समंतभद्र कह कर पुकारते थे।

गुरुदेव लगभग 315 से अधिक पुस्तकें लिख चुके हैं। पिछले 50 वर्षों से प्रतिदिन 10-12 घंटे अध्ययन-अध्यापन कराते हैं।

विशेष:-ध्यान योग्य विषय यह है कि उपर्युक्त महान् कार्य के साथ-साथ अन्य धर्मावलम्बी शिष्य, भक्त आचार्य श्री से आधुनिक वैज्ञानिक व्यापक दृष्टिकोण से अध्ययन करके विश्व धर्मसभा मेलबोर्न (ऑस्ट्रेलिया) से लेकर देश-विदेश के विश्वविद्यालय से लेकर 5 महादेश 1. एशिया, 2. अमेरिका, 3. ऑस्ट्रेलिया, 4. यूरोप, 5. अफ्रीका (Africa) में प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। उपर्युक्त अन्य सभी कार्य उनके भक्त, देश-विदेश के शिष्य स्वेच्छा से, स्वभावना से (स्वप्रेरित) तन-मन-धन समय-श्रम से कर रहे हैं।

आचार्य श्रीसंघ ग्राम एवं जंगल में रहकर एकांत, मौन में, निस्पृह, समता से ध्यान-अध्ययन, लेखन, शोध-बोध, प्रशिक्षण में ही रत रहते हैं। बाह्य आडम्बर, दबाव, प्रलोभन, धन संग्रह, लोक संग्रह, गाजा-बाजा, होर्डिंग, पत्रिका, निमंत्रण कार्ड, मंच माईक से प्रतिज्ञा पूर्वक 1981 से ही दूर रहते हैं।

आचार्य श्री उपरोक्त आगम अनुकूल स्वप्रतिभा एवं साधना के योग्य स्थान में

ग्राम जंगल आदि में प्रववास-निवास कर रहे हैं और ऐसा ही पंच कल्याण विधान आदि धार्मिक कार्यक्रम में उक्त नियम विरुद्ध कार्य होते हैं वहाँ भी नहीं जाते हैं।

-मुकेश जैन आर्षमार्गी, उदयपुर (राज.)

(साभार-दिशाबोध व धर्मरत्नाकर पत्रिका)

“आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की आरती”

-आर्यिका आस्थाश्री

चाल:-एक लाल दरवाजे....

कनकनन्दी गुरु की, हम सब आरती करें।

घृत के दीप जलाकर गुरु की आरती करें।। (धु.)

हो SSS समताधारी...सत् धर्म प्रचारी.....

स्वाध्याय तपस्वी तेरी आरती करें...घृत के दीप...(1)

हो SSS वैज्ञानिक गुरुवर...हो भोले भाले ऋषिवर...

हो आत्मगवेषी...तुमसे ज्ञान वरें...घृत के दीप...(2)

पठन पाठन कराते...गुरु सबको सिखाते...

सूरी मौनी मनस्वी...निज का चिंतन करें...घृत के दीप...(3)

हो ज्ञान के सागर...हम तो हैं छोटी गागर...

ज्ञान ज्योति जगाने...गुरु की आरती करें...घृत के दीप...(4)

हे! सरस्वती नंदन...तुमको है मेरा वंदन...

तुम सम ज्ञानी बनने...‘आस्था’ नमन करे...घृत के...(5)

“कनकनन्दी नाम लागे प्यारा प्यारा नाम”

-क्षु.विनयगुप्त

(चाल:-श्याम तेरी बंसी)

गुरु अमृतवाणी...दिलाये जग में नाम....

कनकनन्दी नाम...लागे प्यारा प्यारा नाम...

गुरु तेरी वाणी ओ SSS ऋषिवर तेरी वाणी...

दिलाये जग में नाम

कनकनन्दी नाम भजो... भव्यों सुबह-शाम (धु.)

हो \$\$\$ समता ही लहरें... अध्यात्म की छैया

किसके नहीं है गुरु माता सखा भैया?

गुरुवर का दीवाना तो सारा जग धाम...

कनकनन्दी नाम कितना मीठा है ये नाम

गुरु तेरी वाणी ओ ऋषिवर तेरी वाणी...(1)

हो \$\$\$ ओ \$\$\$ ओ... कौन जाने गुरुवर जी हमको बुलाये

जिसको बुलाये वो उन्हीं का हो जाये

तीनों लोक नित ही करे श्री गुरु को प्रणाम

ऐसे मंगल-धाम... कनकनन्दी शुभ नाम

गुरु अमृतवाणी... दिलाये जग में नाम...(2)

हमने तो देखे हैं संत कई जगत् में

नामी-गिरामी रहते अपनी ही जगत् में

निस्पृह नहीं देखे न देखे निष्काम/(निर्विकार)

‘विनय’ कनक-गुरु ही अप्रतिम-सुखधाम

गुरु अमृतवाणी... दिलाये जग में नाम...(3)

कनकनन्दी नाम... लागे प्यारा प्यारा नाम

‘गीताञ्जली सुहानी’

-क्षु.विनयगुप्त

(चाल:- दीपावली मनाई सुहानी)

गीताञ्जली-रचना है सुहानी.....

गीताञ्जली लिखी है सुहानी.....

मेरे गुरुवर कनक का नहीं कोई सानी... गीताञ्जली.....

आगम-सार है जिसमें समाया....

जो पढ़ता सुलझता ही जाता

हो \$\$\$ महापंडित विद्वान् बन जाता

जीवन उसका सारा बदल जाता

जो भी धरे मन में इसकी निशानी

वो ही बनता महान् गुरु-सम ज्ञानी... गीतांजली...(1)

षट्-सहस्रादि ये रचनायें....

इक से बढ़कर इक ये लुभायें/सुहायें

हो ऽऽऽ ओ ऽऽऽ ओ... भाषा-ज्ञान सर्वश्रेष्ठ हो जाये

जग में नाम सहज ही कमायें

चारों अनुयोग हैं जिसमें समानी

मेरे गुरुवर कनक का नहीं कोई सानी...(2)

सतत गीत लिखों गुरुराया...

हम/जग भी बने आप हमसाया

हो ऽऽऽ ओ ऽऽऽ 'विनय' संग पाये सभी छत्रछाया

जुग-जुग जीयें मेरे गुरुराया

अमर रहें...गुरु और गुरुवाणी

मेरे गुरुवर कनक का नहीं कोई सानी...(3)

समताधारी कनक गुरुवर

बालकवि-कुमार वर्ण जैन, कक्षा-आठवीं ग.पु. कॉलोनी

(चाल: मेरा जूता है जापानी...)

मेरे कनक गुरु ज्ञानी...ज्ञान के साथ विज्ञानी...

समता में रहने वाले...ये गुरु हैं आत्मध्यानी...मेरे...(स्थायी)...

निकल पड़े हैं मोक्ष डगर पे...राग-द्वेष छोड़े...2

मञ्जिल कहाँ है कहा है जाना...सब कुछ गुरुवर जाने...2

स्वाध्याय तपस्वी श्रमण...आत्मज्ञानी गुरुवर...समता...(1)...

आपने आत्मा का ज्ञान दिया...गुरुदेव कॉलोनी न छोड़ो...2

आगम के आप हो ज्ञाता...आत्मा के ध्याता...2

निराडम्बर गुरुवर...निस्पृही गुरुवर...समता...(2)...

देव शास्त्र गुरु की निन्दा न करना...आपसे हमने सीखा...2

जिनवाणी का अध्ययन करते...गुरुवर ज्ञानी-ध्यानी...2

विश्व धर्म प्रभाकर...उदार सहिष्णु भावी...समता...(3)...

कुन्धुसागर गुरुदेव के शिष्य...बोध हमको देते...2

भावना हमारी चातुर्मास करो...ज्ञान प्रदान करो...2

अध्यात्म योगी मुनिवर...प्रज्ञा के धारी गुरुवर...समता...(4)

निज आत्म ज्ञान पाने हेतु...चरणों में 'वर्ण' है आया...2

देश-विदेश के विज्ञानी पढ़ते...श्रेष्ठ ज्ञान है मिलता...2

ये ज्ञानानन्दी गुरुवर...ये आत्मानन्दी गुरुवर...समता...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, दि.26/6/2019, अपराह्न 6.30

आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव श्रीसंघ परिचय

क्षु.विनयगुप्त

(चाल: सारे जहाँ से...)

सारे जहाँ से अच्छा...कनकश्रीसंघ हमारा।

हम हैं सितारे इसके...ये आसमाँ हमारा।।

दुनिया में सबसे न्यारा...गुरुश्रीसंघ हमारा।। (धु.)

आचार्य गुरु भगवन्...कनकनंदी नाम प्यारा।

साधुवृंदो की श्रद्धा का, एकमेव है सहारा...पाते सभी सहारा

दुनिया का सबसे श्रेष्ठ, दिखता यहाँ नजारा।। दुनिया में...(1)

मुनि श्री सुविज्ञसागर...स्थित-प्रज्ञता के आगर।

करते हैं श्रेष्ठ गायन...गीतांजली लुभावन...गीतांजली-प्रभावन

सर्वश्रेष्ठ-गीत-उद्योतन, गुरुकृपा से संभव सारा।। दुनिया में...(2)

आध्यात्मनंदी मुनिश्री...समता की न कभी इतिश्री।

जप ज्ञान ध्यान चिन्तन, हैं प्यारे उन्हें गुरुश्री...प्यारे हैं उन्हें कनकश्री

वागड़ के ये दुलारे...होता गौरव नयारा।। सारे जहाँ...(3)

सुवत्सलआर्या माँ...वात्सल्य का खजाना।

रखे है ध्यान सबका...किस्सा नहीं पुराना...है जाने सारा जमाना

वैयावृत्य साधुओं का...सीखें (ये) जहाँन सारा।। दुनियाँ में...(4)

नान्ही माताजी न्यारी...श्री संघ की दुलारी।

सुवीक्ष नाम सोहें...नंदौड़-गौरव मोहें...नारी का गौरव सोहें
हैं शांत भाव सारा...करता शुभ का ईशारा।। दुनिया में... (5)
विनयगुप्त जैसे साधु...अनेकानेक गुरु के चरे
कनकगुरु से सीखें...छूटें लंद-फंदो के फेरे...मेटे भवों के फेरे
‘मैं’ कनकगुप्त का नन्दन...आता रहूँ दुबारा।। दुनिया में...(6)
दादाश्री सोहनलाल...करते सबको मालामाल।
कनकगुरु श्रीसंघ का...दायित्व-देखभाल...लेते हैं सब संभाल
अपने सुअनुभवों से...करते हैं न्याय न्यारा।। दुनिया में...(7)
आचार्य श्री कनकनन्दी...दें आध्यात्म की आनन्दी।
स्वाध्याय मनन चिन्तन...प्रखर ज्ञान दें सानंदी...प्रखर ज्ञान दें सानंदी
महाक्रान्तिकारी गुरुवर...शिक्षा लें जग ये सारा।। दुनिया में...(8)
दुनिया भर में फैले...सब शिष्य भक्त सारे/(न्यारे)
करते हैं धर्म प्रभावन...ज्ञान अध्यात्म धारे...सुज्ञान-विज्ञान धारे
महती कृपा गुरु की...मिलती रहे हरबारा/(बारंबारा)।। दुनिया में...(9)
सारे जहाँ से अच्छा...कनक श्रीसंघ प्यारा।
हम हैं सितारे इसके...ये आसमाँ हमारा...ये गुलसिता हमारा।।

“समता आगर-श्री कनक ऋषिवर”

-शु.विनय गुप्त

चाल: मेरे नैना सावनभादो...

समता आगर कनक ऋषिवर...कर लो मन में वासा SSS

कर लो मन में वासा SSS

मेरे गुरुवर श्री कनकनंदी...कर लो मन में वासा SSS

कर लो मन में वासा SSS (ध्रु.)

वैश्विक है ज्ञान भरा/(तेरा), कुछ बूंद भी मुझको मिले...2

प्रखर प्रभा-सी तव ज्ञान की किरणें...सतत जहाँ को मिले

मेरा मन सुमन है खिले

तेजस्विता मुख पे है अलौकिक...झलके है हरवासा

कर लो मन में वासा...(1)

साहचर्य ज्ञान धनी...आगम विश्लेषक खरे...2

कठिन विषय लगते हैं सरल जब...वाणी श्रीमुख से झरें

सम्यक् श्रद्धान भरें

अभीक्ष्ण-ज्ञान उपयोगी विशारद...कोई नहीं आसपासा

कर लो मन में वासा...(2)

विश्व में सभी तरसें...गुरुवाणी सतत बरसें...हो SS ओ SS ओ SS

मैं भी ले जाऊँ...मैं भी पाऊँ, होड़ आपस में करें

कहूँ क्या समझ से परे?

निराडम्बर निस्पृह गुरु ज्ञानी...दुर्लभ तुमसी गुरुभाषा...कर लो...(3)

मौन साधना की होली...शुभ भावों संग दीपावली...2

पंच प्रकार स्वाध्याय बिना ना करते बात रंगीली

ना करते चर्चा भूलीभली

‘विनय’ गुरुवर श्री कनकनदी का...

वात्सल्य है भोली माँ-सा...कर लो...(3)

समता आगर कनक ऋषिवर...कर लो मन में वासा...कर लो...

“गुरु कनक ज्ञान-गंगा”

-क्षुविनय गुप्त

चाल:-ये जुल्फ अगर खुलके...

गुरु कनक ज्ञान-गंगा, बहती जाये तो अच्छा।

गुरु ज्ञान तेरा सबको, मिल जाये तो अच्छा॥ (धु.)

गुरु कनक की दीवानी है...ये सारी दुनिया...2

गुरु ज्ञान का अमृत पी...सुधर जायें तो अच्छा

गुरु ज्ञान तेरा खुलके...बिखर जायें तो अच्छा...(1)

गुरु कनक ने तो पाई है...अध्यात्म की गंगा...2

अब हम भी लगा डुबकी...तैर जायें तो अच्छा

गुरु ज्ञान तेरा सबको...समझ जाये तो अच्छा...(2)

भोगों ने डुबाई है...संसार की लुटिया...2

अब छोड़ इन्हें गुरु की...शरण पा लें तो अच्छा

गुरु ज्ञान रूपी गंगा...बहती जाये तो अच्छा...(3)

अध्यात्म ही है सबसे...महान् ज्ञान रे मनुआ...2

कनक ज्ञान से भावित हो...जाग जायें तो अच्छा

गुरु ज्ञान का अनुभव लें...संभल जायें तो अच्छा...(4)

कनक--ज्ञान विशद न्यारा...भटकों का सहारा...2

‘विनय’ छोड़ सभी झंझट...अपना लें तो अच्छा

गुरु कनक-ज्ञान गंगा, बहती जाये तो अच्छा...(5)

श्रद्धा-सेवा

- क्षु. विनयगुप्त

(चाल:-हमने जफा न...)

हमने श्रद्धा न सीखी...सेवा न हमें भायी

पापों से दिल लगाया...भव-भव की चोटें खायीं

हमने श्रद्धा न...(धु.)

अपने कुकर्मों खातिर...बरबाद हो गये हम...2

बरबाद हो गये हम...

किससे करें शिकायत...अब किसकी दें दुहाई

पापों से दिल लगाया और दिल पे चोट खायी...(1)

काँटो पे चलने वालों...मैं तुमसे पूछता हूँ...2

मैं तुमसे पूछता हूँ...

क्या अच्छी राह चलना...तुमने कभी न चाही

पापों से दिल लगाया...भव भव की चोटें खायी...(2)

दुनिया में सतपथिक ही...पाता सदा बधाई...2

पाता सदा बधाई...

स्व-परोपकार करना...मिलती तभी खुदाई

पापों से दिल लगाया...भव भव की चोटें खायी...(3)

श्रद्धा-सेवा से आरंभ...आनन्द मिलना प्रारंभ...2

आनन्द मिलना प्रारम्भ...

‘विनय’ ये मिले गुरु-कृपा से...जो नित ही आनन्ददायी

...शुभ शक्ति सदा सहायी...

हमने श्रद्धा न सीखी...सेवा न हमें भायी

पापों से दिल लगाया...भव-भव की चोट खायी...(4)

कनकनंदी जी गुरुदेव ने मुझे चिन्ता मुक्त किया!

रचयित्री-श्रीमती सुरुचि W/o डॉ. आशीष जैन, सागवाड़ा

चाल: (कभी यादों में आऊँ...)

नित्य आहार में आऊँ, नित्य स्वाध्याय में आऊँ

स्वाध्याय में आकर मैं तो ज्ञान का भण्डार पाऊँ

गुरु में अनंत शक्ति...मैं खिंची चली आऊँ...S नित्य...

जो गुरु ना मिलते होता ही क्या मुझको पाने को...

गुरु के तप को मैंने निहारा

गुरु के गुणों को मैंने बखाना

गुरु के गुण गाऊँ...SS हो हो नित्य...

मेरा ये सौभाग्य गुरु ने मुझको शिष्या माना...

मुझ पर उपकार किया है

चिन्ता से मुक्त किया है...

गुरु को हृदय में बिठा लूँ...हो...हो, नित्य...

सागवाड़ा, दि. 25/6/2019, प्रातः 10.00 बजे

“आचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव”

(अध्यात्म रूपी शान-धर्मरूपी शान)

-क्षु.विनयगुप्त

चाल:- ये जिंदगी उसी की है...

तू वंदना गुरु की कर, जो दुःखों से तार दें

जिन्दगी सँवार दे

तू वन्दना गुरु की कर (ध्रु.)

बिगड़ रहा है क्यूँ पड़ा, समय क्यूँ रहा है गिन...2

क्यूँ उलझनों में फँस रहा, ये जवानी चार दिन

जिंदगी का क्या पता...जले अरमानों की चिता...(1)

सरल सहज है मूर्ति, गुरु कनकनंदी श्रीयति...

जहाँ न है औपचारिकता, मिलती सदा शुभ ही मति

तू सौंप दे गुरु चरणों में...होगी निहाल जिंदगी...(2)

ऐ! अध्यात्म रूपी शान आ, आ SSS आ SSS आ SSS आ...

ऐ! धर्मरूपी शान आ...तुम्हें गले लगाऊँ मैं

तुम्हें ही रोज ध्याऊँ मैं...तुम्हें न भूल पाऊँ मैं

‘विनय’ कनकगुरु-संगति...

बड़भागी को मिले सदा...सर्वदा

सर्वदा...सर्वदा...सदा सदा ही सर्वदा...सर्वदा

तू वन्दना उन्हीं की कर जो दुःखों से तार दें

जिंदगी सँवार दे...तू वन्दना गुरु की कर।

सुनो गुरुवर...

-क्षु.विनयगुप्त

(चाल:-सुनो सजना...)

सुनो गुरुवर...सुनो ऋषिवर...

सुनो गुरुवर...पपीहे ने SSS

सुनो ऋषिवर...पपीहे ने...कहा सबसे पुकार के

संभल जाओ ऐ! जगवालों...चेत जाओ ऐ! जगवालों

कि आये ऋषि धर्मविज्ञान के

सुनो गुरुवर...सुनो यतिवर (ध्रु.)

ये वागड़/जहाँ की वादियाँ भी...नवाचार कर रही है...नये गीत गा रही...

घडियाँ पुण्योदय की...नजदीक आ रही है

नजदीक आ रही है...

गुरुवर ने जो छोड़े है...ऋषिवर ने जो छोड़े हैं
नये नगमें जो अध्यात्म के...सुनो दिव्यों...सुनो भव्यों...(1)
हैं ज्ञानी ध्यानी गुरुवर...खुद में ही जो समाये
अंदर बाहर एक...उन-सा कोई ना मिल पाये
...उन-सा कोई ना भाये

बड़े किस्मत वाले हैं...बड़ी किस्मत को पाये हैं
गुरु निश्चा में जो विराजमान है...सुनो भव्यों...सुनो दिव्यों...(2)...
ले लो सभी है! लाभ...आगे/(जीवन) का क्या ठिकाना
जिनकी/(गुरुकी) इक झलक को, तरसें है ये जमाना
मचले हैं ये जमाना

‘विनय’ भाये...सभी चाहें...2

कनक गुरु-ज्ञान छाये जहाँ में
तभी होना सही परिज्ञान...तभी पायें सही विज्ञान
जिनधर्म का इस जहाँ में...(3)...

गुरु-कनक--कीर्ति

-क्षु.विनयगुप्त

(चाल:-आज मेरे चार की शादी है...)

गुरु कनक कीर्ति निराली है...

गुरु की हर बात निराली है, गुरु की हर शान निराली है
बात निराली है...गुरु की हर अदा निराली है
लगता है जैसे यहाँ हर पल दीवाली है

गुरु कनक कीर्ति निराली है...(धु.)

अध्यात्म भावी गुरुवर...अपने में रहते गुरुवर...जय हो
भक्तों के रहबर गुरुवर...सबके दिल बसते ऋषिवर...जय हो
जो भी गुरु चरणों में आता...हृदय उसका खिल जाता...
हो \$\$\$ हो \$\$\$ ओ... कनकनंदी गुरुश्री चरणों की...

कृपा निराली है

गुरु कनककीर्ति निराली है...गुरु की हर बात...(1)

गुरु चरणों में आओ...सभी मिल झूमो गाओ...

गुरु-पूजा अर्चा में...नृत्य और गान गाओ...जय हो...

युवा बच्चे सब आओ...सोता हुआ भाग्य जगाओ...

हो SSS भगवान् रूप में गुरु मिले...

जहाँ में छाई खुशहाली है...(2)

अध्यात्म के रहस्य बताते...कठिन पहेली सुलझाते...

स्वाध्याय में डूबे रहते...अपेक्षा उपेक्षा ना करते...

निरवद्य ज्ञान है देते...सभी का मन हर लेते/सभी का दिल मोह लेते

हो SSS ओ SSS ओ...ओ

‘विनय’ कनक गुरुवर को पाना...

बात तो नसीबों वाली है

गुरु कनककीर्ति निराली है...गुरु की हर बात निराली है

बात निराली है...गुरु की हर शान निराली है

लगता है जैसे यहाँ सदा होली दिवाली है

“कनकवाणी”

-क्षु.विनयगुप्त

(चाल:-दीपावली मनाई सुहानी...)

कनकवाणी.....कनकवाणी.....श्री गुरुवाणी.....

कनकवाणी बड़ी ही सुहानी...कनकवाणी बड़ी ही सुहानी

जिसे पाते हैं बड़े ही भव्य पुण्यधानी...(ध्रुव)

सुज्ञान दीपक, अध्यात्म की ज्योति...2

क्षीर-नीर-विवेक की जलती निशानी...2

‘विनय’ ने जानी ये विलक्षण कहानी

गुरुवर कनकनंदी अपूर्व-ज्ञानी-विज्ञानी...(1)

वाणी खिरती गुरु की ऐसी...2

समवशरण में अरिहन्त जैसी...2
 हो SSS हित-मित-प्रिय ही देती सुनायी
 जग-जन-मन को जो सदा सहायी...(2)
 कनकवाणी महान् मुखर...गुरुवाणी महान् मुखर
 जो मिथ्यात्व की देती टक्कर....2
 हो SSS ढोंग प्रपंच से ये है बचाती
 जीवन मधुवन को है विकसाती
 कनकवाणी बड़ी ही सुहानी...कनकवाणी बड़ी ही सुहानी
 जिस पाते हैं बड़े ही भव्य-पुण्यधानी...
 कनकवाणी...श्री गुरु अमृतवाणी

नींव का पत्थर रखा कनक गुरु के नाम

सृजयित्री:-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल:बहुत प्यार करते हैं...)

बहुत आत्मविश्वासी...टीना बहन...
 दृढ़ संकल्पी है...टीना बहन...
 मनीष का साथ पाकर हुए धर्म में मगन SSS बहुत...(1)
 नींव का पत्थर रखा...कनक गुरु नाम से...
 हर ईंट जोड़ी गृह की...कनक गुरु नाम से...
 मंगल प्रवेश कराके...2 हुए खुशी से मगन।। बहुत...(2)
 ग्रीष्मकालीन प्रवास में...आत्माबोध पाया...
 भावी भगवान 'मैं' हूँ...यह बोध पाया...
 आत्मा की शक्ति का...2 हुआ है सुज्ञान/(भान)।। बहुत...(3)
 कॉलोनी निवासी...भक्त शिष्य गण...
 चारों दान लाभ लेकर...हर्षित जन-गण...
 अपूर्वार्थ ज्ञान पाकर...2 प्रसन्न है मन।। बहुत...(4)
 आनन्द तीर्थ बना...‘पंचोरी’ भवन...
 ज्ञानधारा सतत बही...2 रात हो या दिन...

वात्सल्य भाव से हुआ...2 सबका मिलन SSSII बहुत...(5)

संदीप मीना माही हेनी सिद्धम्...

मनीष टीना वर्ण क्रिया आदि बहन...

पंचोरी परिवार को लगी...2 धर्म की लगन SSSII बहुत...(6)

ग.पु.काँ. दि-30/06/2019 मध्याह्न

गुरु कनकनन्दी सानिध्य से स्व-ज्ञान मिलता है!

रचयित्री:-श्रीमति मीना संदीप जैन, सागवाड़ा

(चाल:-प्रभु नाम जपने से...)

गुरु कनकनन्दी सानिध्य से, हमें ज्ञान मिलता है...

गुरुवर के आशीष से हर भक्त खिलता है...

आत्मज्ञान के दीप से मन पुलकित/हर्षित/प्रफुल्लित होता है...

श्री/गुरु कनकनन्दी...(ध्रु.)

श्री कनक गुरु गुण गाकर...हाँ गाकर...

भव पार हुई मैं आत्म सुख को पाकर...

स्वाध्याय प्रतिदिन करके...हाँ करके...

मैं मुक्त हुई निंदा/(क्रोध) के बंधन से...

गुरुवर के आशीष से हर भक्त खिलता है

आत्मज्ञान के दीप से...(1)

गुरुवर की आहार चर्या में...चर्या में, शिष्य स्वाध्याय की चर्चा करते हैं...

अध्यात्म ज्ञान है गहरा...हाँ गहरा...कनक सूरी ने इसको कैसे जाना?...

मीना ने 'मैं' को न जाना...ना जाना...गुरु कनकनन्दी के माध्यम से पहिचाना...

गुरुवर के आशीष से मैंने कविता बना दी है...

इसका पूरा श्रेय 'टीना-मनीष' को जाता है...(2)

गुरुवर के आशीष से हर भक्त/मेरा मन खिलता है

आत्मज्ञान के दीप से मन हर्षित होता है।

कनक गुरुवर हम सभी को कभी न छोड़ो

रचयिता-कुमार गर्व जैन, ग.पु.काँ.

सुपुत्र-राजेश कुमार जैन

(चाल:तेरी मिट्टी में मिल जावा...)

ओ कनक गुरु पश्चात्ताप नहीं जो तेरे लिए सौ दर्द सहे।

चरणों में तेरे आकर ही, ये ज्ञान की अमृत धारा बहे।। (स्थायी)

स्व-आत्मा मैं रम जाऊँ, तेरे चरणों में झुक जाऊँ, इतनी शक्ति दो गुरुवर

तेरे गीतों को मैं गाऊँ, स्वात्मा को भी मैं पाऊँ, इतनी शक्ति दो गुरुवर।। स्व आत्मा...(1)

कॉलोनी नगरी आये हो अब छोड़ के जाओ ना गुरुवर

मन करता है तेरे चरणों में नित ही रह जाऊँ ओ ऋषिवर...(2)

चार तारीख को विहार है नन्दौड़ ग्राम में

हम सभी भक्तों का मन है छोड़ के न जाओ यतिवर...(3)

आपके चरणों में गर्व का बारम्बार प्रणाम है

चरणों में तेरे आकर ही ये ज्ञान की अमृत धार बहे...(4)

ग.पु.काँ दि. -29/6/2019 रात्रि-11:00 बजे

भोले भाले गुरु कनकनन्दी

रचयित्री-श्रीमती निशा जैन, ग.पु. काँ.

(चाल:-ओ मेरे भोले भण्डारी...)

ओ मेरे भोले/(आध्यात्मिक) हैं गुरुवर जी, करे आत्मा की सवारी

कनक नाम रे...हो...कनकनन्दी रे! (स्थायी)

गुरु ने मैं का बोध कराया, जड़ से मिथ्यात्व हटाया।

गुरु ज्ञानी है...महाज्ञानी रे (विज्ञानी रे)...तत्वज्ञानी रे।।...(1) ओ मेरे...

जिनके हृदय में दया का वास...सब जीवों पर करुणा भाव।

ऐसे सूरीवर है...हो...ऐसे मुनिवर है।।...(2) ओ मेरे...

मन मैं ना कोई संकोच, नहीं राग और रोष।

गुरु निस्पृही है,-ऐसे तपस्वी है।।...(3) ओ मेरे...

गुरु के आगे सरस्वती वास, पीछे लक्ष्मी भी है साथ।

विद्या विशारद हैं...सरस्वती पुत्र हैं॥...(4) ओ मेरे...
टीना मनीष के घर में विराजे, समता-शान्ति ये बरसायें।
परोपकारी हैं...करुणाभावी हैं॥...(5) ओ मेरे...
कोई विषय नहीं है ऐसा, गुरु को ज्ञान नहीं है जिसका।
ऐसे जीनियस हैं...सिद्ध सारस्वत हैं॥...(6) ओ मेरे...
जिनके मुख में सरस्वती वास, कर दे सबका बेड़ा पार।
समताधारी है...शान्तिधारी है॥...(7) ओ मेरे...
गुरु ने आगम हमें सिखाया, जैन धर्म को बढ़ाया।
गुरु उत्तम हैं...सर्वोत्तम हैं॥...(8) ओ मेरे...

ग.पु.कों., दि.29/6/2019, मध्याह्न

यथा भाव तथाहि भावी

दुनिया एक बहुत बड़े आईने की तरह है। यह आपको आपका असली चेहरा दिखा देती है। अगर आप प्रेमपूर्ण हैं, दोस्ताना हैं, मददगार हैं तो दुनिया भी आपके लिए प्रेम भरी, दोस्ताना और मददगार साबित होगी। दुनिया वही है जो आप हैं।-थामस ड्रेयर

इंसान की ज़िंदगी का सबसे बड़ा सिद्धांत ही यह है कि आप वही बन जाते हैं, जो अधिकांश वक्त सोचते रहते हैं। यह अंतर्दृष्टि ही धर्म, दर्शन शास्त्र, आध्यात्म, मनोविज्ञान और हर कामयाबी का मूल है। आपकी बाहरी दुनिया आपकी भीतरी दुनिया का ही प्रतिबिंब है। अगर आप अपनी सोच को बदलते हैं तो आप अपनी ज़िंदगी को भी बदल सकते हैं।

आपकी सबसे बड़ी चुनौती और आपकी सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी, अपने भीतर मानसिक स्तर पर अपना वह आदर्श चित्रण करना है, जो कि आप बाहरी दुनिया में बनना चाहते हैं। ऐसा करके आप अपनी दिमागी ताकतों को सक्रिय करते हुए, ब्रह्मांड की ताकतों को अपनी ओर कर लेते हैं। आप अपनी ज़िंदगी पर पूरा नियंत्रण हासिल कर लेते हैं।

हज़ारों लोगों से यह सवाल पूछा गया कि वे हर वक्त क्या सोचते रहते हैं। कामयाब पुरुषों और महिलाओं ने बार-बार एक सी ही बात बताई है। वे पूरा वक्त यही सोचते रहते हैं कि उन्हें क्या चाहिए और वे इसे कैसे हासिल कर

सकते हैं। नाकामयाब और दुःखी, इसके विपरीत, उन बातों के बारे में बोलते या सोचते रहते हैं, जो वे नहीं चाहते। वे अपनी समस्याओं और चिंताओं के बारे में बात करते रहते हैं और अपनी जिंदगी के उन लोगों के बारे में जिन्हें वे बिलकुल नहीं चाहते। लेकिन, आपको ऐसा नहीं करना है।

जब आप लगातार अपने लक्ष्य और उसे हासिल करने के तरीके के ही बारे में बात करते हैं, तो यही आपकी आदत में शुमार हो जाता है। जब आप जो बनना चाहते हैं, उसी के बारे में बोलते और सोचते हैं तो आप ज्यादा सकारात्मक, उद्देश्यपूर्ण और रचनात्मक बन जाते हैं। जब आप अपने लक्ष्य की राह को लेकर एकाग्रचित्त होते हैं, तो आप एक ज़्यादा काम करने वाले प्रभावशाली व्यक्ति बन जाते हैं।

सीखा हुआ आशावाद

ज़्यादा कामयाबी और खुशी हासिल करने के लिए आपको शायद सबसे ज़्यादा ज़रूरत आशावाद के गुण की पड़ेगी। आप आशावादियों की ही तरह सोच को विकसित करके आशावादिता को सीख सकते हैं। हर क्षेत्र के हज़ारों सबसे कामयाब और खुश लोगों के इंटरव्यू के अनुसार आशावाद के जिंदगी में रूबरू होने के दो तरीके होते हैं। ये दिमाग की एक ऐसी सोच है जिसे सीखकर विकसित किया जा सकता है।

पहली बात, आशावादी हर परिस्थिति में (खासतौर पर नाकामी और सदमें की स्थिति में) से अच्छी बात को खोजने का प्रयास करता है। वे उजले पक्ष की ओर देखकर खुद को सकारात्मक रखने का प्रयास करते हैं। उन्हें हर बात का उजला पक्ष पाने में कामयाबी भी मिल जाती है।

दूसरा, आशावादी हर समस्या हर परेशानी में मूल्यवान् सबक खोजते हैं। वे यह मानते हैं कि अस्थायी नाकामी या बाधा दरअसल उनको सीखने का मौक़ा देने के लिए आई है। वे लगातार पूछते रहते हैं, “इस परिस्थिति से मुझे क्या सबक लेना चाहिए?” और उनको सबक मिल ही जाता है।

आपके दिमाग की संरचना कुछ ऐसी होती है कि आप अच्छी और मूल्यवान् बातों को तब तक नहीं खोज सकते, जब तक कि आपका अवचेतन पर पूरा

नियंत्रण न हो जाए। जब आप ऐसा कर लेते हैं, तो आप अपने और परिस्थिति के बारे में ज़्यादा सकारात्मक और ज़्यादा आशावादी हो जाते हैं। आपको लगता है कि जिंदगी आपके नियंत्रण में है। आप अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं।

बेहतरीन प्रदर्शन के सात क़दम

अच्छे मूल्यवान् सबक़ सीखने के अलावा, आशावादियों के अपने और अपनी जिंदगी के बारे में सोचने के सात तरीक़े होते हैं। इन्हीं सात विषयों के बारे में वे अधिकांश वक्त सोचते रहते हैं।

भविष्य के बारे में सोचें

पहला, सकारात्मक और खुश लोग भविष्य के बारे में ही सोचते हैं। अधिकांश वक्त वे भविष्य के बारे में ही बोलते और सोचते हैं। वे भूतकाल की बात करने की बजाय इस बात पर चर्चा करते या सोचते हैं कि वे कहाँ जा रहे हैं। वे अपने लिए संभव एक सुनहरे भविष्य की कल्पना करते हैं। आकर्षण के नियम के मुताबिक़ वे भविष्य की उम्मीदों और सपनों की ओर आकर्षित होते हैं और उनकी भविष्य की उम्मीदें और सपने उनकी ओर आकर्षित होते हैं।

अपने लक्ष्यों के बारे में सोचें

दूसरा, वे लक्ष्य के बारे में ही सोचते हैं। वे अधिकांश वक्त अपने लक्ष्य के बारे में ही बोलते और सोचते हैं। एक बार उन्होंने अपने आदर्श भविष्य की कल्पना कर ली कि फिर वे उसे स्पष्ट, लिखित लक्ष्य के तौर पर दर्ज कर योजना बनाकर हर रोज़ उसे साकार करने में जुटे रहते हैं। वे अपनी ऊर्जा को लक्ष्य हासिल करने पर ही केंद्रित कर लेते हैं। वे अपने लक्ष्यों को अपने भविष्य का नियंत्रण कर लेने देते हैं।

श्रेष्ठ बनने के बारे में सोचें

तीसरा, वे श्रेष्ठता के क़ायल होते हैं। वे जो भी काम करते हैं उसमें श्रेष्ठ बनना चाहते हैं। वे अपने क्षेत्र के दस फ़ीसदी श्रेष्ठ लोगों में स्थान बनाना चाहते हैं। वे अपने कार्य के महत्वपूर्ण क्षेत्रों (की रिज़ल्ट एरिया) की पहचान करके फिर हर एक में सर्वश्रेष्ठ बनने के अपने मापदंड तैयार करते हैं। वे अपने आप पर और उन मापदंडों पर हर दिन काम करते हैं और सुधार की प्रक्रिया को

कभी भी नहीं रोकते।

हल के बारे में सोचें

चौथा, वे हल के बारे में सोचते रहते हैं। वे समस्या की जगह उसके हल के बारे में ज़्यादा सोचते हैं। वे समस्या के लिए किसी को दोष देने की जगह यह सोचते हैं कि उसके हल के लिए क्या किए जाने की दरकार है। वे अपनी और अपने से जुड़े लोगों की रचनात्मकता को उभारने के लिए रचनात्मक सोच की तकनीकों को अमल में लाते हैं। वे अपनी समस्याओं को हल करने लायक लक्ष्य की तरह देखते हैं और इस बात में भी यकीन रखते हैं कि हर समस्या का एक तर्कसंगत हल खोजा जा सकता है।

परिणाम के बारे में सोचें

पाँचवा, कामयाब और खुश लोग बड़ी शिद्दत से परिणाम के बारे में सोचते हैं। वे हर दिन की पहले से ही योजना बनाकर रखते हैं। उनकी गतिविधियों की स्पष्ट प्राथमिकताएँ होती हैं। फिर वे उन बातों पर ध्यान देते हैं, जो उनके समय का सबसे ज़्यादा सदुपयोग करे। वे ढेर सारा काम करके सबसे ज़्यादा मेहनती व्यक्ति बनकर उभरते हैं। बहुत प्रभावी और कुशल होने के कारण, वे ज़्यादा काम कर लेते हैं और तेज़ी से आगे बढ़ते हैं। इस तरह वे अपने काम और दुनिया को कुछ ज़्यादा दे पाते हैं।

तरक्की के बारे में सोचें

छठा, आला दर्जे का प्रदर्शन करने वाले हमेशा तरक्की के बारे में सोचते हैं। वे लगातार पढ़ते रहते हैं, ऑडियो प्रोग्रामों को सुनते रहते हैं और अतिरिक्त कोर्स और सेमिनार अटेंड करते रहते हैं। वे अपने क्षेत्र में सबसे आगे रहने के लिए संकल्पबद्ध होते हैं। वे जानते हैं कि भविष्य क्राबिल लोगों का ही होता है और उन लोगों का भी जो अपने प्रतिद्वंद्वी से ज़्यादा जानते हैं। वे जानते हैं कि एक रेस शुरू हो चुकी है और वे भी उसका एक हिस्सा हैं। वे जीतने के लिए संकल्पबद्ध हैं।

काम के बारे में सोचें

सातवाँ, और किसी भी अन्य से ज़्यादा महत्वपूर्ण है कि सबसे कामयाब लोग

लगनशील होते हैं। वे यही सोचते हैं कि क्या करके वे अपने लक्ष्य की ओर ज़्यादा तेज़ी से आगे बढ़ सकते हैं। वे हर वक्त काम में जुटे रहते हैं। वे हकीकत की दुनिया में जीते हैं। वे वक्त की क़द्र करना जानते हैं। वे औसत व्यक्ति से ज़्यादा काम करके ज़्यादा फ़ासला तय कर लेते हैं। वे जितना ज़्यादा काम करते हैं, उतने ही बेहतर होते जाते हैं और वे जितने बेहतर होते जाते हैं, उतना ही ज़्यादा पैसा कमाने लगते हैं।

आप में असीमित संभावनाएँ हैं

हम मानवीय इतिहास के स्वर्ण युग में जी रहे हैं। आप जो कुछ भी बनना चाहते हैं, उसके लिए आज जितने मौक़े और संभावनाएँ हैं, पहले कभी नहीं थे। आप इस किताब को बाक़ी ज़िंदगी में ज़्यादा कामयाबी और ज़्यादा खुशियों के लिए मार्गदर्शक की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं। आपके लिए फिर एक बार 12 आधारभूत सोच पेश है:

1. अपनी सोच को बदलें—आपकी अपने, अपनी क़ाबिलियत, अपने में छिपी संभावनाओं के बारे में सोच-आपकी निजी अवधारणा-इस बात का फ़ैसला करती है कि आप आज क्या हैं और भविष्य में क्या होंगे। सौभाग्यवश निजी अवधारणा को सीखा जा सकता है। अपने दिमाग़ में आने वाले शब्दों, छवियों पर विचारों पर नियंत्रण स्थापित करके, आप अपने भविष्य पर पूरा नियंत्रण हासिल कर लेते हैं।

2. अपनी ज़िंदगी को बदलें—आपका इस दुनिया में आगमन संभावनाओं और असीमित योग्यता से भरे व्यक्ति के तौर पर होता है। बचपन में नकारात्मक आलोचना के कारण आपके भीतर नाकामी, नुक़सान, उपेक्षा और आलोचना का भय घर कर सकता है। आपकी निजी अवधारणा कमज़ोर हो सकती है जो आपको आगे बढ़ने से रोक सकती है। इन नकारात्मक भावनाओं पर नियंत्रण हासिल करके आप संभावनाओं के दरवाज़े खोलकर अपनी ज़िंदगी को ही बदल डालते हैं।

3. बड़े-बड़े सपने देखें—आपके लिए संभावित बेहतरीन ज़िंदगी का आगाज़

सुनहरे भविष्य की कल्पना के साथ होता है। ऐसी कल्पना कि अगर आपकी राह में कोई भी बाधा न हो तो आपका भविष्य कैसा होगा। कल्पना कीजिए कि आप अपने परिवार, अपनी आर्थिक स्थिति और अपनी निजी जिंदगी में कुछ भी बन, कर या पा सकते हैं। फिर सपनों को साकार करने के लिए विस्तृत योजना वाले लिखित लक्ष्य तैयार कीजिए।

4. धनवान् बनने का प्रण लें—आज ही अपने आर्थिक भविष्य पर पूरा नियंत्रण हासिल करने का संकल्प लें। वे काम करना शुरू करें, जो दूसरों ने आपकी ही स्थिति से आर्थिक तौर पर स्वतंत्र बनने के लिए किए थे। तय कीजिए कि आप कितना कमाना, रखना और हासिल करना चाहते हैं। इन आँकड़ों को लक्ष्यों की तरह तय करें। फिर पूरा वक्त उनके ही बारे में सोचें। दूसरों ने जो हासिल किया, आप भी कर सकते हैं।

5. जिंदगी की कमान थामें—आपकी जिंदगी के लिए आप ही मुख्य रचनात्मक शक्ति हैं। आप जो हैं या होंगे आपके द्वारा किए गए काम या किए जाने वाले काम की ही बदौलत होंगे। हर बात के लिए दूसरों पर दोषारोपण करने की बजाय आज ही अपने पर सौ फीसदी जिम्मेदारी लेने का संकल्प लें। अपनी निजी ताकत को इस्तेमाल करके, अपने विचारों, शब्दों और काम का नियंत्रण हासिल कर लें। अपने भविष्य के मालिक खुद बनें।

6. बेहतरी का संकल्प लें—सबसे ज़्यादा पुरस्कार और संतोष उन्हीं लोगों को मिलता है, जो अपने काम में बहुत अच्छे होते हैं। अपने क्षेत्र के दस फीसदी शीर्ष लोगों में स्थान बनाने का संकल्प लें। अपने उन कौशलों को पहचानें जिन्हें बेहतर बनने के लिए तराशना ज़रूरी है, बेहतर प्रदर्शन को अपना लक्ष्य बनाकर एक योजना तैयार करें और फिर हर दिन और बेहतर बनने के लिए काम करते जाएँ।

7. लोगों को प्राथमिकता दें—लोगों के साथ आपके रिश्ते की गुणवत्ता और मात्रा आपकी कामयाबी और खुशियों को सबसे ज़्यादा प्रभावित करती है। अपनी जिंदगी को इस तरह से व्यवस्थित करें कि आपके क्षेत्र के सबसे महत्वपूर्ण लोगों के साथ आला दर्जे के विश्वास भरे रिश्ते कायम हों। अपने संपर्क क्षेत्र में इजाफ़े

का प्रयास करते रहें। अन्य सकारात्मक और कामयाब लोगों के निरंतर संपर्क में रहें।

8.विद्वानों की तरह सोचें—आप मूलतः एक दिमाग है, जिसे हलचल के लिए शरीर दिया गया है। आप वो नहीं हैं जो आपको लगता है, बल्कि वो हैं जो आप सोचते हैं। आपके भीतर पहले की तुलना में ज़्यादा बेहतर सोचने की क्षमता है। जब आप सबसे होशियार और सबसे कामयाब लोगों की तरह सोचने लगते हैं, तो आपको भी जल्द ही उनकी तरह परिणाम मिलने लगेंगे।

9.दिमाग की ताकत पहचानें—आज विचार ही समृद्धि का मंत्र हैं। संभावनाओं के नियम के अनुसार आप अपने लक्ष्य को हासिल करने के लिए जितनी ज़्यादा संभावनाएँ तलाशेंगे, आपके सही वक्त पर सही जगह पर होने की संभावना उतनी ही बढ़ जाएगी। आपकी नए विचारों को पैदा करने की क्षमता असीमित है। इसलिए, आपके भविष्य में छिपी सम्भावनाएँ भी अनंत हैं।

10.दिमाग के घोड़े दौड़ाएँ—शीर्ष लोगों द्वारा सोचने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली कुछ रणनीतियाँ और तकनीकें हैं। अपनी परिस्थिति के विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए आप इनमें से किसी भी एक का इस्तेमाल कर ऐसी अंतर्दृष्टि और विचार पा सकते हैं, जो आपके पूरे नज़रिए और आपकी पूरी ज़िंदगी को ही बदलकर रख सकता है। आपके पास सोचने की जितनी ज़्यादा तकनीकें होंगी, आप अपने लिए उतने ही बेहतर ज़िंदगी बना पाएँगे।

11.अपना भविष्य खुद बनाएँ—भविष्य में झाँकने और फिर उस भविष्य को सुरक्षित करने के लिए उठाए जाने वाले क़दम, इतिहास में कामयाब कहे जाने वाले लोगों की सोच का आधार रहे हैं। सबसे ज़्यादा प्रभावी लोग अपनी ज़िंदगी की योजना काफ़ी सँभलकर बनाते हैं। वे हर संभावित ख़तरे को भाँपकर, उसके लिए पहले से ही तैयार रहते हैं। परिणाम यह होता है कि वे अपने आस-पास लोगों की तुलना में बेहतर तरीक़े से सोच सकते हैं और बेहतर फ़ैसले ले सकते हैं।

12.एक उम्दा ज़िंदगी जिएँ—आपके इर्द-गिर्द की दुनिया आपके भीतर की दुनिया से निर्धारित होती है। हर क्षेत्र में वे ही लोग सबसे ज़्यादा खुश, सबसे

ज़्यादा वेतन पाने वाले और सम्मानित हैं, जो उनके चारित्र के गुणों के लिए जाने जाते हैं। जब आप अपनी जिंदगी को सत्यनिष्ठा और साहस जैसे दो गुणों के इर्द-गिर्द बुनते हैं, तो आपके लिए हर दरवाज़ा खुल जाता है और आप वाक़ई खुश इंसान बन जाएँगे। आप अपनी सोच को बदलकर अपनी जिंदगी को बदल डालेंगे।

बस कर ही डालें!

मानसिक फ़िटनेस शारीरिक फ़िटनेस की तरह होती है। इसे हासिल करने और फिर बरकरार रखने के लिए काफ़ी वक्त और काफ़ी मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन यह आपके प्रयासों का वाक़ई बहुत ही सार्थक और मीठा फल है। आपको मिलने वाला वेतन भी असाधारण होगा!

जब आप अपने आप पर काम शुरू करते हैं, अपने भीतर वह स्पष्ट छवि बनाते हैं जो आप बाहरी दुनिया में बनना चाहते हैं, तो शुरुआत धीमी हो सकती है। लेकिन, जब आप जुटे रहते हैं, जब आप सही बातों को सही तरीक़े से करना जारी रखते हैं तो आपको किए गए काम के लिहाज़ से जल्द ही परिणाम भी हासिल होने लगेंगे।

आप क्या हो सकते हैं, क्या कर सकते हैं और क्या हासिल कर सकते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं होती। सिवाय उस सीमा के जो आप खुद तय कर लेते हैं। आप एक बहुत ही अच्छे और बेहद प्रतिभावान व्यक्ति हैं और ऐसे बहुत ही कम काम हैं जो आप लगन, शिद्दत और परिश्रम भरे प्रयासों से हासिल नहीं कर सकते। कामयाबी की कुँजी है कि शुरुआत आज ही करें और फिर कभी भी हार न मानें! (सोच बदलो जिन्दगी बदलो, ब्रायन ट्रेसी)

मेरा चित्त ही मेरा सर्वस्व

-आचार्य कनकनन्दी

चाल:-हे! मोर चित्त पुण्य तीर्थ...जागो रे धीरे...(रवीन्द्र संगीत)

हे! मेरे चित्त पूर्ण तीर्थ...जागो हे! धीरे/(पूरे)...

तेरे/(मेरे) अन्दर ही...तेरे/(मेरे) द्वारा...तू ही हे! पूरे...(ध्रुव)...

तू हो! चित्त...तू हो! पवित्र...तू हो! अनन्त/(शान्त)...
 तू ही श्रद्धा...तू ही प्रज्ञा...ध्यान व ध्येय/(ज्ञान व ज्ञेय)...(1)...
 तेरा उत्थान ही...मेरा उत्थान...तुम ही हो! मम स्वरूप...
 मैं ही हो तू...तू ही हो मैं...अभिन्न षट्कारक...2...(2)...
 तेरे पावन से...मैं हूँ पावन...अन्यथा पापी/(पतन)...
 तेरे शुभ से...मैं हूँ पुण्य...अन्यथा संक्लेश/(तनाव)...(3)...
 तेरे उत्थान है...गुणस्थान...आत्म का उत्थान/(उद्धार)...
 तेरे पतन है...मम बन्धन...संसार में भ्रमण/(पञ्च परिवर्तन)...(4)...
 तेरे उत्थान...हेतु मैं करूँ...तपस्या व त्याग...2...
 शोध-बोध...ध्यान ज्ञान...एकान्तवास-मौन...2...(5)...
 क्रोध मान...माया त्यागूँ...ईर्ष्या व तृष्णा/(परहानि-घृणा)...
 दीन हीन...अहं त्यागूँ...कुण्ठा व चिन्ता...2...(6)...
 परनिन्दा अपमान...वैरत्व त्यागूँ...प्रतिस्पर्द्धा व अन्धानुकरण...2...
 सरल सहज...शुचि बन्नूँ मैं...उदात्त व उदार...2...(7)...
 इससे तेरी...शक्ति बढ़ती...तेरी प्रगति भी होती/(मम उन्नति भी होती)
 आधि-व्याधि...उपाधि नशे...समता व शान्ति मिले/(आत्मशक्ति बढ़े)...(8)...
 तू ही मेरा...आध्यात्मिक हो...धर्म व सर्वस्व/(आत्मा व मोक्ष)...
 तेरे हेतु ही...सभी साधना करूँ...तू 'कनक' का निज/(आत्म) स्वरूप...(9)

विषयानुक्रमणिका

अ.सं.	विषय	पृ. स.
1.	आशीर्वाद-पत्र। ऐसे हैं गुरुदेव हमारे...	2
2.	आचार्य श्री कनकनंदी गुरुदेव की आरती	4
3.	कनकनंदी नाम लगे प्यारा प्यारा नाम	4
4.	‘गीताञ्जली सुहानी’	5
5.	समताधारी कनक गुरुवर	6
6.	आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव श्रीसंघ-परिचय	7
7.	समता आगर-श्री कनक ऋषिवर	8
8.	गुरु कनक ज्ञान-गंगा	9
9.	श्रद्धा-सेवा	10
10.	कनकनंदीजी गुरुदेव ने मुझे चिन्ता मुक्त किया	11
11.	आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव-अध्यात्म/धर्मरूपी-ज्ञान	11
12.	सुनो-गुरुवर	12
13.	गुरु-कनक-कीर्ति	13
14.	कनकवाणी	14
15.	नींव का पत्थर रखा कनकगुरु के नाम	15
16.	गुरु कनकनंदी सानिध्य से स्व-ज्ञान मिलता है !	16
17.	कनक गुरुवर हम सभी को कभी न छोड़े	17
18.	भोले भाले गुरु कनकनन्दी	17
19.	यथाभाव तथाहि भावी	18
20.	मेरा चित्त ही मेरा सर्वस्व	25

‘भाव-गीताञ्जली’

1.	मा जिनवाणी से जाना विश्व व्यवस्था	29
2.	अशुभ < शुभ < शुद्धभाव	35
3.	परम दिव्य दृष्टि (सुदृष्टि) से देख रहा हूँ स्व-परमसत्य	44

4.	अन्तः (स्व) प्रवृत्ति से पर (बाह्य) निवृत्ति	66
5.	सभी जीव शुद्धनय से शुद्धात्मा (परमात्मा)	82
6.	कम प्रयास से अधिक सफलता पाऊँ	96
7.	मुझ में ही मेरा सर्वस्व	112
8.	स्वयं का कर्ता भोक्ता मैं स्वयं	145
9.	हर जीव को विश्व में प्रसन्न करना असंभव	157
10.	क्या है धर्म? क्या है कर्म?	161
11.	सांसारिक सुख-मधु बिन्दु सम	162
12.	स्व आत्मा की आराधना विरुद्ध सभी काम-भाव त्याग करूँ	179
13.	कैसे हो उपलब्धि! ? (अनुभव सूक्तियाँ)	191
14.	पराश्रित बाह्य प्रभावना परे आत्म साधना करूँ	193
15.	कामी स्वार्थी की दृष्टि में सफलता या विकास	201
16.	हाय! रे ढोंगी (क्रूर, संकीर्ण) धार्मिक	214
17.	स्वहित की प्राथमिकता व प्रधानता से विश्वहित करूँ	215
18.	यदि होता दान आगम अनुसार तो...! ?	223
19.	सुशिष्य की सद्गुरु प्रति कृतज्ञता व व्यथा-ज्ञापन	234
20.	शिष्य आ. कनकनन्दी के लिए आ. कुन्थुसागर के विचार	255
21.	बिना बोली...चातुर्मास	258
22.	कलिकाल में जैन धर्मावलम्बियों में विकृतियाँ	259
23.	चातुर्मास में हजारों का कलश...	267
24.	एक अत्यन्त निस्पृही-महाज्ञानी दि.जैन सन्त	270

भाव-गीताञ्जली

मा जिनवाणी से जाना विश्वव्यवस्था

(चाल: मा मुझे अपने आँचल में छिपा ले...)

-आचार्य कनकनन्दी

जिनवाणी मा बताओ मुझे विश्वव्यवस्था....षट् द्रव्यव्यवस्था...

सर्वज्ञ देव से जो सुना...(ध्रुव)

जिनवाणी सुना रही है सुनो हे! पुत्र...विश्व की व्यवस्था अनादि से स्थित

अकृत्रिम शाश्वत षट् द्रव्य निर्मित...

जीव पुद्गल धर्माधर्म आकाश...काल सहित (षट्) निर्मित...सर्वज्ञ...(1)

इनके कर्ता धर्ता अन्य न कोई...स्वयंभू स्वयंपूर्ण स्वकर्ता धर्ता...

उत्पाद व्यय व ध्रौव्य संयुक्त (सहित)...

जीवन पुद्गल ही होते शुद्ध अशुद्ध...शेष चारों द्रव्य शाश्वत शुद्ध...(सर्वज्ञ)...(2)

अनादि अनन्तकाल से दोनों अशुद्ध...द्रव्य भावनोकर्म से जीव अशुद्ध...

अणु के बन्ध से पुद्गल अशुद्ध...

दोनों द्रव्य ही विश्व के प्रमुख द्रव्य...दोनों में भी जीव द्रव्य प्रमुख...सर्वज्ञ...(3)

दोनों द्रव्य की गति हेतु धर्म द्रव्य...स्थिति हेतुक अधर्म द्रव्य...

छहों (पाँचो) द्रव्य को स्थान देता आकाश

छहों (पाँचो) के परिणामन हेतु काल...स्व स्वभाव त्याग न करते द्रव्य...सर्वज्ञ...(4)

जीव शुद्ध बनते तब बनते मुक्त...रत्नत्रय द्वारा जब होते विशुद्ध...

द्रव्य भावनोकर्म को करके क्षय...

तब बनते परमात्मा परमेश्वर...अनन्त ज्ञान दर्शन सुखवीर्य...(सर्वज्ञ)...(5)

भेदादणु से पुद्गल बनते शुद्ध...शुद्ध अनन्तर बन्ध से बने अशुद्ध...

शुद्ध अशुद्ध प्रक्रिया होती अनन्तः...

शुद्ध जीव अशुद्ध न होते कदापि...कर्मक्षय से कर्म न बान्धे सिद्ध...(सर्वज्ञ)...(6)

अक्षय अनन्तान्त जीव होते लोक में...इनसे अनन्तगुण पुद्गल द्रव्य...

अणु स्कन्ध व वर्गणा तेईस...

धर्म अधर्म व आकाश एक-एक...लोकाकाश प्रमाण कालाणु असंख्य...(सर्वज्ञ)...(7)

एक जीव के आत्म प्रदेश होते असंख्य... धर्म अधर्म के (प्रदेश) असंख्य-असंख्य...

पूर्ण आकाश के प्रदेश अनन्तः...

ऐसा वर्णन विज्ञान को भी अज्ञात... 'सूरी कनक' जानकर हुए कृतज्ञ... (सर्वज्ञ)... (8)

ग.पु.कॉ. दिनांक-16-06-2019, अपराह्न 7.18

संदर्भ-

यत्र भावा विलोक्यन्ते ज्ञानिभिश्चेतनेतराः।

जीवादयः स लोकः स्यात्ततोऽलोको नभः स्मृतः॥(1)॥

जितने आकाश में जीवादिक चेतन-अचेतन पदार्थ ज्ञानी पुरुषों ने देखे हैं, सो तो लोक है। उसके बाह्य जो केवल मात्र आकाश है, उसे अलोक वा अलोकाकाश कहते हैं।

वेष्टितः पवनैः प्रान्ते महावेगैर्महाबलैः।

त्रिभिस्त्रिभुवनाकीर्णो लोकस्तालतरुस्थितिः॥(2)॥

तीन भुवनसहित यह लोक अन्त में सब तरफ से अतिशय वेगवाले और अतिशय बलिष्ठ तीन वातवलयों वेष्टित है और ताड़ वृक्ष के आकार सरीखा है अर्थात् नीचे से चौड़ा, बीच में सरल तथा अन्त में विस्ताररूप है।

निष्पादतिः स केनापि नैव नैवोद्धृतस्तथा।

न भग्नः किन्त्वनाधारो गगने स स्वयं स्थितः॥(3)॥

यह लोक किसी के द्वारा बनाया नहीं गया है अर्थात् अनादि-निधन है। भिन्न धर्मीगण इसे ब्रह्मादिक का बनाया हुआ कहते हैं सो मिथ्या है। तथा किसी से धारण किया हुआ वा थांमा हुआ हो, सो भी नहीं है। अन्यमती कच्छपकी पीठ पर अथवा शेषनाग के फन पर ठहरा हुआ कहते हैं, यह उनका भ्रम है। यदि कोई आशंका करे कि विना आधार के आकाश में कैसे ठहरेगा, भग्न हो जायेगा? तो उत्तर देना चाहिए कि, निराधार होने पर भी भग्न नहीं होता अर्थात् आकाश में वातवलय के आधार से स्वयमेव स्थित है।

अनादिनिधनः सोऽयं स्वयं सिद्धोऽप्यनश्वरः।

अनीश्वरोऽपि जीवादिपदार्थै संभृतो भृशम्॥(4)॥

यद्यपि यह लोक अनादिनिधन है, स्वयंसिद्ध है, अविनाशी है और इसका कोई ईश्वर स्वामी वा कर्ता नहीं है; तथापि जीवादिक पदार्थों से भरा हुआ है। अन्यमती लोक-रचना की अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं, वे सब ही सर्वथा मिथ्या हैं।

अधो वेत्रासनाकारो मध्ये स्याज्झल्लीनिभः।

मृदङ्गसदृशश्चाग्रे स्यादित्थं स त्रयात्मकः॥(5)॥

यह लोक नीचे तो वेत्रासन अर्थात् मोढ़े के आकार का है अर्थात् नीचे से चौड़ा है, पीछे ऊपर ऊपर घटता आया है और बीच में झालर के जैसा है तथा ऊपर मृदंग के समान अर्थात् दोनों तरफ सकरा और बीच में चौड़ा है। इस प्रकार तीन स्वरूपात्मक यह लोक स्थित है।

यत्रैते जन्तवः सर्वे नानागतिषु संस्थिताः।

उत्पद्यन्ते विपद्यन्ते कर्मपाशवशंगताः॥(6)॥

इस लोक में सब प्राणी नाना गतियों में संस्थित अपने अपने कर्मरूप फाँसी के वशीभूत होकर मरते उपजते रहते हैं।

पवनवलयमध्ये संभृतोऽत्यन्तगाढं

स्थितिजननविनाशालिङ्गितैर्वस्तुजातैः।

स्वयमिह परिपूर्णोऽनादिसिद्धः पुराणः

कृतिविलयविहीनः स्मर्यतामेष लोकः॥(7)॥

इस लोक को ऐसा चिंतवन करना चाहिए कि, तीन वलयों के मध्य में स्थित है। पवनों से अतिशय गाढ़रूप घिरा हुआ है। इधर उधर चलायमान नहीं होता और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित वस्तु-समूहों से अनादिकाल से स्वयमेव भरा हुआ है अर्थात् अनादिसिद्ध है, किसी का रचा हुआ नहीं है, इसी कारण पुराण है तथा उत्पत्ति और प्रलय से रहित है।

शिक्षा सामाजिक बदलाव का माध्यम तभी हो सकती है जब उसका सीखने से संबंध हो और पाठ्यक्रम समाजोन्मुखी हो। इसलिए शिक्षा की सामाजिक उपादेयता सुनिश्चित करनी होगी और हमें देश के विकास में शिक्षा को सहयोगी रूप में आगे लाना होगा।

ताकि विकास में सहयोगी बने शिक्षा

-गंगा सहाय मीणा

भारतीय भाषा केंद्र, जेएनयू में एसोसिएट प्रोफेसर।

वर्तमान में अंकारा विश्वविद्यालय (तुर्की) में प्रतिनियुक्ति पर।

भाषाओं से हमें कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। बच्चा जितनी भाषाएँ सीखे, उतना अच्छा है। अंग्रेजी सीखनी चाहिए। दुनिया की दूसरी भाषाएँ भी सीखनी चाहिए। भारतीय भाषाएँ भी सीखनी चाहिए। लेकिन माध्यम के तौर पर नहीं। एक विषय के तौर पर। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इससे बच्चे की बुनियाद मजबूत होती है।

भारत दुनिया के ऐसे देशों में शामिल हैं जहाँ बड़ी तेजी से बदलाव हो रहे हैं और उन बदलावों का माध्यम बन रही है शिक्षा। हम देखें तो पिछले दशकों में प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर नामांकन में अभूतपूर्व बढ़ोतरी हुई है। उच्च शिक्षा में भी नामांकन बढ़े हैं लेकिन नामांकन बढ़ने के अलावा भी शिक्षा के कई पहलू हैं, जिन पर विस्तार से बात करना जरूरी है। मसलन, शिक्षा के स्वरूप का प्रश्न, शिक्षा की गुणवत्ता का प्रश्न, शिक्षा और ज्ञान के संबंध का प्रश्न, शिक्षा और रोजगार के संबंध का प्रश्न और साथ ही शिक्षा की उपादेयता और सामाजिक बदलाव में इसकी भूमिका का प्रश्न।

आंकड़े गवाह है कि भारत में शिक्षित युवाओं की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है। शिक्षा अब अमीर और शहरी लोगों तक सीमित नहीं रह गई। गांव और गरीब तक भी शिक्षा पहुंच चुकी है। आज आप इस दुनिया के किसी भी हिस्से में जाइए। शिक्षा को लेकर एक वैश्विक जागरूकता का माहौल है। इसका असर भारत पर भी देखा जा सकता है। जो भी नई नीतियां बनती है, उनमें शिक्षा सबसे अहम मसला होती है। और जब भी आंकड़े प्रस्तुत करने होते हैं, उसमें भी शिक्षा प्रमुख बिंदु के रूप के सामने आती है। शिक्षा के स्वरूप को हमें वैश्विक संदर्भ में देखना होगा। हम जो शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, वह किस तरह ग्रहण की जा रही है, उसकी सामाजिक उपादेयता किस प्रकार की है! उदाहरण के लिए आप किसी शिक्षित के बारे में यही नहीं कह सकते हैं कि हां यह सिर्फ शिक्षित है। आपको यह जानना होगा

कि उनकी शिक्षा का स्तर क्या है, उसने किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है और स्कूलों, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में किस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है! आंकड़ों के स्तर पर ठीक है कि हम दिखा दें कि हम इतने प्रतिशत साक्षर हैं, राज्य की साक्षरता की दर यह है आदि। लेकिन साक्षरता और शिक्षा दोनों अलग चीजें हैं।

शिक्षा को, खासतौर से उच्च शिक्षा को समावेशी बनाने के लिए लड़कियों के साथ-साथ दलितों और आदिवासियों के लिए भी सरकार को विशेष योजनाएं और फेलोशिप शुरू करने की जरूरत है।

जब हम शिक्षितों की बात करेंगे तो फिर हमें उन्हें प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा में बांटना होगा, शोध में बांटना होगा। प्राथमिक शिक्षा एक तरफ सरकारी संस्थानों से प्राइवेट संस्थानों की तरफ लगातार रुख करती चली जा रही है, वहीं दूसरी तरफ लगातार महंगी होती चली जा रही है। एक जमाना था जब केवल सरकारी स्कूल हुआ करते थे, ट्रस्ट स्कूल हुआ करते थे और बहुत थोड़े निजी शिक्षण संस्थाओं तक चुनिंदा अमीरों के बच्चे पहुंच पाते थे। आज गरीब, किसान मजदूर भी अपने बच्चे को एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ाना चाहता है क्योंकि सरकारी शिक्षण संस्थाओं का स्तर लगातार गिरा है।

दुनिया के शिक्षाशास्त्रियों का कहना है कि प्राथमिक शिक्षा मातृभाषाओं में दी जानी चाहिए तो उससे बच्चे का विषय ज्ञान मजबूत होगा। वह चीजों को जल्दी से सीख पाएगा। लेकिन इसी देश में ज्ञान आयोग की सिफारिश है कि अब सभी बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए और उनके अंग्रेजी ज्ञान के आधार पर उनका मूल्यांकन होना चाहिए।

देश की प्राथमिक शिक्षा उसी दिशा में आगे बढ़ रही है और हमारे बच्चे विषय ज्ञान में पिछड़ते जा रहे हैं। भाषाओं से हमें कोई तकलीफ नहीं होनी चाहिए। बच्चा जितनी भाषाएं सीखे, उतना अच्छा है। अंग्रेजी सीखनी चाहिए। दुनिया की दूसरी और भाषाएं भी सीखनी चाहिए। भारतीय भाषाएं भी सीखनी चाहिए। लेकिन माध्यम के तौर पर नहीं। एक विषय के तौर पर। प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इससे बच्चे की बुनियाद मजबूत होती है और वह चीजों को आसानी से समझ पाता है। निजी शिक्षण संस्थाओं के दबाव में एक चीज अच्छी हुई है कि

एक्स्ट्रा-करिव्यलर एक्टिविटीज की तरफ ध्यान सभी स्कूलों का जाने लगा है। अब बच्चे केवल किताबें नहीं पढ़ते। किताबें तो पढ़ते ही हैं, उनका भारी बस्ता इस बात का गवाह है। साथ में वे खेलकूद या किसी गतिविधि में भी शामिल रहते हैं। हां, हमें यह जरूर ध्यान देना होगा कि कच्ची उम्र में बच्चों के ऊपर सीखने का इतना बोझ न डालें कि उनकी कमर ही टूट जाए। दुनिया के ज्यादातर देश यह सबक ले चुके हैं, इसलिए 5 साल से पहले कुछ नहीं सिखाते बच्चों को सिर्फ खेलने देते हैं। भारत में हम लोग 3 साल से ही बच्चों के पीछे पड़ जाते हैं, जो उनके साथ ज्यादाती है।

थोड़ी बात उच्च शिक्षा की भी करते हैं विषय के चुनाव में, कॉलेज और विश्वविद्यालय के चुनाव में और रोजगार के चुनाव में हमारी सामाजिक, आर्थिक, लैंगिक पृष्ठभूमि काम करती है। यह देखना बहुत जरूरी हैं। हाल ही में इस तरह के अध्ययन हुए हैं जो बताते हैं कि लड़कियों को आर्ट्स के विषय ज्यादा पढ़ाए जाते हैं। घरवालों की एक प्राथमिकता होती है कि ऐसे विषय पढ़ाए जाएं ताकि नौकरी आसपास ही हो, काम आसपास ही मिले, कहीं दूर न जाना पड़े। अक्सर लड़कियों को बीएड कराने पर जोर दिया जाता है ताकि शादी के लिए न्यूनतम योग्यता पूरी की जा सके। ऐसा ही वंचितों के लिए भी विषयों के चुनाव को लेकर होता है। उनका आर्थिक आधार इसकी इजाजत नहीं देता कि वे महंगे विषय पढ़ सकें।

शिक्षा को, खासतौर से उच्च शिक्षा को समावेशी बनाने के लिए लड़कियों, दलितों आदिवासियों के लिए सरकार को विशेष योजनाएं और फेलोशिप शुरू करने की जरूरत है। कुछ फेलोशिप पहले से चल रही हैं उनमें और इजाफा करने की जरूरत है और साथ में इन सवालों को सुलझाना होगा ताकि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हर तबके की बराबर हिस्सेदारी हो सके और देश के विकास में सब अपनी भूमिका निभा सकें। एक सवाल शिक्षा की उपादेयता को लेकर भी हैं। वर्तमान में बाजार और पूंजी के प्रभाव में शिक्षा डिग्री मात्र रह गई है। शिक्षित लोगों को न रोजगार उपलब्ध है और न समाज के विकास में उनकी कोई भूमिका। शिक्षा सामाजिक बदलाव का माध्यम तभी हो सकती है जब उसका सीखने से संबंध हो और पाठ्यक्रम समाजोन्मुखी हो। इसलिए शिक्षा की सामाजिक उपादेयता सुनिश्चित करनी होगी और हमें देश के विकास में शिक्षा को सहयोगी रूप में आगे लाना होगा।

अशुभ < शुभ < शुद्ध भाव

(विश्व के समस्त अनन्तानन्त जीवों के भाव)

(चाल:-1.क्या मिलिए...2.भातुकली...)

भाव! तेरी अनन्तशक्ति सर्वज्ञ ही जान पाते।

अशुभशुभ शुद्ध रूप में तेरे प्रमुख भेद होते।। (ध्रुव)

अशुभभाव रूप में अनादिकाल से संसारी जीवों को देते कष्ट हो।

आत्मस्वभाव से विपरीत करा के कुज्ञानी मोही बना देते हो।।

जिससे जीव कुधर्मी होकर करते क्रोधमान माया लोभ।

ईर्ष्या तृष्णा घृणा से करते, हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह।। (1)

जिससे वे करते फैशन व्यसन से ले अन्याय अत्याचार।

शोषण मिलावट ठगी से ले आक्रमणयुद्ध व आतंकवाद।।

तेरा साम्राज्य अनादि से है और भी रहेगा अनन्त तक।

एकेन्द्रिय से असंज्ञी तक तो तेरा ही साम्राज्य अबाधित।। (2)

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच मानव नरकी देव को भी तू शासन करो।

जो आत्मश्रद्धान आत्मज्ञान व आत्मानुचरणों से रहित होते।।

ऐसे जीव भले किस भी जाति पंथमत भाषा भाषी धर्म के होते।

तथापि वे तेरे साम्राज्य को मानते बाहर से भले कुछ भी करते।। (3)

जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव विशुद्ध परिणाम से अशुभ रूप को परास्त करते।

वे जीव तेरे शुभ रूप को पाकर आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र पाते।।

ऐसे जीव तेरे उक्त अशुभ साम्राज्य के नियम कानून न पालते।

उससे विपरीत दयादान सेवा परोपकारादि गुण पालन करते।। (4)

श्रावक धर्म पालन से ले साधुकर्म को वे पालन करते।

जो अधिक तेरा शुभ शासन मानते वे (तो) श्रमणधर्म को पालते।।

उच्च से उच्चतर व उच्चतम शुभशासन से वे आत्मविकास करते।

ध्यान अध्ययन व समता शान्ति से आत्माविशुद्धि अधिक करते।। (5)

जिससे वे तेरे शुद्ध साम्राज्य को पाकर आध्यात्मिक श्रेणी चढ़ते।

घाती नाशकर अरिहंत बनकर अठारह दोषों को वे नाश करते।।

जिससे वे अनन्तज्ञान दर्शन सुख वीर्य पाकर दिव्य उपदेश करते।
 विश्व हितकर अन्त्योदय से ले सर्वोदय हेतु दिव्य सदेश देते॥ (6)
 अन्त में अघाती भी कर्मनाश कर शुद्ध बुद्ध परमात्मा ही बनते।
 अजर अमर अव्याबाध व अक्षय अनन्त स्व आत्म वैभव भोगते॥
 लोक के अनन्त जीव जगत् तेरे ही साम्राज्य में निवास करते।
 अशुभ परे शुभ के द्वारा शुद्ध साम्राज्य पाना ही 'कनक' चाहते॥ (7)

ग.पु.काँ., दि.28/6/2019, रात्रि 9.33

(साधुओं के कर्तव्य-अकर्तव्य)

जरूरत है शंखनाद की

-डॉ.चीरंजीलाल बगड़ा

बाकी तीन परमेष्ठी-आचार्य उपाध्याय और साधु, संसार, भोग, शरीर से मोह त्याग करके वैराग्य धारण कर मोक्ष पथ के पथिक साधक बने हैं, अभी संसारी जीव हैं। पंचमुष्टि पूर्वक उनमें अठाइस मूलगुणों का आरोपण किया गया है तथा सर्वदेश व्रत धारण कर अनगार की श्रेणी में आरुढ़ हुए हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों में अब उनके मात्र धर्म और मोक्ष, यह दो पुरुषार्थ ही करणीय बचे हैं। अब आप स्वयं विचार करे, इन्हें किन उच्च स्थितियों में पंच परमेष्ठी में स्थान दिया है।

अब हम विगत तीन माह की घटनाओं का संज्ञान लेते हैं।

मुम्बई में अन्तर्मना ने चारित्र चक्रवर्ती के शताब्दि महोत्सव के कार्यक्रम के दौरान अपने श्रीमुख से जैसा विष वमन किया है, वह उनके मौन साधक की छवि को आमूलचूल नष्टप्रायः करने वाला है तथा इससे उनकी वीतराग छवि एवम् वात्सल्यमयी मुद्रा नाटकवत् लगने लगी है।

शंका समाधान कार्यक्रम के माध्यम से मशहूर एक मुनिश्री के सानिध्य एवम् मार्गदर्शन में सम्पन्न बावनगजा महामस्तकाभिषेक के दौरान, अहिंसा के अवतारी तीर्थंकर भगवान् आदिनाथ की मूर्ति के समक्ष जैसा हिंसा का तांडव हुआ, कारण कुछ भी हो, गलती किसी की भी हो, जैनत्व की छवि धूमिल हुई है, वीतरागता कलंकित हुई है, अहिंसा सिद्धांत प्रश्न चिह्नित हुआ, अनेकांत दृष्टि बाधित हुई है।

और अंत में इन सबसे भी अधिक गंभीर प्रश्न जिसका उत्तर हमें तलाशना है, वह है आखिर मुनि मुद्रा का लक्ष्य क्या है?

मोक्ष पथ के साधक, आरंभ-परिग्रह के त्यागी, पंच महाव्रतों के धारी, सम्पूर्ण परिग्रह के त्यागी, हमारे वीतराग दिगम्बर साधु, आचार्य-उपाध्याय और मुनि, क्या गौशाला संचालन अथवा हस्त शिल्प उद्योग के लिए प्रेरक, अनुमोदक, मार्गदर्शक या ब्रांड अम्बेसडर प्रत्यक्ष या परोक्ष, कृत या कारित, किसी भी रूप में उनका स्पष्ट जुड़ना क्या आगम मार्ग है? क्या जिनाज्ञा सम्मत है?

भगवान् ऋषभदेव ने असि मसि कृषि आदि का उपदेश राज्यावस्था में दिया था, साधना काल में नहीं। जैन दर्शन सब जीवों के संरक्षण की बात करता है, प्राणी मात्र के प्रति समदृष्टि समभाव रखता है। पंच महाव्रत धारी हमारे साधु परमेष्ठी रूप हैं, वे मोक्ष मार्ग के नेता होते हैं, सामाजिक कार्यक्रम/आंदोलन के प्रणेता नहीं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैन साधुओं का प्रोजेक्टों से प्रत्यक्ष जुड़ाव, स्पष्ट लिप्तता, अर्थ संग्रह में रुचि एवं सहभागिता, चारित्रिक शिथिलता आदि बातें जैन सिद्धान्त के स्पष्ट विपरीत हैं सिद्धान्त का अवर्णवाद है।

वर्तमान सामाजिक विकृति के जड़ में यही मूल कारण है। जरूरत है शंखनाद की।

संदर्भ-

यह जीव कर्म तथा नोकर्म रूप होने वाले कितने पुद्गल परमाणुओं को प्रतिसमय ग्रहण करता है, सो बताते हैं,

सिद्धाणांतिमभागं अभव्वसिद्धादणंतगुणमेव।

समयपबद्धं बंधदि जोगवसादोदु विसरित्थं।। (4)

यह आत्मा, सिद्ध जीवराशि के जो कि अनन्तानन्त प्रमाण कही है उसके अनन्तवें भाग और अभव्य जीवराशि जो जघन्ययुक्तानन्त प्रमाण है उससे अनन्तगुणे समयप्रबद्ध को अर्थात् एक समय में बंधने वाले परमाणु समूह को बांधता है; अपने साथ संबद्ध करता है। परन्तु मन, वचन, काय की प्रवृत्तिरूप योगों की विशेषता से (कमती बढ़ती होने से) कभी थोड़े और कभी बहुत परमाणुओं का भी बंध करता है। अर्थात् परिणामों में कषाय की अधिकता तथा मन्दता होने पर आत्मा के प्रदेश

जब अधिक वा कम सकम्प (चलायमान) होते हैं तब कर्म परमाणु भी ज्यादा अथवा कम बंधते हैं। जैसे अधिक चिकनी दीवाल पर धूलि अधिक लगती है और कम चिकनी पर कम।

आस्रव का स्वरूप

सः आस्रवः।(2) मोक्षशास्त्र

This yoga is the channel of Asrava or inflow of karmic matter in to the soul.

वही आस्रव है।

काययोग, वचनयोग एवं मनोयोग से आस्रव होने के कारण इन योगों को ही आस्रव कहा है। कर्म परमाणु का योग के द्वारा आकर्षित होकर आने को आस्रव कहते हैं। योग आस्रव होने में कारण है तथापि सूत्र में कारण में कार्य का उपचार कर योग को ही आस्रव कहा है।

जैसे अन्न प्राण नहीं है तो भी प्राण की स्थिति में अन्न कारण होने से अन्न को ही प्राण कह देते हैं।

जैसे-नौका में छिद्र होने पर छिद्र से पानी नौका में प्रवेश कर लेता है उसी प्रकार मन, वचन, काय के परिस्पन्दन रूप छिद्र से कर्म का आगमन होता है, उसे आस्रव कहते हैं। आस्रव के दो भेद हैं। (1) द्रव्य आस्रव (2) भाव आस्रव।

द्रव्य संग्रह में द्रव्य आस्रव एवं भाव आस्रव का वर्णन निम्न प्रकार किया है-

(1) भाव आस्रव-

आस्रवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।

भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि।।(29)

जिस परिणाम से आत्मा के कर्म का आस्रव होता है उसको श्री जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिए। और भावास्रव से भिन्न ज्ञानावरणादि रूप कर्मों का जो आस्रव है सो द्रव्यास्रव है।

(2) द्रव्य आस्रव-

णाणावरणादीणं जोगं जं पुग्गलं समासवदि।

दव्वासवो ण पेओ अणेयभेओ जिणक्खादो।। (31)

ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है उसको द्रव्यास्रव जानना चाहिए। वह अनेक भेदों सहित है, ऐसा श्री जिनेन्द्र ने कहा है।

योग के निमित्त से आस्रव का भेद

शुभः पुण्यास्याशुभः पापस्य। (3)

Asrava is of 2 kinds: शुभ or good which is the inlet of virtue or meritorious karmas अशुभ or bad which is the inlet of vice or demeritorious karmas.

शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है।

शुभयोग पुण्य और अशुभ योग पापास्रव का कारण है। हिंसा, असत्य भाषण, वध आदि की चिन्ता रूप अपध्यान अशुभ योग है। हिंसा, दूसरे की बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण (चोरी), मैथुन-प्रयोग आदि अशुभ काययोग है। असत्य भाषण, कठोर मर्मभेदी वचन बोलना आदि अशुभ वचन योग है। हिंसक परिणाम, ईर्ष्या, असूया आदि रूप मानसिक परिणाम अशुभ मनोयोग है।

अशुभ योग से भिन्न अनन्त विकल्प वाला शुभ योग है। जैसे-अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि शुभ-काययोग है। अर्हन्त भक्ति, तप की रूचि-श्रुत का विनय आदि विचार शुभ मनोयोग है। सत्य, हित-मित वचन बोलना शुभ वाग्योग है।

शुभ परिणाम-पूर्वक होने वाला योग शुभयोग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ योग कहलाता है। “पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्। कर्मणः स्वातन्त्र्य विवक्षाया पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्। पारतन्त्र्यविवक्षायां करणत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् तत्सद्वेद्यादि।”

(तत्त्वार्थवार्तिके)

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र किया जाता है, वह पुण्य कहलाता है। अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुखसाता का अनुभव करे, वह सातावेदनीय आदि कर्म पुण्य हैं। स्वतन्त्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य से निष्पन्न पुण्य शब्द है। पारतन्त्र्य विवक्षा के करण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है, जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है, वह पुण्य है।

“तत्प्रतिद्वन्द्विरूपं पापम्। तस्य पुण्यस्य प्रतिद्वन्द्विरूपं पापमिति विज्ञायते। पाति रक्षत्यात्मानम् अस्यामच्छुभपरिणामादिति पापभिधानम्। तदसद्वेद्यादि।”

(तत्त्वार्थवार्तिके)

पुण्य का प्रतिद्वंद्वी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा की शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे वह पाप कहलाता है, वह असाता वेदनीय आदि पापकर्म है।

प्रश्न-जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी को परतन्त्र करना, वैसे ही पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा को परतन्त्र करने में निमित्त कारण है। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ है, पाप है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है।

उत्तर-पुण्य-पाप को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि सोने या लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा की परतन्त्रता में कारण है तथापि इष्ट फल और अनिष्ट फल के निमित्त से पुण्य और पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर इन्द्रिय विषय आदि का निवर्तक (हेतु) है, पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति, जाति, शरीर इन्द्रियों के विषय आदि का कारण वह पाप है। इस प्रकार पुण्यकर्म और पापकर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्रव का कारण है और अशुभ योग पापास्रव का कारण है। कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है-

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहोअसुहो।

सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो।। (9) (प्रवचनसार)

जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणत होता है, तब जपा कुसुम या तमालपुष्प के लाल या काले रंग-रूप परिणत स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव होता हुआ स्वयं शुभ या अशुभ होता है और जब यह शुद्ध अराग (वीतराग) भाव से परिणत होता है शुद्ध होता है तब शुद्ध अराग वीतराग स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव होता हुआ शुद्ध होता है (उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध होता है।)

इस प्रकार जीव के शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि वह अपरिणमन स्वभाव, कूटस्थ नहीं है।

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।

उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा।। (69)

देव, यति और गुरु की पूजा में तथा दान में तथा सुशील में और उपवासादिकों में लीन आत्मा शुभोपयोगात्मक है।

उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचय जादि।

असुहो वा तथ पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि।। (156)

उपयोग यदि शुभ हो तो जीव पुण्य संचय को प्राप्त होता है और यदि अशुभ हो तो पाप संचय होता है। उन दोनों के अभाव में संचय नहीं होता।

जो जाणदि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।

जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहोतस्स।। (157)

जो अर्हन्तों, सिद्धों तथा अनगारों को जानता है और श्रद्धा करता है, और जीवों के प्रति अनुकम्पा युक्त है, उसका वह उपयोग शुभ है।

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चितदुट्टुगोट्टिदो।

उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो।। (158)

जिसका उपयोग विषय कषाय में अवगाढ़ (मग्न) है, कुश्रुति, कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ है, कषायों की तीव्रता में अथवा पापों में उद्यत है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ है, उसका वह उपयोग अशुभ है।

पात्र की अपेक्षा निर्जरा में न्यूनाधिकता का वर्णन

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहपकोपशमकोपशान्त

मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येगुणनिर्जराः। (45)

सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनंतानुबंधिविसंयोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशांतमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं। जब तक सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होती तब तक आस्रव और बंध की परम्परा चलती ही रहती है। यह बंध की परम्परा मिथ्यादृष्टि के अनादि से है। उसकी तो निर्जरा होती है वह सविपाक निर्जरा या अकाम निर्जरा है। इसलिए मिथ्यादृष्टि केवल आस्रव और बंध तत्त्व का कर्ता है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव के ज्ञान एवं दर्शन में परिवर्तन हो जाता है। जिस अंश में दर्शन-ज्ञान-चारित्र में सम्यक् भाव है

उतने अंश में संवर, निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है क्योंकि सम्यग्दर्शन-ज्ञान एवं चारित्र आत्मा का स्वभाव है।

पुरुषार्थसिद्धियुपाय में कहा है-

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥ (212)

येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।

येनांशेन रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥ (213)

येनांशेन चारित्रं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥ (214)

जिस अंश में आत्मा के सम्यग्दर्शन है उस अंश में अर्थात् उस सम्यग्दर्शन द्वारा इस आत्मा के कर्मबंध नहीं होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन कर्मबंध का कारण नहीं है और जिस अंश से रागभाव हैं सकषाय परिणाम उस अंश में कर्मबंध होता है। जिस अंश में आत्मा के सम्यग्ज्ञान है उस अंशेन इस आत्मा के कर्मबंध नहीं है और जिस अंश से इसके राग है उस अंश से इसके कर्मबंध होता है। जिस अंश से चरित्र हैं उस अंश से इस आत्मा के कर्मबंध होता है। जिस अंश से चरित्र है उस अंश से इस आत्मा के कर्मबंध नहीं है और जिस अंश से इसके राग भाव है उस अंश से इसके कर्मबंध होता है।

पात्र की अपेक्षा गुणश्रेणी निर्जरा और उसके द्रव्य प्रमाण और काल प्रमाण का वर्णन गोम्मट्टसार में निम्न प्रकार किया है-

सम्मत्तुष्यत्तीये-सावय विरदे अणंत कम्मसे।

दंसणमोहक्खवगे कषायउवसामगे य उवसंते॥ (66)

खवगे य खीणमोहे-जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।

तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति॥ (67)

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि श्रावक, विरत, अनंतानुबंधी कर्म का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करने वाला, कषायों का उपशम करने वाले 8-9-10वें गुणस्थानवर्ती जीव क्षीण, मोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली दोनों प्रकार के जिन इन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की

अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यात गुणी असंख्यात गुणी अधिक-अधिक होती जाती है और उसका काल इसके विपरीत है। क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हीन है।

1.सम्यग्दृष्टि (अविरत)— जैसे मद्यपायी के शराब का कुछ नशा उतरने पर अव्यक्त ज्ञान शक्ति प्रकट होती है, या दीर्घ निद्रा के हटने पर जैसे-ऊँघते-ऊँघते भी अल्प स्मृति होती है, या विष मूर्च्छित व्यक्ति को विष का एक देश वेग कम होने पर चेतना आती है अथवा पित्तादि विकार से मूर्च्छित व्यक्ति को मूर्च्छा हटने पर अव्यक्त चेतना आती है—उसी प्रकार अनंत काय आदि एकेन्द्रियों में बार-बार जन्म-मरण परिभ्रमण करते-करते विशेष लब्धि से दो इन्द्रिय आदि से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यंत त्रस पर्याय मिलती है। कभी मुनिराज कथित जिन धर्म को सुनता है तथा कदाचित् प्रतिबंधी कर्मों के दब जाने से उस पर श्रद्धान भी करता है। जैसे-कतक फल के सम्पर्क से जल का कीचड़ बैठ जाता है और जल निर्मल बन जाता है; उसी प्रकार मिथ्या उपदेश से अति मलिन मिथ्यात्व के उपशम से आत्मा निर्मलता को प्राप्त कर श्रद्धानाभिमुख होकर तत्त्वार्थ श्रद्धान की अभिलाषा के सन्मुख होकर कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा करता है। प्रथम सम्यक्त्व आदि का लाभ होने पर अध्यवसाय (परिणामों) की विशुद्धि की प्रकर्षता से ये दसों स्थान क्रमशः असंख्येय गुणी निर्जरा वाले हैं। सादि अथवा अनादि दोनों ही प्रकार का मिथ्यादृष्टि जीव जब करण लब्धि को प्राप्त करके उसके अधःप्रवृत्तकरण परिणामों को भी बिताकर अपूर्वकरण परिणामों को ग्रहण करता है तब वह सातिशय मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। इस सातिशय मिथ्यादृष्टि के जो कर्मों की निर्जरा होती है वह पूर्व की निर्जरा से अर्थात् सदा ही संसारावस्था या मिथ्यात्व दशा में होने वाली या पाई जाने वाली निर्जरा से असंख्यात गुणा अधिक हुआ करती है।

यह कथन गोम्मट्टसार जीवकाण्ड की अपेक्षा है। इसी से सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टि की जो निर्जरा होती है उस निर्जरा को यहाँ पर इकाई रूप में स्वीकार किया गया है। तत्त्वार्थसूत्र की अपेक्षा निर्जरा के स्थान दस है और गोम्मट्टसार की अपेक्षा निर्जरा के स्थान ग्यारह है परन्तु तत्त्वार्थसूत्र में जो अंतिम स्थान 'जिन' है उसे सयोगी जिन एवं अयोगी जिन रूप में विभक्त करने से तत्त्वार्थसूत्र में भी ग्यारह

स्थान हो जाते हैं।

श्रावक (पंचम गुणस्थान) अवस्था को प्राप्त होने पर जो कर्मों की निर्जरा होती है, वह असंयत सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से असंख्यात गुणी अधिक होती है। इसी प्रकार विरतादि स्थानों में भी उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यात गुणी असंख्यात गुणी अधिक-अधिक कर्मों की निर्जरा हुआ करती है तथा इस निर्जरा का काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा-संख्यातगुणा हीन-हीन होता गया है अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि की निर्जरा में जितना काल लगता है उससे संख्यात गुणा कम काल श्रावक की निर्जरा में लगा करता है। इसी प्रकार आगे के विरत आदि स्थानों के विषय में भी समझना चाहिए। अर्थात् उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हीन-हीन समय में ही उत्तरोत्तर परिणाम विशुद्धि की अधिकता होते जाने के कारण कर्मों की निर्जरा असंख्यात गुणी अधिक-अधिक होती जाती है तात्पर्य यह है कि, जैसे-जैसे मोहकर्म निःशेष होता जाता है वैसे-वैसे निर्जरा भी बढ़ती जाती है और उसका द्रव्य प्रमाण असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा अधिकाधिक होता जाता है। फलतः वह जीव भी निर्वाण के अधिक-अधिक निकट पहुँचता जाता है। जहाँ गुणाकार रूप से गुणित निर्जरा का द्रव्य अधिकाधिक पाया जाता है उन स्थानों में गुण श्रेणी निर्जरा कही जाती है।

“परम दिव्य दृष्टि (सुदृष्टि) से देख रहा हूँ स्व-परमसत्य”

(मेरा शुद्धात्मा ही मेरा परम सत्य)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:-पायो जी मैंने राम रतन...)

पायो है! मैंने, परम दिव्य दृष्टि/(सुदृष्टि) पायो।

इस दृष्टि से देखा है मैंने, मुझमें ही मेरा परमात्मा॥ (धु.)

मोह दृष्टि से जो मैंने देखा था, वे सभी हैं अनात्मा।

शरीर इन्द्रियमन से ले सत्ता सम्पत्ति परद्रव्य अनात्मा॥ पायो है...(1)

रागद्वेष मोह काम क्रोध मद मत्सर आदि भी अनात्मा।

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व आसक्ति घृणा भी अनात्मा॥ पायो है...(2)

भाई बन्धु कुटुम्ब शत्रु मित्र आदि भेदभाव भी अनात्मा।

आबाल वृद्ध वनिता कालागोरा धनी गरीब रोगी भी अनात्मा॥ पायो है...(3)

चौरासी लाख योनि मार्गणा गुणस्थान आदि भी न शुद्धात्मा।

किंतु “सव्वे सुद्धाहु सुद्धाणया” से हर जीव है निश्चय से शुद्धात्मा॥ पायो है...(4)

पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल द्रव्य भी न मम शुद्धात्मा।

ये सभी भी परद्रव्य है मम शुद्धात्मा ही मम परमात्मा॥ पायो है...(5)

भले हर द्रव्य भी शुद्ध स्वरूप में होते परम सत्य।

किन्तु वे मम रूप न बनेगे, मैं भी न बनूँगा अन्य/(पर) रूप॥ पायो है...(6)

मैं हूँ निश्चय से शुद्ध बुद्ध आनन्द सत्य शिव सुन्दर।

द्रव्यभाव नोकर्मों से रहित “अहमेक्को खलु सुद्ध” स्वरूप॥ पायो है... (7)

स्वस्वरूप से भिन्न शरीर आदि को मैं मानना है “अहंकार”।

तन मन धन कुटुम्ब आदि को मेरा मानना है “ममकार”॥ पायो है...(8)

दोनों मिलकर बनते हैं “मिथ्यात्व” जो सब से “महापाप” है।

मिथ्यात्व से रहित होने पर ही, प्रारंभ होता “सद्धर्म” है॥ पायो है...(9)

इसलिए मैं ही मेरा कर्ता धर्ता भोक्ता विधाता मैं ही हूँ।

अन्य रूप मैं न बन सकता, अन्य द्रव्य भी मम रूप नहीं॥ पायो है...(10)

अतः मुझे ही मुझे शुद्ध करने हेतु त्याग रहा हूँ पराश्रय।

अन्य के हेतु मैं न रागद्वेष करूँ नहीं अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा॥ पायो है...(11)

तथाहि संकल्प विकल्प न करूँ न करूँ मैं संक्लेश।

परनिन्दा अपमान वैरविरोध से ले तुलना से प्रतिस्पर्द्धा तक॥ पायो है...(12)

इससे परे मैं निर्विकल्प निराबाध निर्द्वन्द्व व निरावलम्ब।

स्वतंत्र मौलिक स्वावलम्बी होकर बन रहा हूँ मैं शुद्ध बुद्ध॥ पायो है...(13)

स्व परम सत्ता के श्रद्धान ज्ञान व ध्यान अध्ययन चिन्तन।

मिल रहे हैं मुझे आनन्द व अनुभव जो कि लौकिक से भिन्न॥ पायो है...(14)

इससे मुझे अनुभव हो रहा है आध्यात्मिक सत्ता ही मम परमसत्य।

लौकिक शिक्षा कानून राजनीति पंथमत से विज्ञान भी न परमसत्य॥ पायो है...(15)

मम परम सत्य की उपलब्धि हेतु ही देवशास्त्र गुरु भी निमित्त।

व्रत नियम तप त्यागादि निमित्त ‘कनक’ का लक्ष्य स्व परम सत्य॥ पायो है...(16)

संदर्भ-

(चाल: आत्मशक्ति...)

निर्विकल्प मेरा स्वरूप है, सुनना-सुनाना अतः दोनों से परे।
सुनना व सुनाना दोनों उन्मत्त चेष्टित है मैं तो इन दोनों से परे।
समीक्षा:

अन्तरात्मा विचार करता है, मैं तो शुद्ध-बुद्ध अमूर्तिक हूँ।
अतएव वार्तालाप मेरा नहीं है स्वभाव, क्योंकि मैं निर्विकल्प हूँ। (2)

वार्तालाप में होता है विकल्प, विकल्प से होता है चित्त चंचल।
जिससे होता है कर्मबन्ध जिससे, मेरा स्वरूप न होता निर्मल। (3)

शुद्ध रूप से मैं हूँ निर्विकल्प, राजा-प्रजा, छोटा-बड़ा से परे।
अपना-पराया-गुरु-शिष्य परे, समस्त विभाव भाव-व्यवहार परे। (4)

ऐसा लक्ष्यनिष्ठ होता अन्तरात्मा, जिससे उनमें आती समता।
जिससे वे ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि परे, बनना चाहते हैं परमात्मा। (5)

माइक-मंच व पाण्डाल होर्डिंग, विज्ञापन से ले T.V. प्रयोग।
धन-जन-मान-भीड़ प्रदर्शन, बोली आदि सभी का कैसे काम। (6)

मोही जीव के भवतीर नहीं

मोह ण च्छिज्जइ अप्पा दारुण कम्मं करेइ बहुवारं।

णहु पावइ भवतीरं किं बहु दुक्खं वहेइ मुढमइ।। (67.रयण.)

अन्वयार्थः- (अप्पा) आत्मा (मोहं) मोह को (णच्छिज्जइ) नहीं क्षय करता है (दारुण कम्मं बहुवारं) अत्यन्त दारुण कर्मों को व्रत उपवास तू अनेक बार (करेइ) करता है (हु) निश्चय से वह (भवतीरं) संसार समुद्र का किनारा (ण पावदि) नहीं पाता; फिर (मूढमइ) यह मूढमति अज्ञानी (किं बहुदुक्खं) क्यों बहुत दुःख को (वहेइ) उठाता है?

पद्य- हे मूढात्मा! मोह त्यागे बिन बहुत किया तू दारुण भाव।

किन्तु न पाया तू संसार पार क्यों सह रहा है बहु दुःख।।

समीक्षा-मोह त्याग बिन दारुण तप-त्याग से भी नहीं मिलता है मोक्ष।

किन्तु कठोर तप-त्याग से केवल मिलते इह-पर-लोक में दुःख।।

अतएव आत्मश्रद्धा प्रज्ञा सहित यथा शक्ति तप-त्याग श्रेष्ठ।
अन्यथा आत्मश्रद्धा प्रज्ञा रहित कठोर तप-त्याग से मिले दुःख।।

बंध के हेतु मिथ्यादर्शन आदि

स्युर्मिथ्यादर्शन ज्ञान-चारित्राणि समासतः।

बन्धस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः।। (8) तत्वानु.

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीनों संक्षेपरूप से बंध के कारण है। बंध के कारणरूप में अन्य जो कुछ कथन (कहीं उपलब्ध होता) है वह सब इन तीनों का विस्ताररूप है।

व्याख्या-यहाँ बंध के हेतु रूप में जिन मिथ्यादर्शनादिका का निर्देश किया गया है वे वे ही हैं जिनको स्वामी समन्तभद्र ने अपने समीचीन धर्मशास्त्र (रत्नकंठ) के सद्दृष्टिविज्ञानवृत्तानि नामक तृतीय पद्य में प्रयुक्त यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः इस वाक्य के द्वारा बंध के कार्यरूप संसार का हेतु (मार्ग) बतलाया है। बंध का हेतु कहो चाहे संसार का हेतु कहो, दोनों का आशय एक ही है। प्रस्तुत पद्य में अन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः यह वाक्य विशेषतः ध्यान में लेने योग्य है। इसके द्वारा यह सूचित किया गया है कि समयसार, तत्त्वार्थ सूत्रादि ग्रंथों में बंधहेतुविषयक जो कथन कुछ भिन्न तथा विस्तृत रूप में पाया जाता है वह सब इन तीनों हेतुओं के अन्तर्गत इनमें समाविष्ट-अथवा इन्हीं मूल हेतुओं के विस्तार को लिये हुए हैं। जैसे समयसार में एक स्थान पर मिथ्यात्व, अविरमण (अविरत), कषाय योग इन चारको बंध का कारण बतलाया है; दूसरे स्थान पर चारों का उल्लेख करते हुए इनमें से प्रत्येक के संज्ञ-असंज्ञ (चेतन-अचेतन) ऐसे दो दो भेद करते हुए बहुविहभेया पद के द्वारा बहुत भेदों की भी सूचना की है; तीसरे स्थान पर राग, द्वेष तथा मोह को आस्रव रूप बन्ध का कारण निर्दिष्ट किया गया है और चौथे स्थान पर मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरत भाव और योगरूप अध्यवसानों को बंध के कारण ठहराया है। तत्त्वार्थ सूत्र में मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँच को बंध के हेतु लिखा है। गोम्मटसार (कर्मकांड) में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग नाम के वे ही चार बंध के कारण दिये हैं जिनका उल्लेख समयसार की 109 वीं गाथा में पाया जाता है।

अंतर केवल इतना ही है कि समयसार में जिन्हें बंधकर्तार लिखा है उन्हीं को गोम्मतसार में आस्रवरूप निर्दिष्ट किया है। यह कोई वास्तविक अंतर नहीं है; क्योंकि मिथ्यात्वादि चारों प्रत्ययों में बंधत्व और आस्रवत्व की दोनों शक्तियाँ उसी प्रकार विद्यमान हैं जिस प्रकार अग्नि में दाहकत्व और पाचकत्व की दोनों शक्तियाँ पाई जाती हैं। मिथ्यात्वादि प्रत्यय प्रथम समय में ही आस्रव के हेतु है, द्वितीय समय में उन्हीं से बंध होता है और फिर आस्रव-बंध परंपरा कथंचित् चलती रहती है जैसा कि अध्यात्मकमलमार्तंड के निम्न वाक्यों से स्पष्ट है-

चत्वारः प्रत्ययास्ते ननु कथमिति भावास्रवो भावबन्ध-
 श्रैकत्वाद्ब्रुतस्तो बल मतिरित चेतत्र शक्तिद्वयात्स्यात्।
 एकस्यापीह वह्नेर्दहन-पचन-भावात्म-शक्तिद्वयाद्वा
 वह्निः स्याद्दाहकश्च स्वगुणगणबलात्पाचकश्चेति सिद्धेः॥
 मिथ्यात्वाद्ब्रुत्वात्मभावाः प्रथमसमय एवास्रवे हेतवः स्युः
 पश्चात्तत्कर्मबन्धं प्रतिसमसमये तौ भवेतां कथंचित्।
 नव्यानां कर्मणागमनमिति तदात्वे हि नाम्नास्रवः स्यात्।
 आयत्यां स्यात्स बन्धः स्थितिमिति लयपर्यन्तमेषोऽनयोर्भिर्तु॥

(परिच्छेद 4)

मिथ्यादर्शन का लक्षण

अन्यथाऽवस्थितेष्वर्थेष्वन्यथैव रुचिर्नृणाम्।

दृष्टिमोहोदयान्मोहो मिथ्यादर्शनमुच्यते॥ (9)

मनुष्यों अथवा जीवों के दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अन्यरूप से अवस्थित (यथावस्थित) पदार्थों में जो तद्भिन्नरूप से रुचि प्रतीत होती है वह मोह है और उसी को मिथ्यादर्शन कहा जाता है।

व्याख्या-यहाँ 'दृष्टिमोहोदयात्' पद अपनी खास विशेषता रखता है और इस बात को सूचित करता है यदि दर्शन मोहनीय कर्म का उदय न हो तो अन्यथावस्थित पदार्थों में अन्यथा रूचि-प्रतीति के होने पर भी मिथ्यादर्शन नहीं होता। जैसे की श्रेणिक राजा को क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने से उसके दर्शन मोहनीय कर्म का

उदय नहीं बनता, फिर भी अपने पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) के भाव को उसने अन्यथारूप में समझकर अन्यथा प्रवृत्ति कर डाली। इतने मात्र से वह मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्यादर्शन को प्राप्त नहीं कहा जाता; क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले सम्यग्दर्शन का कभी अभाव नहीं होता।

मिथ्यादर्शन का लक्षण और भेद

ज्ञानावृत्युदयादर्थेष्वन्यथाऽधिगमो भ्रमः।

अज्ञानं संशयश्चेति मिथ्याज्ञानमिदं त्रिधा॥ (10)

(दर्शन मोहनीय कर्म के उदयपूर्वक अथवा संस्कारवश) ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से (यथावस्थित) पदार्थों में जो उनके यथावस्थित स्वरूप से भिन्न अन्यथा ज्ञान होता है, उसका नाम मिथ्याज्ञान है और यह मिथ्याज्ञान संशय, भ्रम (विपर्यय) तथा अज्ञान (अनध्यवसाय) ऐसे तीन प्रकार का होता है।

व्याख्या—ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से अज्ञानभाव होता है और यहाँ अन्यथाज्ञान की बात कही गयी है, वह इस बात को सूचित करती है कि ज्ञानावरणीय कर्म के उदय के साथ दर्शन मोहनीय कर्म का उदय भी लगा हुआ है अथवा उसके संस्कारों को साथ में लिये हुए हैं। मिथ्याज्ञान दर्शन मोहरूप चक्रवर्ती राजा का आश्रित मंत्री है, यह बात आगे 12 वें पद्य में स्पष्ट की गयी है और इसलिए उसे मोह के संस्कारों से विहीन ग्रहण नहीं किया जा सकता और यही कारण है कि उसके भ्रम तथा संशय को साथ लेकर तीन भेद किये गये हैं, अन्यथा वह भेद अज्ञानरूप ही रहता। परस्पर विरुद्ध नाना कोटियों का स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय, विपरीत एक कोटि का निश्चय करने वाले ज्ञान को भ्रम (विपर्यय) और क्या है इस आलोचन मात्र ज्ञान को अज्ञान (अनध्यवसाय) कहते हैं। यथार्थ ज्ञान में ये तीनों दोष नहीं होते।

मिथ्याचारित्र का लक्षण

वृत्तमोहोदयाज्जन्तोः कषाय-वश-वर्तिनः।

योगप्रवृत्तिशुभा मिथ्याचारित्रमूचिरे॥ (11)

(दर्शन मोहनीय कर्म के उदयपूर्वक अथवा संस्कारवश) चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से कषायवशवर्ती हुए जीव की जो अशुभयोग प्रवृत्ति होती है-

काय, वचन तथा मन की क्रिया किसी अच्छे भले शुभकार्य में प्रवृत्त न होकर पापबंध के हेतुभूत बुरे एवं निंद्य कार्यों में प्रवृत्त होती है उसको मिथ्याचारित्र कहा गया है।

व्याख्या—मोह के मुख्य दो भेद हैं—एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोह। दर्शन मोह के उदय से जिस प्रकार मिथ्यादर्शन की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार चारित्र मोह के उदय से मिथ्याचारित्र की सृष्टि बनती है। उस मिथ्याचारित्र का स्वरूप यहाँ मन-वचन-काय में किसी योग अथवा योगों की अशुभ प्रवृत्ति को बतलाया है और उसका स्वामी उस जीव को निर्दिष्ट किया है जो चारित्रमोह के उदयवश उस समय किसी भी कषाय अथवा नोकषाय के वशवर्ती होता है। काय, वचन तथा मन की क्रिया रूप जो योग यहाँ विवक्षित है उसके दो भेद हैं—एक शुभयोग और दूसरा अशुभोपयोग। शुभपरिणामों के निमित्त से होने वाला योग शुभ और अशुभ परिणामों के निमित्त से होने वाला योग अशुभ कहलाता है। अशुभ योग की प्रवृत्ति अशुभ होती है और उसी अशुभ प्रवृत्ति को यहाँ मिथ्याचारित्र कहा गया है। हिंसा, चोरी और मैथुनादि में प्रवृत्त हुआ शरीर अशुभ काययोग है। असत्य, कटुक तथा असभ्य भाषणादि के रूप में प्रवृत्त हुआ वचन अशुभ वागयोग है। हिंसादिक की चिंता तथा ईर्ष्या-असूयादि के रूप में प्रवृत्त हुआ मन अशुभ मनोयोग है। इसी प्रकार योगों की यह अशुभ प्रवृत्ति, जो कृत-कारित-अनुमोदन के रूप में होती है, पापस्रव की हेतुभूत और इसी से मिथ्याचारित्र कहलाती है। दूसरे शब्दों में मन से, वचन, काय से, करने-कराने तथा अनुमोदना के द्वारा जो हिंसादिक पापक्रियाओं का आचरण अथवा अनुष्ठान है वह मिथ्याचारित्र है, जो सम्यग्चारित्र के उस लक्षण के विपरीत है। यह सर्व कथन व्यवहारनय की दृष्टि से है। निश्चयनय की दृष्टि से तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान से रहित और चारित्र मोह से अभिभूत योगों की शुभ प्रवृत्ति भी शुभ कर्मबंध के हेतु मिथ्याचारित्र में परिगणित है; क्योंकि सम्यक्चारित्र कर्मादान निमित्त-क्रिया के त्याग रूप होता है।

बंध हेतुओं में चक्री और मंत्री

बन्धहेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तितः।

मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्नियत्॥ (12)

बंध के संपूर्ण हेतुओं में मोह चक्रवर्ती (राजा) कहा गया है और मिथ्याज्ञान इसी के मंत्रित्व को आश्रय किये हुए है—मोहराजा का आश्रित मंत्री है।

व्याख्या—यहाँ मिथ्यादर्शन रूप मोह को चक्रवर्ती बतलाकर बंध के हेतुओं में उसकी सर्वोपरि प्रधानता का निर्देश किया गया है और वह ठीक ही है; क्योंकि दर्शनमोह दृष्टिविकार को उत्पन्न करता है और यह दृष्टिविकार ही ज्ञान को मिथ्याज्ञान और चारित्र को मिथ्याचारित्र बनाता है। मोहाश्रित होने से स्वतंत्रतापूर्वक मंत्री पद का कोई काम करने अथवा मोहराजा को उसकी कुप्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रतिकूल अच्छी भला सलाह देने में समर्थ नहीं होता। सदा उसके अनुकूल ही बना रहता है और इसी से मिथ्याज्ञान नाम पाता है। मिथ्याज्ञान मोह चक्रीका ही मंत्री है-अन्यका नहीं, यह बात तस्य पद के साथ एव शब्द के प्रयोग द्वारा सूचित की गयी है।

मोहचक्री के सेनापति: ममकार-अहंकार

ममाऽहङ्कारमानामानौ सेनान्यौ तौ च तत्सुतौ।

यदायत्तः सुदुर्भेदः मोह-व्यूहः प्रवर्तते॥ (13)

‘उस मोह के जो दो पुत्र ममकार और अहंकार नाम के हैं वे दोनों उस मोह के सेनानायक है, जिनके अधीन मोहव्यूह-मोहचक्रीका सैन्यसंनिवेश-बहुत ही दुर्भेद बना हुआ है।’

व्याख्या—मोह के गढ़ को यदि जीतना है तो ममकार और अहंकार को पहले जीतना परमावश्यक है। इनके कारण ही मोहशत्रु दुर्जेय बना हुआ है और वह संसारी प्राणियों को अपने चक्कर में फँसता, बाँधता और दुःख देता रहता है।

ममकार और अहंकार दोनों भाई एक एक दूसरे के पोषक है। इनका स्वरूप अगले पद्यों में बतलाया गया है और साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि कैसे इनके चक्रव्यूह में फँसकर यह जीव संसार-परिभ्रमण करता रहता है।

ममकार का लक्षण

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनु-प्रमुखेषु कर्मजनितेषु।

आत्मीयाऽभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः॥ (14)

सदा अनात्मीय-आत्मा रूप से बहिर्भूत-ऐसे कर्मजनित स्वशरीरादिक में जो आत्मीय अभिनिवेश है उन्हें अपने आत्मजन्य समझने रूप जो अज्ञानभाव है उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा शरीर।

व्याख्या-जो कभी आत्मीय नहीं, आत्मद्रव्य से जिनकी उत्पत्ति नहीं और न आत्मा के साथ जिनका अविनाभाव-जैसे कोई गाढ़ संबंध है; प्रत्युत इसके जो कर्मनिमित्त है, आत्मा से भिन्न स्वभाव रखने वाले पुद्गल परमाणुओं द्वारा रचे गये हैं; ऐसे पर पदार्थों को जो अपना मान लेता है उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा यह शरीर, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री और यह मेरा धन इत्यादि। क्योंकि ये सब वस्तुएँ वस्तुतः आत्मीय नहीं हैं, आत्माधीन नहीं हैं, अपने-अपने कारण-कलाप के अधीन हैं, अपने आत्मद्रव्य से भिन्न हैं और स्पष्ट भिन्न होती हुई दिखाई पड़ती हैं। शरीर आदि से भिन्न होते समय आत्मा का उन पर कोई वश नहीं चलता; जबकि वस्तुतः आत्मीय होने पर उन्हें आत्माधीन होना और सदा आत्मा के साथ रहना चाहिए था।

यह सब कथन अगले पद्य में प्रयुक्त हुए 'परमार्थनयेन' पद की अपेक्षा रखता हुआ निश्चय की दृष्टि से है। व्यवहारनय की दृष्टि से मेरा शरीरादि कहने में अवश्य आता है, परंतु जो व्यवहार निश्चयनय के ज्ञान से बहिर्भूत है, निश्चय की अपेक्षा न रखता हुआ कोरा व्यवहार है अथवा व्यवहार को ही निश्चय समझ लेने के रूप में है वह भारी भूल भरा तथा वस्तुतत्त्व के विपर्यासको लिये हुए है। प्रायः ऐसा ही हो रहा है और इसीलिए निश्चय की दृष्टि को स्पष्ट करने की जरूरत होती है। इस व्यावहारिक ममतारूपी घोर अंधकार के वश जिसके ज्ञान की स्थिति अस्तव्यस्त हो रही है ऐसा प्राणी सच्चे सुखस्वरूप अपने हित-साधन से दूर भागता रहता है; जैसे कि श्री अमितगति आचार्य ने अपने निम्न वाक्य में व्यक्त किया है-

माता में मम गेहिनी मम गृहं मे बान्धवा मेऽङ्गजाः

तातो मे मम सम्पदो मम सुखं में सज्जना में जनाः।

इत्थं घोरममत्व-तामस-वश-व्यस्ताऽस्तबोधस्थितिः

शर्मार्थानविधानतः स्वहिततः प्राणी सनीमस्यते।। तत्त्वभावना (24)

अहंकार का लक्षण

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः।

तत्राऽऽत्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः।। (15)

‘कर्मों के द्वारा निर्मित जो पर्यायें हैं और निश्चयनय से आत्मा से भिन्न हैं उनमें भी आत्मा का जो मिथ्या आरोप है—उन्हें आत्मा समझने रूप अज्ञानभाव है—उसका नाम अहंकार है; जैसे मैं राजा हूँ।’

व्याख्या—यहाँ परमार्थनय का अर्थ निश्चय नय से है, जिसे द्रव्यार्थकनय भी कहा गया है, उसकी दृष्टि से जितनी भी कर्मकृत पर्यायें वे सब आत्मा से भिन्न हैं—आत्मरूप नहीं है—उन्हें आत्मरूप समझ लेना ही अहंकार है; जैसे मैं राजा, मैं रंक, मैं गोरा, मैं काला, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं उच्च, मैं नीच, मैं सुरूप, मैं कुरूप, मैं पंडित, मैं मूर्ख, मैं रोगी, मैं निरोगी, मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं निर्बल, मैं सबल, मैं बालक, मैं युवा, मैं वृद्ध इत्यादि। ये सब निश्चयनय से आत्मा के रूप नहीं, इन्हें दृष्टिविकार के वश आत्मरूप मान लेना अहंकार है। यह कर्मकृत पर्याय को आत्मा मान लेने रूप अहंकार की एक व्यापक परिभाषा है। इसमें किसी पर्याय विशेष को लेकर गर्व अथवा मदरूप जो अहंभाव है वह सब सम्मिलित है। निश्चय-सापेक्ष व्यवहारनय की दृष्टि से अपने को राजादिक कहा जा सकता है; परंतु व्यवहार निरपेक्ष निश्चय की दृष्टि से आत्मा को राजादिक मानना अहंकार है। इसी तरह देह को आत्मा मान लेना भी अहंकार है।

ममकार और अहंकार में मोह-व्यूह का सृष्टिक्रम

मिथ्याज्ञानान्वितान्मोहान्ममाहङ्कारसम्भवः।

इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते।। (16)

‘मिथ्याज्ञानयुक्त मोह से जीव के ममकार और अहंकार का जन्म होता है और इन दोनों से (ममकार-अहंकार से) राग तथा द्वेष उत्पन्न होता है।’

व्याख्या—यहाँ ममकार और अहंकार को राग-द्वेष का जनक बतलाया है उसका यह आशय नहीं कि दोनों मिलकर राग-द्वेष उत्पन्न करते हैं या एक राग को तथा दूसरा द्वेष को उत्पन्न करता है; बल्कि यह आशय है कि दोनों अलग-अलग राग-द्वेष के उत्पादक हैं—ममकार से जिस प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अहंकार से भी होती है।

ताभ्यां पुनः कषायाः स्यूर्नोकषायाश्च तन्मयाः।

तेभ्यो योगा प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः।। (17)

‘फिर उन (राग-द्वेष) दोनों से कषायें-क्रोध, मान, माया, लोभ और नोकषायों हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तथा कामवासनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो कि राग-द्वेषरूप हैं। उन कषायों तथा नोकषायों से योग प्रवृत्त होते हैं-मन, वचन, तथा काय की क्रियाएँ बनती हैं और उन योगों के प्रवर्तन से प्राणिवधादिरूप हिंसादिक कार्य होते हैं।’

व्याख्या-माया, लोभ, हास्य, रति और स्त्री-पुरुषादि वेदरूप कामवासनाएँ ये पाँच (दो कषायें तथा तीन नोकषाएँ) राग-द्वेषरूप हैं। क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (ग्लानि) ये छह (दो कषायें तथा चार नोकषायें) द्वेषरूप हैं। मन-वचन-काय की क्रियारूप योगों की प्रवृत्ति शुभ और अशुभ ऐसे दो प्रकार की होती है। शुभ योगप्रवृत्ति के द्वारा अच्छे-पुण्यकार्य और अशुभ योग प्रवृत्ति के द्वारा बुरे-पापकार्य होते हैं और इसलिए प्राणिवधादयः पद में प्रयुक्त हुआ बहुवचनांत आदि शब्द यहाँ झूठ, चोरी, मैथुन, कुशील और परिग्रह जैसे पापकार्यों का वाचक है, वहाँ अहिंसा-दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे पुण्यकार्य का भी वाचक है।

तेभ्यःकर्माणि बध्यन्ते ततः सुगति-दुर्गति।

तत्र कायाः प्रजायन्ते सहजानीन्द्रियाणि च।। (18)

उन प्राणिवधादिक कार्यों से कर्म बँधते हैं-जिनके शुभ तथा अशुभ ऐसे दो भेद हैं। कर्मों के बंधन से सुगति तथा दुर्गति की प्राप्ति होती है, अच्छे शुभ कर्मों के बंधन से (देव तथा मनुष्य भव की प्राप्ति रूप) सुगति और बुरे अशुभ कर्मों के बंधन से (नरक तथा तिर्यंच योनिरूप) दुर्गति मिलती है। कर्मों के वश उस सुगति या दुर्गति में जहाँ भी जीव को जाना होता है वहाँ शरीर उत्पन्न होते हैं और शरीरों के साथ सहज ही इंद्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं-चाहे उनकी संख्या शरीर में कम से कम एक ही क्यों न हो।

व्याख्या-यहाँ जिन कर्मों के बंधन का उल्लेख है, उनकी ज्ञानावरणादिरूप मूलप्रकृतियाँ आठ, मतिज्ञानावरणादिरूप उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस और फिर मतिज्ञानावरणादि के भेद-प्रभेद होकर उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ असंख्य हैं। इन सब कर्म प्रकृतियों में कुछ शुभरूप हैं, जिन्हें पुण्य प्रकृतियाँ कहते हैं और शेष अशुभरूप हैं, जिन्हें पापप्रकृतियाँ कहते हैं। इन सब कर्मों का, कर्मों से होने वाली चार प्रकार की

गतियों का, गतियों में प्राप्त होने वाले औदारिक वैक्रियिकादि पाँच प्रकार के शरीरों का और शरीरों के साथ संबद्ध स्पर्शन-रसनादि पाँच प्रकार की इंद्रियों का स्वरूपादिविषयक विस्तृत वर्णन तत्त्वार्थसूत्र, उसके टीकाग्रंथ, षट्खंडागम कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह और गोम्मटसारादि सिद्धांत ग्रंथों से जानना चाहिए।

मात्र भेष/लिंग से कल्याण नहीं

धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्ख हि।

करियउ किरियाकम्म मरिउ जमिउ बहिरप्पुजिउ।। (68) रयण।

अन्वयार्थ- (बहिरप्पुजिउ) बहिरात्मा जीव (धरियउ बाहिरलिंगं) बाह्य लिंग को धारण कर (बाहिरक्खसोक्खं हि) बाह्य में इन्द्रिय जनित सुख को ही (परिहरियउ) त्याग करके (किरियाकम्मं) क्रिया कर्मों को (करियउ) करता हुआ (मरिउ) मरता है (जमिउ) जन्म लेता है।

पद्य- बहिरात्मा (जीव) केवल बाह्य लिंग धारण कर, बाह्य इन्द्रिय सुख ही त्यागे

बाह्य क्रिया कर्म की करके जन्म-मरण को ही भोगते।।

समीक्षा- आत्मा श्रद्धान व समता-शान्ति बिन जो करते हैं बाह्य त्याग

उनके बाह्य क्रियाकर्म केवल बनते जन्म-मृत्यु के कारक।।

इससे शिक्षा मिले भले शक्ति अनुसार हो बाह्य त्याग।

किन्तु आत्म श्रद्धान-प्रज्ञा सहित-शान्ति से होता आत्मकल्याण।।

हेय उपादेय तत्त्वों का वर्णन

जीवादिबहित्तच्चं, हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।

कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो।।(38) नियमसार।

जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं--छोड़ने के योग्य हैं और कर्मरूप उपाधि से उत्पन्न होने वाले गुण तथा पर्यायों से रहित आत्मा आत्मा के लिए उपादेय है--ग्रहण करने के योग्य है।

निर्विकल्प तत्त्व का स्वरूप

णो खलु सहावठाणा, णो माणवमाणभावठाणा वा।

णो हरिसभावठाणा, णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा।।(39)

निश्चय से जीव के स्वभावस्थान (विभाव स्वभाव के स्थान) नहीं है, मान अपमान भाव के स्थान नहीं है, हर्षभाव स्थान नहीं है तथा अहर्षभाव के स्थान नहीं हैं।

णो ठिदिबंधट्टाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा।

जो अणुभागट्टाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा।।(40)

जीव के स्थितिबंधस्थान नहीं है, प्रकृतिस्थान नहीं है, प्रदेशस्थान नहीं है, अनुभागस्थान नहीं है और उदयस्थान नहीं है।

भावार्थ—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश की अपेक्षा बंध के चार भेद हैं सो जीव के चारों ही प्रकार के बंधस्थान नहीं है। जब बंधस्थान नहीं है तब उनके उदयस्थान कैसे हो सकते हैं? वास्तव में बंध और उदय की अवस्था व्यवहारनय से है, यहाँ निश्चय की प्रधानता से उसका निषेध किया गया है।

णो खइयभावठाणा, णो खयउवसमसहावठाणा वा।

ओदइयभावठाणा, णो उवसमणे सहावठाणा वा।।(41)

जीव के क्षायिक भाव के स्थान नहीं है, क्षायोपशमिक स्वभाव के स्थान नहीं है, औदयिक भाव के स्थान नहीं है और औपशमिक स्वभाव के स्थान नहीं हैं।

भावार्थ—कर्मों की क्षय, क्षयोपशम, उपशम और उदयरूप अवस्थाओं में होनेवाले भाव क्रम से क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और औदयिक भाव कहलाते हैं। ये परनिमित्त से होने के कारण जीव के स्वभावस्थान नहीं है। निश्चयनय जीव के कर्मबंध को स्वीकृत नहीं करता इसलिए कर्मों के निमित्त से होनेवाली अवस्थाएँ भी जीव की नहीं हैं।

चउगइभवसंभमणं, जाइजरामरणरोयसोका य।

कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति।।(42)

जीव के चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नहीं हैं।

णिहृंदो णिहृंदो, णिम्मो णिक्कलो णिरालंबो।

णिरागो णिहोसो, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।। (43)

आत्मा निर्दंड-मन वचन काय के व्यापार से रहित हैं, निर्द्वन्द्व है, निर्मम है, निष्कल-शरीररहित है, निरालंब है, नीराग है, निर्मूढ है और निर्भय है।

णिगगंथो णीरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।

णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा।। (44)

आत्मा निर्ग्रंथ है, नीराग है, निःशल्य है, सकल दोषों से निर्मुक्त है, निष्काम है, निष्क्रोध है, निर्मान है और निर्मद है।

वण्णरसंगंधफासा, थीपुंसगओसयादिपज्जाया।

संठाणा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति।। (45)

वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि पर्याय, संस्थान और संहननादि पर्याय ये सभी जीव के नहीं हैं।

तब फिर जीव कैसा है?

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणसमुहं।

जाण अलिंगगहणं, जीवमणिद्धिसंठाणं।। (46)

जीव को रसरहित, रूपरहित, गंधरहित (अतएव बाह्य में) अव्यक्त-अप्रकट, चेतनागुण से सहित, शब्दरहित, लिंग अर्थात् इंद्रियों के द्वारा अग्राह्य और किसी निर्दिष्ट आकार से रहित जानो।

जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।

जरमरणजम्ममुक्का, अट्टगुणालंकिया जेणा।। (47)

जैसे सिद्धात्माएँ हैं वैसे ही संसारी जीव हैं, क्योंकि (स्वभावदृष्टि से भी) जरा, मरण और जन्म से रहित तथा सम्यक्त्वादि आठ गुणों से अलंकृत हैं।

असरिरा अविणासा, अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।

जह लोयग्गे सिद्धा, तह जीवा संसिदी पोया।। (48)

जिस प्रकार लोकाग्र में स्थित सिद्ध भगवान् शरीररहित, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा हैं उसी प्रकार (स्वभावदृष्टि से) संसार में स्थित जीव जो

शरीररहित, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा हैं।

एदे सव्वे भावा, ववहारणयं पडुच्च भणिदा दु।

सव्वे सिद्धसहावा, शुद्धणया संसिदी जीवा।। (49)

वास्तव में ये सब भाव व्यवहारणय की अपेक्षा कहे गये हैं। शुद्ध नय से संसार में रहनेवाले सब जीव सिद्ध स्वभाववाले हैं।

भावार्थ—यद्यपि संसारी जीव की वर्तमान पर्याय दूषित है तो भी उसे द्रव्य स्वभाव की अपेक्षा सिद्ध भगवान् के समान कहा गया है।

परद्रव्य हेय है और स्वद्रव्य उपादेय है

पुव्वुत्तसयलभावा, परदव्वं परसहावमिदि हेयं।

सगदव्वमुवादेयं, अंतरतच्चं हवे अप्पा।। (50)

पहले कहे हुए समस्त भाव परद्रव्य तथा परस्वभाव है, इसलिए हेय हैं, छोड़ने के योग्य हैं और आत्मा अंतस्तत्त्व-स्वभाव तथा स्वद्रव्य है अतः उपादेय है।

ठाणणिसेज्जविहारा, ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।

तम्हा ण होइ बंधो, साकट्टं मोहणीयस्स।। (175)

केवली के खड़े रहना, बैठना और विहार करना इच्छापूर्वक नहीं होते हैं, इसलिए उन्हें तन्निमित्तक बंध नहीं होता। बंध उसके होता है जो मोह के उदय से इंद्रियजन्य विषयों से सहित होता है।

कर्मक्षय से मोक्ष प्राप्त होता है

आउस्स खएण पुणो, णिण्णाओ होइ सेसपयडीणं।

पच्छा पावइ सिग्घं, लोयगं समयमेत्तेण।। (176)

आयु के क्षय से केवली के समस्त प्रकृतियों का क्षय हो जाता है, पश्चात् वे समयमात्र में शीघ्र ही लोकाग्र को प्राप्त कर लेते हैं।

कारण परमतत्त्व का स्वरूप

जाइजरमरणरहियं, परमं कम्मडुवज्जियं सुद्धं।

णाणाइचउसहावं, अक्खयमविणासमच्छेयं।। (177)

वह कारणपरमतत्त्व जन्म जरा और मरण से रहित है, उत्कृष्ट है, आठ कर्मों से वर्जित है, शुद्ध है, ज्ञानादिक चार गुणरूप स्वभाव से सहित है, अक्षय है, अविनाशी है और अच्छे-छेदन करने के अयोग्य है।

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावविणिमुक्कं।

पुणरागमणविरहियं, णिच्चं अचलं अणालंबं।। (178)

वह कारणपरमतत्त्व अव्याबाध, अनिन्द्रिय, अनुपम, पुण्य-पाप से निर्मुक्त, पुनरागमन से रहित नित्य, अचल और अनालंब-पर के आलंबन से रहित है।

निर्वाण कहाँ होता है?

णवि दुःखं णवि सुक्खं, णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।

णवि मरणं णवि जणणं, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। (179)

जहाँ न दुःख है, न सांसारिक सुख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न मरण है और न जन्म है, वहीं निर्वाण होता है।

ण वि इंद्रिय उवसग्गा, ण वि मोहो विम्हियो ण णिहा य।

णय तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। (180)

जहाँ न इंद्रियाँ हैं, न उपसर्ग हैं, न मोह हैं, न विस्मय हैं, न तृषा हैं और न क्षुधा हैं वहीं निर्वाण होता है।

ण वि कम्मं णोकम्मं, णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।

णवि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।। (181)

जहाँ न कर्म हैं, न नोकर्म हैं, न चिंता है, न आर्त-रौद्र ध्यान है और न धर्म्य शुक्ल ध्यान है, वही निर्वाण होता है।

सिद्ध भगवान् का स्वरूप

विज्जदि केवलणाणं, केवलसोक्खं च केवलं विरयं।

केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सपदेसत्तं।। (182)

उन सिद्ध भगवान् के केवलज्ञान है, केवलसुख है, केवलवीर्य है, केवलदर्शन है, अमूर्तिकपना है, अस्तित्व है तथा प्रदेशों से सहितपना है।

निर्वाण और सिद्ध में अभेद

णिव्वाणमेव सिद्धा, सिद्धा णिव्वाणमिदि समुद्धिद्धा।

कम्मविमुक्को अप्पा, गच्छइ लोयगपज्जंतं।। (183)

निर्वाण ही सिद्ध हैं और सिद्ध ही निर्वाण हैं ऐसा कहा गया है। कर्म से विमुक्त आत्मा लोकाग्रपर्यन्त जाता है।

असतो मा सद्गमय

-स्वामी यतीश्वरानन्द

मानव और सत्यः

हम सभी को तापत्रय सहन करने पड़ते हैं। ये हैं-आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ताप, अर्थात् स्वयं से, दूसरे प्राणियों से तथा प्राकृतिक प्रकोपों से उत्पन्न कष्ट। प्रायः ये तीनों एक साथ रहते हैं। लेकिन अधिकांश अवसरों में स्वयं हमारे द्वारा उत्पन्न समस्याएँ हमारे कष्टों के लिये मुख्य रूप से जिम्मेदारी होती है।

जीवन का लक्ष्य क्या है? तापत्रय से निवृत्ति। सभी दुःख और बन्धनों से बचने का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं। लेकिन यदि आनन्द और मुक्ति पाने की कोई सम्भावना ही नहीं होती है, तो कोई भी दुःख से छुटकारा पाने के लिये उत्सुक नहीं होता। यह सम्भावना, यह अव्यक्त सम्भावना, जीवन का मूल केन्द्रीय सत्य है। यदि लोगों की यह निश्चित धारणा होती है कि बचने का कोई उपाय नहीं है, तो कोई हिलता-डुलता भी नहीं।

हममें से प्रत्येक में अमरत्व, ज्ञान और सुख की स्पृहा है। हम सभी जीना चाहते हैं, और वह भी सचेतन और आनन्दपूर्वक। तात्पर्य यह है कि सत्, चित् और आनन्द हमारी आत्मा का, हमारे वास्तविक स्वरूप का सार है।

और जब हम बाह्यजगत् का विश्लेषण करते हैं, तब भी समस्त दृश्य जगत् के पीछे हम इन्हीं को अवस्थित पाते हैं। जड़-चेतन सभी पदार्थ अस्तित्ववान् हैं। और सभी वस्तुओं में हमारी चेतना को प्रभावित करने की क्षमता है। प्रत्येक वस्तु में एक प्रकार की ज्योति है, जो जड़ और चेतन सब में प्रकाशित होती है। इस विषय में प्रकार का भेद नहीं है केवल मात्रा का भेद है। आन्तर-जगत् की तरह बाह्य-जगत्

में भी सत्ता और चेतना का यह सतत बोध बना रहता है। इस तरह हमारे भीतर ही नहीं, अपितु सभी बाह्य पदार्थों में सत्य की झलक दिखाई देती है। पुनः हमारे चारों ओर दिखाई देने वाले स्थूल पदार्थ, सभी की कुछ न कुछ आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। हम सभी इन्द्रिय विषयों की ओर दौड़ते हैं, जिनसे हम इन्द्रिय-विशेष का सुख पाने की आशा रखते हैं, चाहे वे कैसे ही क्यों न हो। सुख की इच्छा हममें सदा बनी रहती है। इन्द्रिय-विषय मन को इसलिए आकृष्ट करते हैं कि उनसे हमें सुख प्राप्त होने की आशा बनी रहती है। इसी कारण हम प्रलोभित होते हैं, उस वस्तु की अपनी किसी विशेषता के कारण नहीं। इस तरह हम देखते हैं कि प्रत्येक बाह्य-पदार्थ के स्वयं बने रहने की, उसके प्रति हममें चेतना पैदा करने की, तथा हमारे मन को आकृष्ट करने की क्षमता होती है।

लेकिन यदि हम उन पदार्थों का विश्लेषण करें तो पाएंगे, कि अन्तिम विश्लेषण में हम उनके नाम और रूप का ही पता लगा सकते हैं, उसके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकते। वे जिस सत्ता को अभिव्यक्त कर रहे हैं, वह फिलहाल हमारे लिये अज्ञात है। नाम और रूप हमारा और बाह्य विषयों का सत्य आवृंभि कर देते हैं, लेकिन सभी नाम और रूप उनके पार्श्व में विद्यमान सत्ता के प्रकाश का मन्द रूप में प्रतिबिम्बित करते हैं। हमारे आन्तर-जगत् तथा बाह्य-जगत् के सर्वसामान्य आधार तथा चरम-सत्ता को उपनिषेदों में ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा कहा गया है।

हममें इस सत्ता अथवा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध अथवा एकत्व का एक अचेतन बोध सदा बना रहता है। यह भले ही बहुत अस्पष्ट, बहुत धुमिल हो, लेकिन फिर भी वह रहता अवश्य है। समस्त आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य इस अस्पष्ट आत्मचेतन को सुस्पष्ट करना है। यदि हम सचमुच सत्य का साक्षात्कार करना चाहते हैं, तो हमें सर्वप्रथम अपने से ही प्रारम्भ करना चाहिए, और उसका पता लगाना चाहिए, जो हममे तथा हमारे अहंकार के पीछे विद्यमान है।

‘मैं’ का मौलिक बोध:

जब तक आत्मा का मिथ्या तादात्म्य, व्यक्तित्व का मिथ्या बोध बना रहेगा, तब तक चरम सत्य का साक्षात्कार कभी भी नहीं हो सकता। देह, मन और अहंकार के साथ हमारी आत्मा का तादात्म्य बना हुआ है, और इस तादात्म्य के काल में हमारी

चेतना का केन्द्र निरंतर परिवर्तित होता रहता है। व्यवहारिक स्तर पर कार्य करते अथवा जीते हुए भी अपनी चेतना को परमात्मा में बद्धमूल रखा जा सकता है, लेकिन देह और मन के साथ मिथ्या तादात्म्य बने रहने तक यह भी नहीं किया जा सकता। कभी हम देह के साथ तादात्म्य स्थापित कर कह उठते हैं: “ओह! मुझे चोट लग गई, मुझसे बहुत बुरा व्यवहार किया, मुझे इतनी चिंता हो रही है, मुझे बहुत दुःख है।” यह सब मिथ्या तादात्म्य है, लेकिन इस तादात्म्य में जो सामान्य घटक है, वह है, “मैं, मैं, मैं”-सदा यह “मैं” विभिन्न रूपों से उठता रहता है। और जब तक यह “मैं” रहेगा, तब हम ब्रह्म की एक झलक भी नहीं पा सकेंगे। लेकिन एक बात ध्यान देने की है: मिथ्या तादात्म्य के समय भी हमें “किसी” अपरिवर्तनशील वस्तु का बोध बना रहता है और साधक का लक्ष्य यह पता लगाना है कि अपरिवर्तनशील, नित्य, विद्यमान “वह” क्या है।

यह “मैं” क्या है? “ज्ञाता को कैसे जानें?” अनन्त की धारणा के बिना सान्त का चिंतन कभी भी सम्भव नहीं है, चाहे वह धारणा कितनी भी अस्पष्ट क्यों न हो। एक को स्वीकार करने से हम दूसरे को भी स्वीकार कर लेते हैं। हम अनन्त की परिभाषा नहीं कर सकते, विशुद्ध चैतन्य अर्थात् ब्रह्म की धारणा नहीं कर सकते, लेकिन भले ही उसका वर्णन न किया जा सके पर उसका प्रज्ञा की सहायता से साक्षात्कार किया जा सकता है। अपरोक्ष अतिचेतन अनुभूति जैसी एक अवस्था होती है।

“सत्य का साक्षात्कार उसे होता है, जिसे वह वरण करता है, तथा जिसके समक्ष वह प्रकट होता है। अद्वैत के दृष्टिकोण से तुम स्वयं अपना ही चयन या वरण करते हो, क्योंकि यह आत्मा या सत्य तुमझे कोई भिन्न वस्तु नहीं है, और यदि तुम स्वयं को सत्य के ज्ञाता के रूप में चुनो और उसके लिये प्रयत्न करो, तो तुम वही हो जाओगे। अद्वैत की दृष्टि से आध्यात्मिक साक्षात्कार आत्मसाक्षात्कार ही है।”

द्वैतपरक दृष्टिकोण के अनुसार ईश्वर वरणकर्ता है। भगवान की कृपा उन पर होती है, जिन्हें वह चुनता है। लेकिन यहाँ भी व्यक्ति की, जीव की समस्या बनी रहती है। भगवत्कृपा उन्हीं पर होती है, जो उसके लिये तत्पर है, जिन्होंने पवित्रता के लिये कठोर साधना की है। अचानक पवित्र जीवन की ओर मुड़ने वाले तथा कथित “पापियों” के जीवन में भी उनके “पाप कर्म” ही उन्हें उनके निकृष्ट मन की

गतिविधि की जानकारी प्रदान करते हैं। उनमें शुद्धि के लिये अचेतन, लेकिन तीव्र, संघर्ष होता रहता है। द्वैतपरक दृष्टिकोण से आध्यात्मिक अनुभूति का अर्थ भगवत्साक्षात्कार है।

अद्वैतमतानुसार आत्मसाक्षात्कार और भगवत्साक्षात्कार एक ही है। द्वैतमत में इन दोनों में अन्तर माना गया है: पहले आत्मसाक्षात्कार होता है, उसके बाद भगवत्साक्षात्कार होता है। लेकिन दोनों पथों में ही अहं-बोध का अतिक्रमण करना और आत्मा को पहचानना आवश्यक है। वास्तविक आध्यात्मिक जीव का प्रारम्भ आत्मा अन्वेषण के बाद ही होता है। “साहसी बनो और सत्य का सामना करो।” निर्मम आत्मविश्लेषण करो। सर्वप्रथम अपनी आत्मा को पहचानकर पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करो। तुम्हारी आत्मा प्रायः पूरी तरह खो गई है, और उसे पुनः पाने पर ही उच्चतर अनुभूति की बात उठ सकती है। मानव की अपनी आत्मा की खोज से आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होता है। आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ इस सत्य की स्वीकृति से होता है कि हम न देह हैं, न भावनाओं के समूह, न स्त्री हैं, न पुरुष, बल्कि विराट् चैतन्य सत्ता के अंग हैं, जो अधिक सत्य हैं, तथा भौतिक-जगत् से अनन्त गुणा अधिक मूल्यवान् हैं। और हमारे समस्त प्रयासों के आधार के रूप में इस सत्य का बोध बना रहना आवश्यक है।

आध्यात्मिक जीवन के मूलभूत नियमः

जीव तथा विराट् के सम्बन्ध को निर्धारित करने वाले दो मौलिक सिद्धान्त हैं। प्रथम सिद्धान्त यह है: “व्यक्ति जिसे सत्य समझता है, वह उसकी समग्र सत्ता को, उसके विचारों, भावनाओं और इच्छाशक्ति को आकृष्ट करता है।” यदि यह असत्य जगत् हमें सत्य प्रतीत होगा, तो वह हमारे समग्र मन-प्राण को अपनी ओर खींच लेगा। यदि परमात्मा हमें सत्य प्रतीत होगा, तो हम संसार से विमुख होकर अपना समग्र मन भगवान् में लगाएँगे। संसार को सत्य मानने से हम उससे पूर्ण हो जाते हैं। परमात्मा को सत्य मानने से हम एकमात्र परमात्मा से ही परिपूर्ण हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि जो हमारे लिये यथार्थ है, हम उसी का अपने पूरे मन से अनुसरण करते हैं।

अतएव सत्य के स्वरूप के विषय में जिज्ञासा करना हमारे लिये आवश्यक

है। और इस विषय में अनुसंधान करने पर हम एक दूसरे सत्य का आविष्कार करते हैं, जो आध्यात्मिक जीवन का दूसरा मौलिक सिद्धान्त है। और वह है: “सत्य की हमारी धारणा हमारी अपने प्रति धारणा पर निर्भर करती है।” बालक के लिये उसकी गुड़ियाएँ सत्य, जीवन्त होती हैं। बड़े होने पर उसकी अपने बारे में धारणा बदलने पर गुड़ियाएँ अपनी सत्यता खो देती है। इसी तरह किशोरावस्था, यौवन तथा वृद्धावस्था में बाह्य जगत् की मानव की मान्यता में परिवर्तन होता है। हमारे अपने बारे में ज्ञान तथा जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में निकट का सम्बन्ध रहता है। हमारा बाह्य जगत् का ज्ञान सदा व्यक्तिगत परिवर्तन के बाद ही होता है।

नेत्ररोगग्रस्त राजा की प्रसिद्ध कहानी इस बात का दृष्टान्त है। डाक्टरों ने राजा को सदा हरे रंग की वस्तुओं को देखने की सलाह दी। राजा ने महल, बगीचे आदि सभी स्थानों को हरे रंग से रंगने का आदेश दिया। लेकिन बुद्धिमान मंत्री ने इसके बदले हरे रंग का चश्मा पहनने का सुझाव दिया। तब राजा को सारा संसार हरा दिखने लगा। हमारी अपने प्रति धारणा में परिवर्तन होने पर, स्वयं को आत्मा समझने पर, आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ होता है। स्वयं को आत्मा समझने पर हम परमात्मा की खोज में लग जाते हैं।

भौतिक जगत् के आध्यात्मिक जगत् से अधिक सत्य प्रतीत होने से पूर्व ही हमारी चेतना में हमारी देह आत्मा से अधिक सत्य हो गई होती है। सत्य तो यह है कि पहले हमारी चेतना के स्तर में गिरावट आती है, इसके बाद हम स्थूल देह तथा बाह्य जगत् के बारे में अधिक सचेतन होते हैं।

युक्त का आधार:

वेदान्त में प्रत्यक्ष अनुभूतिप्रमाण, युक्त का आधार है। यह तार्किक खण्डन-मण्डन या युक्तिवाद मात्र नहीं है। युक्ति सदा अनुभव पर आधारित होती है। युक्ति हमारी आत्मा के अखण्डनीय सत्य से प्रारम्भ होती है। डेकार्टे ने कहा था, “मैं सोचता हूँ, अतः मैं हूँ।” हिन्दू इस कथन को उलटकर कहेगा, “मैं हूँ, अतः मैं सोचता हूँ।” इस युक्ति को हमारे आस-पास के स्थूल जगत् और आन्तरिक मनोजगत् पर भी लगाया जाता है। तब हम पाते हैं कि आत्मा की एकमात्र अपरिवर्तनशील सत्ता है, और अन्य सब वस्तुएँ अनित्य हैं। जो परिवर्तनशील हैं,

उसे असत्य होना चाहिए या जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की तीन अवस्थाओं में नित्य विद्यमान वस्तु से कम सत्य होना ही चाहिए। वेदान्त का साधक इस तरह सत्यासत्य या नित्यानित्य विवेक करता है।

स्पष्ट विश्लेषण करना चाहिए हम अपने विचारों से पृथक् खड़े होकर उनका अवलोकन भी कर सकते हैं। हम मन को देख सकते हैं। अतः मन एक वस्तु है, जिसको कोई अन्य द्रष्टा देख सकता है।

रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं दृक्तु मानसम्।

दृश्या धीवृत्तयस्साक्षी दृगेव न तु दृश्यते।।

अर्थात् “रूप दृश्य है, जिसे नेत्ररूपी द्रष्टा देखता है। वह (नेत्र) दृश्य है, और मन द्रष्टा है। बुद्धिवृत्तियाँ साक्षी के द्वारा देखी जाती हैं, जो द्रष्टा है। लेकिन साक्षी (आत्मा) किसी के द्वारा नहीं देखा जाता।”

इस तरह आत्मविश्लेषण तथा हमारे वास्तविक स्वरूप का अन्वेषण किया जाता है। इससे दृश्य पदार्थों के द्रष्टा, साक्षी आत्मा की झलक प्राप्त होती है। लेकिन चरम सत्य दृश्य तथा द्रष्टा दोनों के परे है।

जब तुम बहुत मननशील होते हो, तब तुम अपने आपसे कहते हो, “यह विचार मेरे मन में उठ रहा है” इत्यादि। इस तरह तुम अपने ही विचारों के द्रष्टा बन जाते हो। मन, उठ रहे तथा विलीन हो रहे अनेक विचारों द्वारा निर्मित है। अतः मन निरंतर परिवर्तित होता रहता है। लेकिन साक्षी आत्मा कभी परिवर्तित नहीं होता। मानव की सत्य की कभी गवेषणाएँ सदा इसी अपरिवर्तनशील आत्मा से प्रारम्भ होनी चाहिए। आत्मचेतनसत्ता हमारे समग्र व्यक्तित्व का मूल आधार है। समग्र भौतिक और मानसिक परिवर्तनों के बीच हममें कोई अपरिवर्तनशील सत्ता बनी हुई है। और इससे हमें चरम सत्य की प्राप्ति की दिशा प्राप्त होती है।

जो वस्तु हमारी चेतना में सत्य है, वह सदा सत्य बनी रहती है। यदि बुदबुदा नष्ट हो जाए, तो भी जल के कण बने रहते हैं। देह बुदबुदा है, आत्मा मानो जल बिन्दु है। हमारी वास्तविक सत्ता सदा बनी रहती है। जो चरम सत्य नहीं है, वह नष्ट हो जाता है। देह नष्ट हो जाती है; अपरिवर्तनशील आत्मा नित्य, अमर बनी रहती है।

हमारी अपने सम्बन्ध में धारणा का हमारी गतिविधियों पर महत्वपूर्ण प्रभाव

पड़ता है। मान लो कि हम स्वयं को देह समझते हैं, तब शारीरिक सुख-भोग जीवन का उद्देश्य बन जाता है। और मान लो, हमारी यह मान्यता बन जाय कि आत्मा मृत्यु के बाद बनी रहती है, तथा हमारा भावी जीवन पूरी तरह हमारी वर्तमान शारीरिक और मानसिक क्रियाओं पर निर्भर है, तब हमारा दृष्टिकोण क्या होगा? तब हम भिन्न प्रकार से आचरण करेंगे, क्योंकि मृत्यु के समय सब कुछ नष्ट हो जाने वाला नहीं है। तब फिर हम उसकी खोज करने का प्रयत्न करेंगे, जिससे हमारी आत्मा को पूर्णता, शान्ति और धान्यता प्राप्त हो। तात्पर्य यह है कि हमारे दृष्टिकोण का, हमारे दैनन्दिन आचरण और चिंतन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। विवेक के द्वारा हमें सही दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए।

अन्तः (स्व) प्रवृत्ति से पर (बाह्य) निवृत्ति (दोनों परस्पर उपकारी)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:- 1.किसी ने अपना बनाके...2.सायोनारा...3.आत्मशक्ति...)

अन्तः/ (स्व) प्रवृत्ति में/(से)बाह्य/(पर) निवृत्ति...

पर निवृत्ति से स्व प्रवृत्ति...

परस्पर उपकारी दोनों होते हैं...दोनों से ही मिलती परम मुक्ति...(स्थायी)...

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ...मिथ्यात्व के उपशमादि होने से...

तत्त्वार्थश्रद्धान व आत्मश्रद्धान में...होती प्रवृत्ति देव शास्त्र गुरु में...

अष्टमद् व अष्टदोष विसर्जन...उपशम संवेग वैराग्य आस्तिक्य होते...

अष्टगुण व अष्टअंग भी होते...मैत्री प्रमोद करुणा माध्यस्थ (सुज्ञान) होते...(1)

इससे अप्रत्याख्यान चतुष्टय के...उपशमादि से अणुव्रत में होती प्रवृत्ति...

फैशन व्यसन अन्याय भ्रष्टाचार नशते...दया दान सेवा पूजा परोपकारादि होते...

धर्म न होता ख्याति पूजा लाभ निमित्त...आत्माविशुद्धि हेतु आत्मा होता धर्म में प्रवृत्त...

दुःखक्षय कर्मक्षय बोधि लाभ निमित्त...समाधिमरण से जिनगुण प्राप्ति निमित्त...(2)...

मल से निर्लिप्त कमल सम प्रवृत्ति...साधु बनने की सदा भावना होती...

भोगोपभोग सत्ता सम्पत्ति ख्याति...पर मानकर स्व में होती प्रवृत्ति...

इससे प्रत्याख्यान चतुष्टय के...उपशमादि के महाव्रत में होती प्रवृत्ति...

समस्त बहिरंग परिग्रहों से निवृत्ति...स्व उपलब्धि हेतु समता प्रवृत्ति...(3)
आत्माविशुद्धि हेतु ही ध्यान अध्ययन...निस्पृह एकान्त मौन आचरण...

ख्याति पूजालाभ प्रसिद्धि वर्चस्व...संकल्प विकल्प संक्लेश विसर्जन...
इससे होती समस्त पर से निवृत्ति...स्व में ही स्व को होती प्रवृत्ति...

इससे मिले शुद्ध बुद्ध आनन्द...अतएव 'कनक' स्व में होता प्रवृत्त...(4)...

ग.पु.कॉलोनी, दि-18/6/2019, प्रातः 8.06 (केशलॉच के दिन)

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

संदर्भ-

अभवच्चित्तविक्षेपः एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।

अभ्यस्येदयोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥ (36)

He in whose mind no disturbances occur and who is established in the knowledge of the self such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकान्त स्थान में तथा अंतरंग राग, द्वेषादि रहित एकान्त-भाव से योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

समीक्षा: अनादिकाल से यह जीव स्व स्वरूप से बहिर्मुख होकर इन्द्रियाँ एवं मन में माध्यम से स्व-शक्ति का विघटन, बिखराव, ह्रास एवं क्षय कर रहा है। इसको ही बाह्य प्रवृत्ति, कुध्यान, अपध्यान, आर्त्तध्यान, रौद्र-ध्यान, संसारवर्धिनीध्यान कहते हैं। बाह्य से निवृत्ति होकर स्व में रमण रूप प्रक्रिया को ही सुध्यान, धर्मध्यान, शुक्लध्यान, योग, लीनता, समाधि आदि से अभिहित करते हैं।

इच्छा निरोधः ध्यानः, इच्छा का सम्यक् रूप से निरोध करना ध्यान है।
उमास्वामी आ.श्री ने मोक्षशास्त्र में कहा भी है-

‘एकाग्र चिन्ता निरोधोऽध्यान’ चित्त को अन्य विकल्पों से हटाकर एक ही विषय में लगाने को ध्यान कहते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने भी ध्यान का लक्षण करते हुए पतञ्जलि योग दर्शन के प्रथम चरण में ही कहा है-

“योगश्चित्तवृत्ति निरोधः”

चित्त की वृत्तियों का जो निरोध है वह योग कहा जाता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है-समत्व योग उच्यते (2.48) बुद्धि की समता या समत्व को ही योग (ध्यान) कहते हैं अथवा “योगः कर्मसु कौशलम्” (2.50) अर्थात् शुभाशुभ से मुक्त होकर कर्म करने की कुशलता को योग कहते हैं।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध होता है कि मन (बुद्धि, चित्त) की प्रवृत्ति अन्य-अन्य विषय से हटकर एक विषय में स्थिर भाव से केन्द्रीभूत हो जाना, लीन हो जाना, स्थिर हो जाना ही ध्यान है। अतएव ध्याता को ध्यान करने के लिये जो अनिवार्य तथा प्रथम एवं प्रधान नियम है उसका वर्णन आचार्य पूज्यपाद स्वामी समाधि तन्त्र में निम्न प्रकार कहे हैं:-

यत्रैवाहितधीः पुंस श्रद्धा तत्रैव जायते।

यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते।।(95)

मनुष्य की बुद्धि में जो बात दृढ़ता से बैठ जाती है उसको उसी विषय का श्रद्धान या रूचि विश्वास हो जाता है और यहाँ रूचि पैदा हो जाती है, उसी विषय में सोते जागते तथा पागलपन या मूर्च्छित दशा में भी उसका मन रमा रहता है।

आत्मदृष्टा पुरुष की बुद्धि में आत्मा समाया हुआ होता है। इस कारण सब दशा में उसका मन अपने आत्मा में ही लगा रहता है। बहिरात्मा की बुद्धि अपने शरीर की ओर लगी रहती है, अतः अपने शरीर को ही अपने सर्वस्व (आत्मा) की श्रद्धा से देखा करता है, इसी कारण सोते जागते आदि सभी अवस्थाओं में उसका मन शरीर में ही लीन रहा करता है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।

यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः।। (96) समाधि तंत्र

मनुष्य की बुद्धि में जो बात ठीक नहीं समाती उस बात में उसको श्रद्धा रूचि नहीं होती और जिस विषय की श्रद्धा नहीं होती है उस विषय में उसका मन भी लीन

नहीं होता। तदनुसार अन्तरात्मा की बुद्धि में अपनी आत्मा समायी रहती है। अतः शरीर में उसकी रूचि नहीं होती इसी कारण से वह आत्मा में लीन रहता है, शरीर में उसकी नहीं होती। इसके विपरीत बहिरात्मा की समझ में शरीर के सिवाय आत्मा और कुछ नहीं है। अतः उसकी श्रद्धा आत्मा में नहीं होती। इसी कारण उसका मन भी आत्मा में लीन नहीं होता। यह जीव अनादिकाल से संसार शरीर भोग, उपभोग इन्द्रिय विषय के राग-रंग में रचा-पचा अनुभव किया सुना है। इसलिये वह विषय अनुभूत होने के कारण स्व स्वरूप सबसे अधिक निकटवर्ती होने पर भी मन की प्रवृत्ति स्व में सरलता से नहीं होती है। इसलिये बाह्य द्रव्यों से चित्त को हटाकर स्व में स्थिर करने के लिए स्वयं का मनन चिन्तन परिज्ञान सतत करना चाहिये। पूज्यपाद स्वामी ने समाधि तन्त्र में कहा है-

तदब्रूयात्तत्परान्मृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।

येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं ब्रजेत्॥ (52)

आत्म श्रद्धालु को वह आध्यात्मिक चर्चा करनी चाहिए, वह आत्मा सम्बन्धी ही बातें अन्य विद्वानों से पूछनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय ही चाह रखनी चाहिए। उसी आध्यात्मिक विषय में सदा तत्पर, तैयार या उत्सुक रहना चाहिये। जिससे अपनी आत्मा का अज्ञान भाव छोड़कर ज्ञान भाव प्राप्त हो।

गीता में कर्मयोगी नारायण श्री कृष्ण ने भी ध्यान के विषय में वर्णन करते हुये कहा है-

अविद्या, रागद्वेष इन्द्रिय विषय में रमायमान चित्त सर्वदा चंचल एवं क्षुभित रहता है इसलिये मन को स्थिर करना शीघ्र सहज साध्य नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए जब श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं तब अर्जुन श्रीकृष्ण को निम्न प्रकार अपना भाव प्रगट करते हैं-

चच्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ (34)

हे कृष्ण यह मन चंचल, हठीला बलवान और 'दृढ़' है। वायु के समान अर्थात् हवा को गठरी बाँधने के समान इसका निग्रह करना मुझे अत्यन्त दुष्कर दिखता है।

श्री कृष्ण अर्जुन की वास्तविक परिस्थिति एवं कठिनाईयों को अनुभव करके निम्न प्रकार सम्बोधन करते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (35)

असंयतात्मना योगो दुष्प्रावृत इति मे मतिः।

वश्यात्मना तु यतता शक्याऽवाप्तुमुपायतः॥ (36)

है महाबाहु अर्जुन! इसमें संदेह नहीं, कि मन चंचल है और उसका निग्रह करना कठिन है, परन्तु है कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से वह स्वाधीन क्रिया जा सकता है। मेरे मत में जिसका अन्तःकरण वश में नहीं, उसका (इस साम्यबुद्धि रूप) योग को प्राप्त होना कठिन है, किन्तु अन्तःकरण को वश में रखकर प्रयत्न करते रहने पर, उपाय से (इस योग का) प्राप्त होना सम्भव है।

जैसे जल स्वभावतः तरल एवं निम्नगामी है उसी प्रकार मन भी निम्नगामी है। मन की प्रवृत्ति विषय, कषाय में, राग-द्वेष में, राग रंग में होना सहज-सरल है। जैसे जल को घन या ऊर्ध्वगामी बनाना श्रम साध्य एवं समय साध्य है। जब जल तरल रहता है तब जल स्वाभाविक रूप से अधोगमन करता है परन्तु जब घन तुषार रूप परिणमन करता है तब जल अधोगमन नहीं करता है। उसी प्रकार मन, ज्ञान, वैराग्य, संयम, मनन-चिंतन, अनुप्रेक्षा अभ्यास के बल से दृढ़ घनीभूत हो जाता है। तब मन अधोगामी (विषय कषायों की ओर प्रवृत्ति करना) चल (अस्थिर, क्षुभित, अशांत व्यथित) नहीं रहता है। मन को निर्मल, स्थिर, शांत बनाना विश्व का सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे क्लिष्ट कार्य है। मन चंचल होने का कारण राग-द्वेष है, एवं मन स्थिर होने का कारण राग-द्वेष की निवृत्ति है।

रागद्वेषादिक्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।

स पश्यात्यात्मस्तत्त्वं तत्तत्त्वं नैतरो जनः॥ (35) समाधि तंत्र

जिस पुरुष का मन रूपी जल, राग-द्वेष, मोह, मद, क्रोध, लोभ, माया आदि की लहरों से चंचल नहीं है, वह मनुष्य अपने आत्मा के वास्तविक स्वरूप को अपने निर्मल मन में देख लेता है। अन्य मनुष्य उस आत्मा के स्वरूप को नहीं देख पाता।

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।

धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः॥ (36)

मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रान्ति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग-द्वेष मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए। राग, द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिये।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।

तदैव ज्ञान संस्कारैः, स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते॥ (37)

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगों में फँस जाता है वही मन आत्मा शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

आत्म संवित्ति का फल-विरक्ति

यथा यथा समायति, संवित्तौ तत्त्वमुक्तमम्।

तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि॥ (37)

As greater and greater progress is made in the realigation of the glorious self, so is lessened, more and more, the liking for even those objects of pleasure which may be obtained with ease.

“शमसुखशीलितमनसामशनमपि द्वेषमेति किमु कामाः।

स्थलमपि दहाति झषाणां किमङ्ग पुनरङ्गमाराः॥”

पुनः शिष्य शंका करता है कि-आत्म स्वरूप का अभ्यास कैसे करना चाहिये? हे भगवान्! आपने जो लक्षण कहा है उस लक्षणरूप संवित्ति में प्रवर्तन किस उपाय से योगीजन करते हैं और उसे जानते हैं? आचार्य देव कहते हैं कि-हे धीमान् शिष्य! उसका वर्णन कर रहा हूँ उसे तुम सुनो-

जैसे-जैसे विशुद्ध आत्मस्वरूप के अभिमुख योगीजन गमन करते हैं अर्थात् आत्मस्वरूप में लीन होकर उसकी अनुभूति करते हैं वैसे-वैसे सुलभ भी रमणीय इन्द्रिय जनित भोग में बुद्धि उत्पन्न नहीं होती है। महासुख की उपलब्धि होने पर अल्पसुख के कारण का अनादर लोक में भी दिखाई देता है। इसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है-

जिस प्रकार जल रहित स्थलभाग भी मछली को जलाता है तब अग्नि की बात ही क्या है? अर्थात् अग्नि से तो मछली जलेगी ही, मृत्यु, को प्राप्त करा लेगी। उसी प्रकार जिसका चित्त समतारूपी सुख से सम्पन्न है उन्हें भोजन लेने पर भी द्वेष होता है अर्थात् भोजन में भी आसक्ति नहीं होती है। तब उन्हें कामभोग में कैसे द्वेष नहीं होगा? अर्थात् निश्चय से विरक्ति होगी।

समीक्षा: कामभोग कर्मजनित वैभाविक भाव होने के कारण जितने-जितने अंश में आत्मा का स्वाभाविक भावस्वरूप आत्मानुभूति प्रगट होती जाएगी उतने-उतने अंश में कामभोग से विरक्ति होती जाएगी। जिस प्रकार की जितने-जितने अंश में प्रकाश होता जाता है उतने-उतने अंश में अंधेरा दूर होता जाता है। घनांधकार में भी जब दीपक प्रज्वलित होता है तब भी प्रकाश के अनुपात से अंधकार दूर होता है उसी प्रकार सुलभ भी प्रचुर भोगरूपी अंधकार में वैराग्य रूपी आत्म-ज्योति प्रगट होता है उतने अंश में भोग से विरक्ति हो जाती है। राजर्षि भृतरि ने कहा भी है-

रम्य हर्म्यतलं न किं वसयते श्रव्यं न गोयादिकं

किं वा प्राणसमासमागम सुखं नैवधिकं प्रीयते।

किंतु भ्रान्तपतत्पतंगपवनव्यालोलदीपांकुर-

च्छायाचंचलमाकलय्य सकलं सन्तो वनान्तं गता।। (55)

क्या सन्त महात्माओं के रहने के लिए बड़े-बड़े राजप्रसाद न थे? क्या उनके सुनने के लिए अच्छे-अच्छे संगीत न थे। क्या प्राण के समान अत्यन्त प्रिय स्त्रियों का समागम सुख उनको अधिक प्रीतिकर न था कि उन्होंने इस संसार को गिरते पतंग की हवा से हिली हुई दीपक की छाया के समान चंचल जानकर निर्जन वन में चला जाना ही श्रेयस्कर समझा।

साम्राज्यां कथमप्यवाप्य सुचिरात्संसारसारं पुनः।

त्यक्त्वैव यदि क्षितिश्रवराः प्राप्ताः श्रियं शाश्वतीम्।।

त्वं प्रागेव परिग्रहान् परिहर त्याज्यान् गृहीत्वापि ते।

मा भूत भौतिकमोदकव्यतिकरं संपाद्य हास्यास्पदम्।। (40) आत्मानु.

जिस किसी प्रकार से संसार के सारभूत साम्राज्य (सार्वभोम राज्य) को चिरकाल में प्राप्त करके भी यदि चक्रवर्ती उसे छोड़ने के पश्चात् ही अविनश्वर मोक्ष-

लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं तो फिर तुम त्यागने के योग्य उन परिग्रहों (विषयों) को ग्रहण करने के पहिले ही छोड़ दो। इससे तुम परिव्राजक के लड्डू के समान विषयों का सम्पादन करके हँसी के पात्र न बन सकोगे।

अव्युच्छिन्नः सुखपरिकरैर्लालिता लोलरम्यैः।

श्यामाङ्गुलीनां नयनकमलैरचिता यौवनान्तम्॥

धन्योऽसि त्वं यदि तनुरियं लब्धबोधेर्मृगीभिः।

दग्धारण्यये स्थलकमलिनी शङ्क्यालोक्व्यते ते॥ (88)

निरन्तर प्राप्त होने वाले सुख-सामग्री से पालित और यौवन के मध्य में सुन्दर स्त्रियों के चंचल एवं रमणीय नेत्रोरूप कमलों से पूजित अर्थात् देखा गया ऐसा वह तेरा शरीर विवेकज्ञान के प्राप्त होने पर यदि जले हुए वन में हिरणियों के द्वारा स्थलकमलिनी को आशंका से देखा जाता है तो तू धन्य है-प्रशंसा के योग्य है।

आत्म-संवित्ति एवं विरक्ति का सम्बन्ध

यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि॥

तथा तथा समायति, संवित्तौ तत्त्वमुक्तमम्॥(38)

As even those objects of please which are easily obtainable become increasingly intolerable in the same measure does the glorious self come into one's enjoyment!

“विरमकिमपरेणाकार्यकोलाहलेन,

स्वयमपि निभृतः सन्यश्च षण्मासमेकम्।

हृदयसरसि पुसं पुद्गलाभिन्नधाम्नो,

ननु किमनुपलब्धिर्भाति किं चोपलब्धिः॥” (नाटकः-समयसार)

विषय विरक्ति ही योगी की स्व-आत्म-संवित्ति की सूचना देने वाली है, उसके अभाव से अर्थात् विषय विरक्ति के अभाव से आत्म-संवित्ति भी नहीं हो सकती है। विषय विरक्ति से आत्म-संवित्ति भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है। यथा-समयसार कलश में कहा भी है-

हे आत्मन्! तू बिना प्रयोजन के इस निष्फल कोलाहल से विरक्त हो और

स्वयं में लीन होकर छह महीने पर्यन्त इस चैतन्य स्वरूप आत्म स्वरूप का अवलोकन करो अर्थात् अनुभव करो ऐसा करने पर क्या पुद्गल से भिन्न चैतन्य-ज्योति स्वरूप आत्म-की प्राप्ति तेरे इस हृदय रूपी सरोवर में नहीं होगी! अर्थात् अवश्य, होगी।

समीक्षा:-जैसे जैसे प्रकाश फैलता है वैसे वैसे ही अन्धकार दूर होता जाता है। इसी प्रकार जैसे जैसे विषय विरक्ति होती है वैसे-वैसे आत्म संवित्ति वृद्धि होती जाती है। क्योंकि विषय शक्ति और आत्म-संवित्ति परस्पर विरोध गुण है। विरोधी गुणों में से एक गुण की वृद्धि होने पर दूसरे विरोधी गुण की हानि होना स्वाभाविक है। यथा उष्णता एवं शीतलता परस्पर विरोधी गुण होने से उनमें से कोई एक गुण की वृद्धि होने पर दूसरे गुण की हानि होती है। इससे सिद्ध होता है कि जो मोक्ष सुख चाहता है उसे विषय-सुख त्याग करना आवश्यक है। अष्टावक्र गीता में भी कहा है-

पश्यभूतविकारांस्त्वं भूतमात्रान् यथार्थतः।

तत्क्षणाद्बन्धनिर्मुक्तः स्वरूपस्मो भविष्यसि।। (7)

अब चैतन्यस्वरूप के साक्षात् करने का उपाय कहते हैं:-

हे शिष्य! भूतविकार अर्थात् देह, इंद्रिय आदि को वास्तव में जड़ जो पंचमहाभूत उनका विकार जान आत्मस्वरूप मत जान। यदि गुरुश्रुति और अनुभव से ऐसा निश्चय कर लेगा तो तत्काल ही संसार बंधन से मुक्त होकर शरीर आदि से विलक्षण जो आत्मा, उस आत्मस्वरूप विषय स्थिति को प्राप्त होगा, क्योंकि शरीर आदि के विषय आत्मभिन्न जडत्व आदि का ज्ञान होने पर इन शरीर आदि का साक्षी जो आत्मा सो शीघ्र ही जाना जाता है।

वासना एवं संसार इति सर्वा विमुञ्च ताः।

तत्यागोवासनात्यागात्स्थितिरद्यथातथा।। (8)

इस प्रकार आत्मज्ञान होने पर आत्मज्ञान के विषय निष्ठा होने के लिये वासना के त्याग करने को उपदेश कहते हैं-विषयों के विषय वासना होना ही संसार है, इस कारण हे शिष्य! उन सम्पूर्ण वासनाओं का त्यागकर, क्योंकि वासना के त्याग से आत्मनिष्ठा होने पर इस संसार का स्वयं त्याग हो जाता है और वासनाओं के त्याग होने पर भी संसार के विषय शरीर की स्थिति प्रारब्ध कर्मों के अनुसार रहती है।

विहारा वैरिणं काममर्थं चानखर्थं संकुलम्।

धर्ममध्येतायोर्हेतुं सर्वत्रानादरं कुरु॥ (1)

पूर्व विषयों के बिना भी संतोषरूप से वैराग्य का वर्णन किया, अब विषयतृष्णा के त्याग का गुरु उपदेश करते हैं: हे शिष्य! ज्ञान का शत्रु जो काम है, उस का त्याग कर और जिसके पैदा करने में रक्षा करने में तथा खर्च करने में दुःख होता है सर्वथा दुःखों से भरे हुए अर्थ कहिये धन का त्याग कर तथा काम और अर्थ दोनों का हेतु जो धर्म, उसका भी त्याग कर और तदनंतर धर्म काम रूप त्रिवर्ग के हेतु जो सकाम कर्म उनके विषय आसक्ति का त्याग कर।

स्वप्नेन्द्राजालवत्पश्च दिनानी त्रीणि पंच वा।

मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः॥ (2)

इस प्रकार शिष्य शंका करता है कि-स्त्री, पुत्रादि और अनेक प्रकार के सुख देनेवाले जो कर्म उनका किस प्रकार त्याग हो सकता है? तब गुरु कहते हैं कि हे शिष्य! तीन अथवा पाँच दिन रहने वाले मित्र, क्षेत्र, धन, स्थान, स्त्री और कुटुम्ब आदि सम्पत्तियों को स्वप्न और इंद्रजाल के समान अनित्य जान।

यत्रयत्र भवेतृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।

प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भव॥ (3)

अब यह वर्णन करते हैं कि, सम्पूर्ण काम्य कर्मों में अनादर करना रूप वैराग्य ही मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण है, जहाँ-जहाँ विषयों की विशेष तृष्णा होती है वहाँ ही संसार जान, क्योंकि विषयों की तृष्णा ही कर्मों के द्वारा संसार का हेतु होती, इस कारण दृढ़ वैराग्य का अवलम्बन करके अप्राप्त विषयों में इच्छा रहित होकर आत्मज्ञान की निष्ठा करके सुखी हो।

तृष्णामात्रात्म को बन्धस्तत्राशोमोक्षउच्यते।

भवसंसक्तिमात्रेण प्राप्ति तुष्टिर्मुहुर्मुहः॥ (4)

उपरोक्त विषय को अन्य रीति से कहते हैं- हे शिष्य! तृष्णा मात्र ही बड़ा भारी बंधन है और उस तृष्णामात्र का त्याग ही मोक्ष कहलाता है, क्योंकि संसार के पीछे आसक्ति का त्याग करके बारंबार आत्म ज्ञान से उत्पन्न हुआ संतोष ही मोक्ष कहलाता है।

आत्म-संवित्तिवान् का लक्षण

निशामयति निश्लेषमिन्द्रजोलोपमं जगत्।

स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुत्प्यते।। (39)

The seeker of the self regards the whole world as a product of illusion and is moved by the desire to ating to self-realigation. If he ever becomes entangled in anything else he repents of it!

स्वात्मा संपत्ति की वृद्धि होने पर जो चिन्ह प्रकट होते हैं उसे है शिष्य तुम सुनो-योगी शब्द अन्तः दीपक होने के कारण उसे सर्वत्र जोड़ना चाहिये। जो स्व-आत्म-संवित्ति के रसिक/ध्याता है वह सम्पूर्ण चराचर बाह्य वस्तु को उपेक्षा रूप से देखता है। उसे हेय, उपादेय, ग्रहणीय एवं त्यजनीय का ज्ञान होने के कारण इन्द्रजालियाँ (जादुगर) के द्वारा प्रदर्शित सर्प व हार के समान समस्त सांसारिक वस्तु प्रति भाषित होती है। इसलिए वह संसार को इन्द्रजाल के समान अवास्तविक मानकर चिदानन्द स्वरूप स्व आत्म संवित्ति को चाहता है तथा स्वआत्मा से अतिरिक्त किसी वस्तु में स्व चित्त की प्रवृत्ति पूर्व संस्कार वश हो जाती है तब वह पश्चात्ताप करता है। वह दुःखी होकर सोचता है कि हाय मेरे से यह अनात्म कार्य कैसे हो गया।

आत्म-संवित्तिवान् का लक्षण

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।

निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रतुम्।। (40)

डाइमिथाइलट्रिप्टामाइन की खोज बताती है कि मानव मस्तिष्क ब्रह्माण्ड के चुम्बकीय क्षेत्र से जुड़ा होता है जिससे उसे अतीन्द्रिय बोध होते हैं। इसके चलते मस्तिष्क कथित असंभव कार्य कर पाने में सक्षम होता है।

मस्तिष्क-मन-चेतना से नियति का नाता

-डॉ अशोक पनगडिया

पद्मश्री और डॉ. बी.सी. रॉय अवार्ड से सम्मानित।

चिकित्सा शोध और शिक्षा क्षेत्र में सक्रिय हैं

कुछ शाश्वत सवालों का जवाब डीएनए भी नहीं दे पाता है, मसलन

डीएनए के भीतर ऐसा क्या होता है जो व्यक्तियों के विकास को तय करता है, आखिर क्यों कुछ व्यक्ति दूसरों के मुकाबले ज्यादा भाग्यशाली होते हैं, या फिर कुछ को दूसरों की तरह उतनी कामयाबी क्यों नहीं मिल पाती जितना वे श्रम करते हैं, इत्यादि। विज्ञान के पास डीएनए के यादृच्छिक व्यवहार की कोई व्याख्या मौजूद नहीं है।

अपने चार दशक की क्लीनिकल प्रैक्टिस में मन-मस्तिष्क की जटिलताओं पर विचार करने की प्रक्रिया में मैंने चालीस लाख लोगों से संवाद किया। ये दुनिया भर से तमाम किस्म के लोग रहे। एक न्यूराविज्ञानी के बतौर मेरा साक्षात्कार बिग बैंग की अवधारणा से हुआ, जहां पदार्थ, ऊर्जा, काल और देश का अद्भुत सम्मिश्रण दिखाई पड़ता है और जीवन के पैदा होने के क्रम में कैसे कुदरत की ताकतों का पहेलीनुमा, लेकिन वैज्ञानिक खेल प्रभावी होता है, इसे मैंने जाना। इसके बावजूद किसी मरीज के चमत्कारिक ढंग से ठीक होने या अप्रत्याशित मौत के पीछे छुपे वैज्ञानिक तर्क की अनुपयुक्तता ने मेरे भीतर बैठे विद्यार्थी को विज्ञान की एकरेखीयता से पार जाकर मनुष्य के बोध से इतर कुदरत की प्रक्रियाओं के विखंडन को समझने की सलाहियत दी।

यहीं पर मेरा साक्षात्कार कर्म और भाग्य की परस्पर विरोधी अवधारणों से हुआ। क्या ये वाकई विरोधी है? जब मैं डार्विन के सिद्धांत के आलोक में मनुष्य के विकास को देखता हूँ तो अचरज होता है कि एक ही वीर्य और रज से एक ही परिवार में जन्में, एक ही परिवेश में पोषित दो मनुष्य कैसे आगे चलकर दो भिन्न और विशिष्ट मनुष्य बन जाते हैं। सब कुछ समान रहने पर भी दो मनुष्य असेंबली लाइन में बने रोबोट जैसे एक समान क्यों नहीं होते।

देश-काल की सीमाओं से पार इस भिन्नता और विशिष्टता को समझने के लिए डीएनए की परस्पर सम्मिश्रण की अद्भुत ताकत को जानना होगा। इसके बावजूद कुछ शाश्वत सवालों का जवाब डीएनए भी नहीं दे पाता है, मसलन डीएनए के भीतर ऐसा क्या होता है जो व्यक्तियों के विकास को तय करता है, आखिर क्यों कुछ व्यक्ति दूसरों के मुकाबले ज्यादा भाग्यशाली होते हैं, या फिर कुछ को दूसरों की तरह उतनी कामयाबी क्यों नहीं मिल पाती जितना वे श्रम करते हैं,

इत्यादि। विज्ञान के पास डीएनए यादृच्छिक व्यवहार की कोई व्याख्या मौजूद नहीं है। अदृश्य का संधान करने वाले दार्शनिकों ने इस अज्ञात क्षेत्र में कुछ काम बेशक किया है। इस बहस को समझने में भगवत गीता हमें कुछ अंतदृष्टि दे सकती है।

गीता के अनुसार लाभ की मात्रा और प्रकृति परमात्मा यानी कोलाहल के निरंतर प्रवाह से तय होती है लेकिन मेरे ख्याल से हर व्यक्ति की डीएनए विकेंद्रीकृत मॉडल पर काम करता है।

एक मनुष्य जब जन्म लेता है तो उसके पास कुछ शुरुआती पूंजी होती है। यही पूंजी उसके जीवन की दिशा को तय करती है। ज्योतिष में एक मनुष्य की कुंडली में बारह घर होते हैं। ये बारह घर उसकी आरंभिक पूंजी के विभिन्न आयामों का प्रतीक होते हैं। पहला घर लगन का होता है जो मनुष्य के व्यक्तित्व को बताता है। बारहवां घर उसकी जीवनयात्रा की समाप्ति का होता है। यह अजीब बात है कि भाग्य, कर्म और लाभ नौवें, दसवें और ग्याहरवें घर में वास करते हैं जिसके बाद बाहरवां घर मोक्ष का होता है।

अब यह भी रहस्य है कि भ्रूण में आत्मा के प्रवेश का वक्त, माता-पिता का चयन और स्थान को कौन तय करता है। आश्चर्यजनक यह भी है कि आत्मा नवजात के लिए आरंभिक पूंजी कहां से जुटाती है। फिर यह सवाल है कि आत्मा उस पूंजी के साथ डीएनए को कैसे पैदा करती है जो मनुष्य को विशिष्ट पहचान देता है। ये तमाम परिघटनाएं आधुनिक विज्ञान से इतने आगे की चीज हैं कि इन्हें इलेक्ट्रोमैग्नेटिक प्रणाली से दर्ज करना असंभव है। आज जेनेटिक विज्ञान के जिस मोड़ पर हम खड़े हैं, वहां मानव मस्तिष्क को इतना समझा जा चुका है कि उसके सहारे इनकी कुछ व्याख्या संभव है।

नवजात की आरंभिक पूंजी दरअसल भौतिकी की उस एकल अवधारणा 'केऑस' या कोलाहल से आती है जहां से देश, काल, धरती, ब्रह्माण्ड और मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। यह कोलाहल में तरतीब के सिद्धांत से नियंत्रित होता है। नौवें घर में वास करते वाला भाग्य दसवें घर में रहने वाले कर्म के लिए जातक को मौका देता है, जिससे सफलता या असफलता तय होती है। यहां तक कि नक्षत्र भी कुछ इस तरह संयोजित होते हैं, कि वे पहले जातक से कर्म की मांग करते हैं और फिर

उसे लाभ पहुंचाते हैं, जो 11 वें घर में वास करता है।

गीता के अनुसार लाभ की मात्रा और प्रकृति परमात्मा यानी कोलाहल के निरंतर प्रवाह से तय होती है लेकिन मेरे ख्याल से हर व्यक्ति का डीएनए विकेंद्रीकृत मॉडल पर काम करता है। आजीवन वह दृश्य व अदृश्य प्रभावों से गढ़ा जाता है और नियति को सीमित तौर पर प्रभावित करता है।

हालिया खोजों से पता चलता है कि मानव मस्तिष्क की बनावट और उसका कार्य विशिष्ट है, जहां स्वर्ग और नर्क दोनों का वास सकारात्मक व नकारात्मक परिघटना के रूप में होता है। डाइमिथाइलट्रिप्टामाइन (डीएमटी) की खोज बताती है कि मानव मस्तिष्क ब्रह्माण्ड के चुम्बकीय क्षेत्र से जुड़ा होता है जिससे उसे अतीन्द्रिय बोध होते हैं। इसके चलते मस्तिष्क कथित असंभव कार्य कर पाने में सक्षम होता है। मस्तिष्क की बनावट में 65 फीसदी मात्रा में मौजूद नियोकॉर्टेक्स के भीतर अंतर्निहित क्षमता होती है कि वह व्यक्ति को विकास के उच्चतर स्तर पर ले जा सकती है क्योंकि इसमें विचार, विश्लेषण, करुणा आदि के गुण निवास करते हैं। इसलिए मस्तिष्क, मन और चेतना की बेहतर समझ मनुष्य की नियति को बदल सकती है और उसके जीवनकाल को स्वस्थ व दीर्घ करने में सक्षम है।

इन दार्शनिक तत्त्वों का संधान जारी रहना चाहिए। इसे महानतम वैज्ञानिक आइंस्टीन ने कुछ ऐसे कहा है, 'धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है, विज्ञान के बिना धर्म अंधा, मनुष्य उस बाह्याण्ड का एक अंश है जो देश और काल के प्रवाह में सीमित है।'

इनोवेटिव माइंड से मिलेगी सफलता

जीवन में सफलता के लिए आपके अंदर जुनून होना चाहिए। अगर आप हार मानकर बैठ जाएंगे तो कभी आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

अगर आपके अंदर जीतने की ललक नहीं है तो आप कभी प्रगति नहीं कर सकते। दुनिया में वही व्यक्ति आगे बढ़ता है, जिसमें जीतने की ललक होती है। दुनिया के हर खेल में वही खिलाड़ी टॉप पर होता है, जो हर बार जीतने के बाद अगले मैच में एक बार फिर जीतने की ललक रखता है। जीतने के लिए हर व्यक्ति कड़ी मेहनत करता है, पर आखिर में वही सफल होता है, जिसके अंदर जीत को लेकर जुनून होता है। आपको जिस भी

फिल्ड में सफलता चाहिए, उसके बारे में नॉलेज प्राप्त करें। आज के युग में जानकारी प्राप्त करना कठिन काम नहीं है। आप लोगों से आसानी से संपर्क कर सकते हैं, गूगल की मदद से महत्वपूर्ण जानकारियाँ जुटा सकते हैं। जानकारियाँ प्राप्त करने के बाद आपको रिसर्च करना होगा और पता लगाना होगा कि किस तरह से आप उस जानकारी का सही तरह से उपयोग कर सकते हैं। इसके बाद आपको प्लानिंग करनी होगी।

प्लानिंग से होता है फायदा

कुछ लोगों को लगता है कि बंद कमरे में प्लानिंग करने से कुछ हासिल नहीं होता है। जबकि दुनिया के सबसे सफल लोग कोई भी बड़ा काम करने से पहले उसकी कागज पर पूरी प्लानिंग करते हैं। उन्हें पता होता है कि किसी काम को कैसे बेहतर तरीके से पूरा किया जा सकता है। वह हर काम से जुड़े फायदे और नुकसान के बारे में विस्तार से चिंतन करते हैं। इससे वे भविष्य का सटीक आकलन पर पाते हैं।

नए प्रयोग करने में जुटे रहें

अगर आप जीवन में सफलता प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको अपने सपनों पर यकीन करना होगा और जीत की ललक बनाए रखनी होगी। आपको आगे बढ़ना है तो मन में आशा को बनाए रखना होगा। एडिसन ने बल्ब के आविष्कार के पहले हजार बार निराशा का सामना किया, पर हर बार वे नया प्रयोग करने में जुट जाते। इसी वजह से वे बिजली का बल्ब बना पाए।

कायम है उम्मीद

आपके अंदर सफल होने, जीतने की ललक होनी चाहिए थी। आपको मन में धारण कर लेना चाहिए कि जीवन में कुछ भी असंभव नहीं है। इंसान चाहे जो कर सकता है। इसलिए आपको दुखी होकर घर बैठने के बजाय संघर्षों को सहर्ष स्वीकारना चाहिए। आप कुछ खास करने के लिए इस दुनिया में आए हैं और जब तक आप अपना सपना पूरा नहीं कर लेते हैं, तब तक उम्मीद कायम है।

रॉकेट साइंस नहीं है मुश्किल

एलन मस्क आज मंगल पर इंसानों की बस्ती बसाने की प्लानिंग कर रहे हैं। एक जमाना ऐसा था, जब उन्हें रॉकेट साइंस के बारे में बिल्कुल जानकारी नहीं थी।

उन्होंने इसकी पढ़ाई भी नहीं की थी। उन्होंने जीरो से शुरुआत की। उन्होंने रॉकेट साइंस की पढ़ाई की और आज वे दूसरे ग्रह पर लोगों को भेजने के करीब पहुंच चुके हैं। आप भी हर आशंका और डर को छोड़कर अपने सपनों को पूरा कीजिए।

नींद में भी आप नई चीजें सीख सकते हैं

नए शोध से पता लगा है कि गहरी नींद में आप विदेशी भाषा के शब्दों को सीख सकते हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ बर्न के शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला है। लंबे समय से इस बारे में विचार किया जा रहा था कि क्या नींद जैसे गैरउत्पादक चीज नई चीजों को सीखने में मददगार हो सकती है। नींद के दौरान व्यक्ति पूरे दिनभर सीखी गई बातों को मेमोरी में खास जगह प्रदान करता है। यूनिवर्सिटी ऑफ बर्न के कैटरिना हेन्के, मार्क जुस्ट और सिमोन रुच ने अपने एक खास शोध के माध्यम से स्लीप को डीकोड करने की कोशिश की है। इस शोध के परिणाम 'करंट बायोलॉजी' नामक साइंटिफिक जर्नल में प्रकाशित किए गए हैं।

नींद से जुड़ा प्रयोग

शोध से पता लगा है कि साधारण नींद के दौरान इंसानी मस्तिष्क की कोशिकाएं निष्क्रिय रहती हैं। डीप स्लीप के दौरान लर्निंग की प्रोसेस सबसे तेज नोट की गई। शोधकर्ताओं ने 41 प्रतिभागियों को नींद के इस प्रयोग के लिए चुना। एक नियंत्रित वातावरण में नींद के दौरान उनके दिमाग की गतिविधियों को रिकॉर्ड किया गया। इस दौरान शब्दों के जोड़े प्ले किए गए। इसमें एक जर्मन शब्द था और दूसरा विदेशी भाषा का शब्द। इन शब्दों को चार बार प्ले किया गया। हर बार शब्दों का क्रम बदला गया। प्रतिभागियों के जागने पर इन शब्दों के बारे में पूछा गया तो ज्यादातर प्रतिभागियों ने सही जवाब दिया।

गहरी नींद जरूरी है

उल्लेखनीय है कि कैटरिना हेन्के का रिसर्च ग्रुप इंटरफैसिलिटी रिसर्च कॉर्पोरेशन का हिस्सा है। इन्फॉर्मेटिक्स, साइकोलॉजी मेडिसिन और बायोलॉजी के तेरह ग्रुप्स मिलकर नींद, समझ और चेतना के बारे में रिसर्च कर रहे हैं। नए शोध से यह तय हुआ है कि चेतन व अवचेतन दोनों स्थितियों में मेमोरी तैयार हो सकती है। इसलिए

यदि आप अपने मेमोरी को मजबूत करना चाहते हैं तो आपको गहरी नींद लेने की कोशिश चाहिए। जो लोग पूरी और गहरी नींद नहीं ले पाते हैं, उनका मेमोरी कमजोर होती है। ऐसा नहीं है कि आप रात के समय ही सोएं। अच्छी मेमोरी के लिए आपको वर्कप्लेस पर कुछ समय के लिए झपकी ले सकते हैं। बेफिक्र होकर गहरी झपकी लेने से आप फ्रेश हो जाते हैं और मेमोरी भी बढ़ती है।

सभी जीव शुद्धनय से शुद्धात्मा (परमात्मा)

(सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया/अहमेक्को खलु सुद्धो)

(चाल:-1. कसमे वादे... 2.कौन परदेशी...)

कौन है राजा? कौन है रंक? कौन है दीन दंभी कौन भीक्षुक।

सभी है आत्मा सभी परमात्मा, व्यवहार निश्चय से भेद-अभेद॥ (1)

सभी है जीव द्रव्य सभी है आत्मा, द्रव्य दृष्टि से सभी परमात्मा।

सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया की गाथा, शुद्ध बनकर जीव बने परमात्मा॥ (2)

अनादि से सभी बने हैं अशुद्ध, राग द्वेष मोह से बने आबद्ध।

राग द्वेष मोह क्षय से हैं शुद्ध, सभी जीव हैं अहमेक्को खलु सुद्ध॥ (3)

विश्व है रंगमंच जीव नट नटीं, कर्म निर्देशक से करे नृत्य आदि।

कभी तो राजा रंक कभी तो दीन दंभी, कर्म रहित शुद्ध बुद्ध है सभी॥ (4)

स्वयं को जो माने राजा या रंक, वह है मोहा सक्त न माने स्वरूप।

इससे अहंकारी ममकारी भी बनेगा, जिससे वह राग द्वेषादि करे॥ (5)

इससे ही हिंसादि पाप भी करे, अन्याय अत्याचार दुराचार करे।

शोषण मिलावट बलात्कार करे, जिससे कर्मबान्धकर संसार भ्रमे॥ (6)

स्वयं को आत्मा मानो बनो परमात्मा, रागद्वेषमोह का करके (हत्या) क्षय।

अरिहन्त बनके बनो शुद्धात्मा, सूरी कनक का लक्ष्य शुद्धात्मा॥ (7)

ग.पु.का. 26.06.2019 रात्रि 12.44

संदर्भ-

1.बादर एकेन्द्रिय, 2.सूक्ष्म एकेन्द्रिय, 3.द्वीन्द्रिय, 4.त्रीन्द्रिय, 5. चतुरिन्द्रिय, 6. असंज्ञी पंचेन्द्रिय, 7.संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन 7 के पर्याप्त एवं अपर्याप्त भेद होते हैं। इस कारण $7 \times 2 = 14$ जीवसमास हो जाते हैं।

आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा मन ये षट् पर्याप्ति हैं, इनमें से जो एकेन्द्रिय जीव है उनको तो केवल आहार, शरीर, एक स्पर्श इन्द्रिय तथा श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियाँ होती हैं। संज्ञी पञ्चेन्द्रियों के चार ये पूर्वोक्त और भाषा तथा मन ये छहों पर्याप्तियाँ होती हैं और शेष जीवों के मन रहित पाँच पर्याप्तियाँ होती हैं। पर्याप्त अवस्था में संज्ञी पंचेन्द्रियों के 10 प्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रियों के मन के बिना 9 प्राण, चौइन्द्रियों के मन और कर्ण के बिना 8 प्राण, तेइन्द्रियों के मन, कर्ण और चक्षु के बिना 7 प्राण, दोइन्द्रियों के मन, कर्ण, चक्षु और घ्राण के बिना 6 प्राण और एकेन्द्रियों के मन, कर्ण, चक्षु, घ्राण, रसना तथा वचनबल के बिना 4 प्राण होते हैं। अपर्याप्त अवस्था के धारक जीवों में संज्ञी तथा असंज्ञी इन दोनों पंचेन्द्रियों के श्वासोच्छ्वास वचन बल और मनोबल के बिना 7 प्राण होते हैं और चौइन्द्रिय आदि एकेन्द्रिय पर्यंत शेष जीवों के क्रमानुसार एक एक प्राण घटता हुआ है।

जीव का अशुद्ध एवं शुद्ध स्वरूप

मगगणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।

विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।। (13) द्र.स.

मार्गणागुणस्थानैः चर्तुदशभिः भवन्ति तथा अशुद्धनयात्।

विज्ञेयाः संसारिणः सर्वे शुद्धाः खलु शुद्धनयात्।।

Again, according to impure (Vyavahara) Naya, Samsari Jivas are of fourteen kinds according to margana and Gunasthana. But according to pure Naya, all Jivas should be understood to pure.

संसारी जीव अशुद्ध नय से चौदह मार्गणास्थानों से तथा चौदह गुणस्थानों से चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्धनय से तो सब संसारी जीव शुद्ध ही हैं।

शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय से सिद्ध जीव तो शुद्ध हैं ही परंतु संसारी जीव भी शुद्ध हैं क्योंकि शुद्ध निश्चय द्रव्यार्थिक नय केवल शुद्ध द्रव्य का ही ग्रहण करता है पर मिश्र अवस्थाओं को ग्रहण नहीं करता है क्योंकि इस नय का प्रतिपादन विषय शुद्ध द्रव्य ही होता है। अशुद्ध नय अर्थात् व्यवहार नय से संसारी जीव कर्म से संयुक्त हैं। इस अवस्था में जीव के अनेक भेद प्रभेद हो जाते हैं क्योंकि संसारी जीव अनंतानंत है और कर्म भी असंख्यात लोक प्रमाण हैं। इस अपेक्षा से संसारी जीव के भी

संख्यात, असंख्यात और अनंत भेद हो जाते हैं तथापि समझने के लिए एवं समझाने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली को अपनाकर उसमें समस्त भेद प्रभेदों को गर्भित किया जाता है। इस गाथा में आचार्य श्री ने संसारी जीवों के वर्गीकरण को मुख्य दो भेदों में किया है। (1) मार्गणा स्थान, (2) गुणस्थान। मार्गणा स्थान के पुनः 14 अंतर्भेद हो जाते हैं और उस अंतर्भेदों में भी अनेक प्रभेद होते हैं इसी प्रकार गुणस्थान के 14 भेद होते हैं उन 14 भेद के भी अनेक प्रभेद हो जाते हैं।

1. मार्गणा

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तथा दिट्ठा।

ताओ चोद्दस जाणे सुण्णाणे मग्गण होंति।। (14) गो.सा.

जीव जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में खोजे जाते हैं-अनुमार्गण किये जाते हैं, उन्हें मार्गणा कहते हैं। जीवों का अन्वेषण करने वाली ऐसी मार्गणाएँ श्रुतज्ञान में चौदह कही गयी हैं।

चौदह मार्गणाओं के नाम

गइ इंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे च।

संजमदंसणलेस्सा भवियासम्मत्तसण्णिआहारे।। (142)

1. गति मार्गणा
2. इन्द्रिय मार्गणा
3. काय मार्गणा
4. योग मार्गणा
5. वेद मार्गणा
6. कषाय मार्गणा
7. ज्ञान मार्गणा
8. संयम मार्गणा
9. दर्शन मार्गणा
10. लेश्या मार्गणा
11. भव्य मार्गणा
12. सम्यक्त्व मार्गणा
13. संज्ञी मार्गणा
14. आहार मार्गणा।

1. गति मार्गणा-

गइउदयपज्जाया चउगइगमणस्स हेउ वा हु गइ।

णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइ त्ति य हवे चदुधा।। (146)

गति कर्मोदय जनित पर्याय “गति” है अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। वे गतियाँ चार हैं-1. नरक गति, 2. तिर्यच गति, 3. मनुष्य गति, 4. देव गति।

2. इन्द्रिय मार्गणा-

अहमिंदा जह देव, अविसेसं अहमहं ति मण्णंता।

ईसंति एक्कमेक्कं, इंदा एव इंदिये जाणा।। (164)

जिस प्रकार अहमिन्द्र देव बिना किसी विशेषता के “मैं इन्द्र हूँ, मैं इन्द्र हूँ” इस प्रकार मानते हुए प्रत्येक स्वयं को स्वामी मानता है उसी प्रकार इन्द्रियों को जानना चाहिए।

फासरसगंधरूवे, सददे णाणे च चिण्हयं जेसिं।

इगिबितिचदुपंचिदिय जीवा णियेभेयाभिण्णाओ॥ (166)

एइंदियस्स फुसणं, एक्कं वि य होदि सेसजीवाणं।

होति कमउड्ढियाइं जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं॥ (167)

स्पर्श-रस-गंध-रूप और शब्द का ज्ञान जिनका चिह्न है, ऐसे एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव हैं और वे अपने-अपने भेदों सहित हैं। एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शन-इन्द्रिय ही होती है, शेष जीवों के क्रम से जिह्वा, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र बढ़ते जाते हैं।

3. काय मार्गणा-

जाईअविणाभावी, तसथावरउदयजो हवे काओ।

सो जिणमदमिह भणिओ, पुढवीकायादिछभेयो॥ (181)

जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को जिनमत में काय कहते हैं। इसके छह भेद हैं:-

1. पृथिवी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. वनस्पति, 6. त्रस।

4. योग मार्गणा-

पुगलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स।

जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो॥ (216)

पुद्गल विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन वचन काय से युक्त जीव के जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है, उसको योग कहते हैं।

5. वेद मार्गणा-

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।

णामोदयेण दब्बे, पाएण समा कहिं विसमा॥ (271)

पुरुष स्त्री और नपुंसक वेदकर्म के उदय से भाव पुरुष, भाव स्त्री, भाव नपुंसक

होता और नामकर्म के उदय से द्रव्य पुरुष, द्रव्य स्त्री, द्रव्य नपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है परंतु कहीं-कहीं विषम भी होता है।

6. कषाय मार्गणा-

सुहदुक्खसुबहुसस्सं, कम्मक्खेतं कसेदि जीवस्स।

संसारदूरमेरं, तेण कसाओ त्ति णिं बेत्ति।। (282)

जीव के सुख दुःख आदि रूप अनेक प्रकार के धान्य को उत्पन्न करने वाले तथा जिसकी संसार रूप मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र, खेत का यह कर्षण करता है, इसलिए इसको कषाय कहते हैं।

सम्मत्तदेससयलचरित्त जहक्खादचरणपरिणामे।

घादति वा कसाया, चउसोल असंखलोगमिदा।। (283)

सम्यक्त्व देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यात, चारित्ररूपी परिणामों को जो कषे-घाते, न होने दे उसको कषाय कहते हैं। इसके अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन इस प्रकार चार भेद होते हैं। अनन्तानुबंधी आदि चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह चार-चार भेद होने से कषाय के उत्तर भेद सोलह होते हैं। किंतु कषाय के उदय स्थानों की अपेक्षा से असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं। जो सम्यक्त्व को रोके उसको अनन्तानुबंधी, जो देशचारित्र को रोके उसको अप्रत्याख्यानावरण, जो सकल चारित्र रोके उसको प्रत्याख्यानावरण, जो यथाख्यातचारित्र को रोके उसको संज्वलन कषाय कहते हैं।

7. ज्ञान मार्गणा-

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे।

पचक्खं च परोक्खं, अणेण णाणं ति णं बेत्ति।। (299)

जिसके द्वारा जीव त्रिकालविषयक भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल संबंधी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद है, एक प्रत्यक्ष दूसरा परोक्ष।

8. संयम मार्गणा-

वदसमिदिकसायाणं, दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं।

धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणिओ।। (465)

अहिंसा, अचौर्य, सत्यशील, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालना, क्रोधादि चार प्रकार की कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग तथा पाँच इन्द्रियों का जय, इसको संयम कहते हैं। अतएव संयम के पाँच भेद हैं।

9. दर्शन मार्गणा-

जं सामण्णं गहणं, भावणं णेव कट्टूमायारं।

अविसेसदूण अट्टे, दंसणमिदि भण्णदे समये।। (482)

सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके केवल सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है, उसको परमागम में दर्शन कहते हैं।

भावाणं सामण्ण-विसेसयाणं सरूवमेत्तं जं।

वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि।। (483)

सामान्य-विशेषात्मक पदार्थों की स्वरूपमात्र स्व-परसत्ता का निर्विकल्प रूप से जीव के द्वारा जो अवभासन होता है उसको दर्शन कहते हैं।

पदार्थों में सामान्य विशेष दोनों ही धर्म रहते हैं, किंतु इनके केवल स्वरूप मात्र की अपेक्षा से जो स्व-परसत्ता का अभेदरूप निर्विकल्प अवभासन होता है, उसको दर्शन कहते हैं अतएव वह निराकार है और इसलिए इसका शब्दों के द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। इसके चार भेद हैं-चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन।

10. लेश्या मार्गणा-

लिंपई अप्पीकीरइ, एदीए णिअपुण्णपुण्णं च।

जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा।। (489)

लेश्या के गुण को-स्वरूप को जानने वाले गणधरादि देवों ने लेश्या का स्वरूप ऐसा कहा है कि जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे, पुण्य और पाप के अधीन करे उसको लेश्या कहते हैं।

किण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य।

लेस्साणं णिदूदेसा, छच्चेव हवंति णियमेण।। (493)

लेश्याओं के नियम से यह छह ही निर्देश-संज्ञाएँ हैं कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, (पीतलेश्या) पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या।

11. भव्य मार्गणा-

भविया सिद्धी जेसिं, जीवाणं ते हवन्ति भवसिद्धा।

तत्त्वरीयाऽभवा, संसारादो ण सिज्झन्ति॥ (557)

जिन जीवों की अनंत चतुष्टयरूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों उनको भवसिद्ध कहते हैं। जिनमें दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो उन जीवों को अभव्य सिद्ध कहते हैं।

12. सम्यक्त्व मार्गणा-

छप्पंचणवविहाणं, अत्थाणं जिणवरोवड्डुणां।

आणाए अहिगमेण य, सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥ (561)

छह द्रव्य पाँच अस्तिकाय नव पदार्थ इनका जिनेन्द्र देव ने जिस प्रकार से वर्णन किया है उस ही प्रकार से इनका जो श्रद्धान करना उसको सम्यक्त्व कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है-एक तो केवल आज्ञा से दूसरा अधिगम से।

13. संज्ञी मार्गणा-

णोइंदियआवरणखोवसमं तज्जबोहणं सण्णा।

सा जस्स सो दु सण्णी, इदरो सेसिंदिअवबोहो॥ (660)

नो इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा जिसके हो उसको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह संज्ञा न हो, किंतु यथासंभव इन्द्रियजन्य ज्ञान हो उसको असंज्ञी कहते हैं।

14. आहार मार्गणा-

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं।

णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं णाम॥ (664)

शरीरनामक नामकर्म के उदय से देह-औदारिक, वैक्रियक आहारक इनमें से यथा संभव किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्य मनरूप बनने के योग्य नोकर्मवर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं।

2. गुणस्थान का सामान्य लक्षण

जेहिं दु लक्खिज्जन्ते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।

जीवा ते गुणसण्णा णिदुदट्ठा सव्वदरसीहिं।। (8)

दर्शनमोहनीय आदि कर्मों का उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्था के होने वाले जिन परिणामों से युक्त जो जीव देखे जाते हैं उन जीवों को सर्वज्ञ देव ने उसी गुणस्थानवाला और उन परिणामों को गुणस्थान कहा है।

गुणस्थानों के 14 चौदह भेद

मिच्छो सासण मिस्सो, अवरिदसम्मो य देसविरदो य।

विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्ठि सुहमो य।। (9)

उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगि य।

चउदसस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा।। (10)

1. मिथ्यात्व, 2. सासादन, 3. मिश्र, 4. अविरतसम्यग्दृष्टि, 5. देशविरत, 6. प्रमत्तविरत, 7. अप्रमत्तविरत, 8. अपूर्वकरण, 9. अनिवृत्तिकारण, 10. सूक्ष्मसाम्पराय, 11. उपशान्त मोह, 12. क्षीण मोह, 13. सयोगकेवलिजिन और 14. अयोगकेवलिजिन ये चौदह जीव समास, गुणस्थान हैं और सिद्ध इन जीव समासों-गुणस्थानों से रहित हैं।

1. मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च-अत्थाणं।

एयंतं विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं।। (15)

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं-एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञान।

2. दूसरे सासादन गुणस्थान का स्वरूप

आदिमसम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे।

अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मो त्ति सासणक्खो सो।। (19)

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अथवा यहाँ पर 'वा' शब्द ग्रहण किया है, इसलिए द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्तमात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा

उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे उतने काल में अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको सासन या सासादन गुणस्थान कहते हैं।

3. तृतीय गुणस्थान का लक्षण

सम्मामिच्छुदयेण य, जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण।

ण य सम्मं मिच्छं पि य, सम्मिस्सो होदि परिणामो॥ (21)

जिसका प्रतिपक्षी आत्मा के गुण को सर्वथा घातने का कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियों से विलक्षण जाति का है उस जात्यन्तर सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्व रूप या मिथ्यात्वरूप परिणाम न होकर जो मिश्ररूप परिणाम होता है, उसको तीसरा मिश्रगुणस्थान कहते हैं।

4. अविरत सम्यग्दृष्टि

णो इंदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि।

जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो॥ (29)

जो इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं है, किंतु जिनेन्द्र देव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

5. देशविरत

जो तसवहाउ विरदो, अविरदओ तह य थावरवहाओ।

एक्कसमयमिह् जीवो, विरदाविरदो जिणोक्कमई॥ (31)

जो जीव जिनेन्द्र देव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ त्रस की हिंसा से विरत और उस ही समय में स्थावर की हिंसा से अविरत होता है, उस जीव को विरताविरत कहते हैं।

6. प्रमत्त गुणस्थान

वत्तावत्तपमादे, जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।

सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो॥ (33)

जो महाव्रती सम्पूर्ण 28 मूलगुण और शील भेदों से युक्त होता हुआ भी

व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के प्रमादों को करता है, वह प्रमत्तसंयत गुणस्थान वाला है। अतएव वह चित्रल आचरणवाला माना गया है।

7. सप्तम गुणस्थान का स्वरूप

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तहा होदि।

अपमत्तगुणो तेण य, अपमत्तो संजदो होदि।। (45)

जब संज्वलन और नोकषाय का मंद उदय होता है तब सकल संयम से युक्त मुनि के प्रमाद का अभाव हो जाता है इसलिए इस गुणस्थान को अप्रमत्त संयत कहते हैं। इसके दो भेद हैं—एक स्वस्थानाप्रमत्त दूसरा सातिशयाप्रमत्त।

8. अपूर्वकरण गुणस्थान

अंतोमुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं तं।

पडिसमयं सुज्झंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ।। (50)

जिसका अन्तर्मुहूर्तमात्र काल है, ऐसे अधः प्रवृत्त करण को बिताकर वह सातिशय अप्रमत्त जब प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि को लिए हुए अपूर्वकरण जाति के परिणामों को करता है, तब उसको अपूर्वकरण नामक अष्टमगुणस्थानवर्ती कहते हैं।

9. नवमें गुणस्थान का स्वरूप

एक्कमिह कालसमये, संठाणादीहि जह णिवट्टंति।

ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं।। (56)

होति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्क परिणामा।

विमलयर झाणहुयवहिसहाहिं णिदुदड्ढ कम्मवणा।। (57)

अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरण के काल में से आदि या मध्य अन्त के एक समवर्ती अनेक जीवों में जिस प्रकार शरीर की अवगाहना आदि ब्राह्म कारणों से तथा ज्ञानावरणादि कर्म के क्षयोपशमादि अन्तरंग कारणों से परस्पर में भेद पाया जाता है, उसी प्रकार जिन परिणामों के निमित्त से परस्पर में भेद नहीं पाया जाता, उनको अनिवृत्तिकरण कहते हैं अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का जितना काल है, उतने ही उसके परिणाम हैं। इसलिए उसके काल के प्रत्येक समय में अनिवृत्तिकरण का एक-एक परिणाम होता है तथा ये परिणाम अत्यंत निर्मल ध्यानरूप अग्नि की शिखाओं की सहायता से कर्मवन को भस्म कर देता है।

10. दशवे गुणस्थान का स्वरूप

धुदकोसुंभयवत्थं, होहि जहा सुहमरायसंजुत्तं

एवं सुहमकसाओ, सुहमसरागोत्ति णादव्वो।। (59)

जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्र में लालिमा-सुखी-सूक्ष्म रह जाती है, उसी प्रकार जो जीव अत्यंत सूक्ष्म राग-लोभ कषाय से युक्त है उसको सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

11. उपशांत कषाय

कदक फलजुदजलं वा, सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।

सयलोवसंतमोहो उपसंतकसायओ होदि।। (61)

निर्मली फल से युक्त जल की तरह अथवा शरद ऋतु में ऊपर से स्वच्छ हो जाने वाले सरोवर के जल की तरह संपूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणामों को उपशांत कषाय नाम का ग्यारहवाँ गुणस्थान कहते हैं।

12. बारहवें गुणस्थान का स्वरूप

णिस्सेसखीण मोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो।

खीण कषाओ भण्णदि णिग्गथो वीयरयेहिं।। (62)

जिस निर्ग्रन्थ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीण कषाय नाम का बारहवाँ गुणस्थानवर्ती कहा है।

13. तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप

केवलणाण दिवायर किरण कलावप्पणासिअण्णाणो।

णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्प ववएसो।। (63)

असहायणाण दंसणसहियो इदि केवली हु जोगेण।

जूत्तो त्ति सजोगि जिणो, अणाइणिहणारिसे उत्तो।। (64)

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह से (उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवललब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग,

उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रियाँ, आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा है।

14. चौदहवें गुणस्थान का स्वरूप

सीलेसिं संपत्तोणिरुद्धणिस्सेस आसओ जीवो।

कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि।। (65)

जो अठारह हजार शील के भेदों के स्वामी हो चुके हैं और जिसके कर्मों के आने का द्वाररूप आस्रव सर्वथा बंद हो गया है तथा सत्त्व और उदयरूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सन्मुख है, उस योग रहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं।

उपर्युक्त जो मार्गणा एवं गुणस्थान का वर्णन किया गया है, इसमें संपूर्ण संसारी जीवों का कथन है तथापि दोनों में कुछ सूक्ष्म भेद है। वह भेद यह है कि मार्गणा स्थान में तो विशेषतः बाह्य गति, शरीर, इन्द्रिय आदि को माध्यम करके प्ररूपणा की गयी है तो गुणस्थान में अंतरंग भावों को प्रधानता दी गयी है।

“सव्वे सुद्धाहू सुद्धणया” यह सिद्धांत बहुत ही व्यापक एवं रहस्यपूर्ण है। इस सिद्धांत से सिद्ध होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से कोई भी जीव न छोटा है और न बड़ा है। भले ही बाह्य शरीर, गति इन्द्रिय आदि से या गुणस्थान की अपेक्षा छोटे-बड़े हो सकते हैं। विशेष जिज्ञासु को प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, समयसार आदि का अवलोकन करना चाहिए। यह जैन धर्म का सार्वभौम/साम्यभाव/समताभाव/समानाधिकार सिद्धांत है। इस सिद्धांत से ही राजनीति में समाजवाद, लोकतंत्र, साम्यवाद की सही स्थापना हो सकती है। इसी से ही विश्व मैत्री, विश्वप्रेम, विश्वसमाज, विश्वबधुत्व निरस्त्रीकरण (अस्त्ररहित राष्ट्र निर्माण) विश्वशांति आदि महान् उदात्त भावना की संपूर्ति हो सकती है। सिद्धांततः शुद्ध निश्चय नय से संसारी जीव भी अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख संपन्न सिद्ध भगवान् के समान होते हुए भी व्यवहारतः अशुद्धनय से संसारी जीव सिद्ध स्वरूप नहीं है। क्योंकि संसारी जीव कर्म परतंत्रता के कारण संसार अवस्था में अनंत शारीरिक, मानसिक दुःखों को भोगता रहता है। यदि

व्यवहार नय से भी शुद्ध मानेंगे तो अनुभव रूप में उपलब्ध रूप जो दुःख है कर्म परतंत्रता है उसका अभाव होने का प्रसंग आया परंतु वस्तुतः ऐसा नहीं है और एक अनर्थ यह हो जाएगा कि संसारी जीव मुक्त जीव की तरह अनंत सुखी होगा तो मोक्ष के लिए जो भगवान् का उपदेश एवं सिद्धि की साधना की जाती है वह भी निष्फल हो जाएगी। यदि शुद्ध निश्चयनय को मानते हुए व्यवहार नय को नहीं मानेंगे तो सिद्ध भगवान् तथा संसार में स्थित अभव्य मिथ्यादृष्टि कीड़े-मकोड़े, कुत्ता, सियार, सुअर, नारकी, पापी, कामी आदि जीवों में किसी भी प्रकार अंतर नहीं रहेगा। अभव्य तो सम्यग्दृष्टि तक कभी भी नहीं हो सकता तो वह सिद्ध कैसे हो सकता है? इतना ही नहीं, संसार मोक्ष, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मुनि व्रत, श्रावक व्रत, धर्म ध्यान, शुक्लध्यान आदि का भी लोप हो जाएगा। द्रव्य संग्रह एक संक्षिप्त सूत्रबद्ध आध्यात्मिक ग्रंथ होने के कारण इसमें संक्षिप्त रूप से संसारी जीवों का वर्णन किया गया है। ऐसे तो जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत, अनादि, अनिधन, अनेकांतात्मक वस्तु स्वरूप एवं अहिंसा प्रधान होने के कारण इस धर्म में जीवों का जितना सांगोपांग, व्यापक-सूक्ष्म वर्णन पाया जाता है ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता है। विशेषु जिज्ञासु विस्तृत अध्ययन के लिए गोम्मटसार जीवकांड, स्वतंत्रता के सूत्र (तत्त्वार्थ सूत्र) धवला आदि का आलंबन लें। यहां पर जिन-जिन मुख्य प्रणालियों के माध्यम से जीवों का अन्वेषण शोध-बोध किया गया है। उसका कुछ दिग्दर्शन मैं यहां कर रहा हूं। यथा-

गुण जीवा पञ्जती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।

उवओगो विय कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा।। (2) गो.जी.

यहाँ चौदह गुणस्थान, अठानवें जीवसमास, छह पर्याप्ति, दस प्राण, चार संज्ञा, चार गति मार्गणा, पाँच इन्द्रिय-मार्गणा, छह काय-मार्गणा पन्द्रह योग-मार्गणा, तीन वेद-मार्गणा, चार दर्शन-मार्गणा, आठ ज्ञान-मार्गणा, सात संयम-मार्गणा, दो संज्ञी-मार्गणा, दो उपयोग इस प्रकार ये जीव प्ररूपणा बीस कही है। प्रत्येक प्ररूपणा की निरुक्ति कहते हैं- “गुण्यते अर्थात् जिसके द्वारा द्रव्य से द्रव्यांतर को जाना जाता है वह गुण है। कर्म की उपाधि की अपेक्षा सहित ज्ञान, दर्शन, उपयोगरूप चैतन्य प्राणों से जो जीता है वह जीव है। वे जीव जिनमें सम्यक् रूप से “आसते” रहते हैं वे जीवसमास हैं। “परि” अर्थात् समंतरूप से आप्ति अर्थात् प्राप्ति पर्याप्ति है, जिसका अर्थ है शक्ति की निष्पत्ति।

जिनसे जीव “प्राणन्ति जीते हैं अर्थात् जीवित व्यवहार के योग्य होते हैं वे प्राण हैं। आगम प्रसिद्ध वांछा या अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं। जिनके द्वारा या जिनमें जीव “मृग्यन्ते” खोजे जाते हैं वे मार्गणा हैं। मार्गयिता-खोजने वाला तत्त्वार्थ का श्रद्दालु भव्यजीव हैं। “मृग्य” अर्थात् खोजने योग्य चौदह मार्गणा वाले जीव हैं मृग्यपने के कारणपने या अधिकरणपने को प्राप्त गति आदि मार्गणाओं में उन-उन मार्गणावाले जीवों को खोजा जाता है। ज्ञान सामान्य और दर्शन सामान्य रूप उपयोग मार्गणा का उपाय है। इस प्रकार इन प्ररूपणाओं के सामान्य अर्थ का कथन किया।

जीव के सिद्ध स्वरूप एवं उर्ध्वगमन स्वभाव

णिक्कम्मा अट्टगुणा किंचूण चरमदेहदो सिद्धा।

लोग्यगठिदा णिच्च उप्पादवएहि संजुत्ता।। (14)

निष्कर्माणः अष्टगुणा किञ्चिदूनाः चरमदेहतः सिद्धाः।

लोकाग्रस्थिताः नित्याः उत्पादव्यायाभ्यां संयुक्ताः।।

The Siddhas (or liberated Jivas) are void of Karmas, Possessed of eight qualities, slightly less than then the final body, eternal, possessed of Utpada (rise) adn Vyava (fall) and existent at the summit of Loka.

जो जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं, सम्यक्त्व आदि आठगुणों के धारक हैं तथा अंतिम शरीर से कुछ कम हैं वे सिद्ध हैं और ऊर्ध्वगमन स्वभाव से लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, नित्य हैं तथा उत्पाद और व्यय इन दोनों से युक्त हैं।

इस गाथा में आचार्य श्री ने जीव के सिद्धत्व एवं ऊर्ध्वगमन का वर्णन किया है। तेरहवीं गाथा के पूर्वार्ध में चौदहवें गुणस्थान तक का वर्णन किया गया है। सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि से 14वें गुणस्थान तक संसार अवस्था है क्योंकि इस गुणस्थान में भी चार अघाति कर्म की सत्ता है। भले ही इस गुणस्थान में चार घाति कर्म न होने के कारण अनंत चतुष्टय प्रगट हो गया है एवं भाव मोक्ष भी हो गया है तथापि द्रव्य-मोक्ष एवं संपूर्ण मोक्ष नहीं हुआ है। 14वें गुणस्थान के अंतिम समय में संपूर्ण कर्मों के क्षय से जीव पूर्ण मुक्त हो जाता है। समस्त विरोधात्मक कर्म के अभाव से जीव के अनंत

गुण प्रगट हो जाते हैं तथापि सिद्ध के आठ कर्म के अभाव से आठ विशेष गुण प्रगट होते हैं। यथा-

सम्मत्तणाणदंसणवीरियसुहुमं तहेव अवगहणं।

अगुरुलहुमव्वावाहं अट्टगुणा होंति सिद्धाणं।।

- 1.सम्यक्त्व 2.अनंत ज्ञान 3.अनंत दर्शन 4.अनंत वीर्य 5.सूक्ष्मत्व
6.अवगाहनत्व 7.अगुरुलघुत्व 8.अव्याबाधत्व।

सिद्ध भगवान् में जो आठ गुण प्रगट होते हैं वे आठ कर्मों के संपूर्ण क्षय से प्रगट होते हैं। यथा-

कर्म का अभाव	गुण प्रगट
1. ज्ञानावरणीय कर्म	अनंत ज्ञान गुण
2.दर्शनावरणीय कर्म	अनंत दर्श गुण
3.मोहनीय कर्म	सम्यक्त्व गुण
4.अंतराय कर्म	अनंत वीर्य गुण
5.वेदनीय कर्म	अव्याबाध गुण
6.आयु कर्म	अवगाहनत्व गुण
7.नाम कर्म	सूक्ष्मत्व गुण
8.गोत्र कर्म	अगुरुलघुत्व गुण

सिद्ध भगवान् संपूर्ण कर्म से रहित होने के कारण अमूर्तिक हैं, इसलिए उनका मूर्तिक आकार नहीं है तथापि अनंत गुणों का अखंड पिण्ड होने के कारण एवं प्रदेशत्व गुण होने के कारण उनका बहुत ही सुंदर आकार होता है। वह आकार अंतिम शरीर के किंचित् न्यून (कुछ छोटा) है।

कम प्रयास से अधिक सफलता पाऊँ

(समता सहित-आत्मविशुद्धि निस्पृहता एकान्त मौन से बाह्य कम प्रयास से अधिक से अधिक आत्मविकास करूँ)

जिस कर्म को अज्ञानी 100000,0000000 (एक लाख करोड़) भवों में क्षय करता है- उस कर्म को ज्ञानी तीन गुप्ति से 1 उश्वास मात्र में क्षय करता है।

(ऐसा ही मैं करूँ)

(चाल:-आत्मशक्ति...क्या मिलिए...)

-आचार्य कनकनन्दी

जं अण्णाणी कम्मं खवेदी भवसय सहस्सकोडीहिं।

तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदी उस्सासमेत्तेण।। प्र.सा (238) प्र.सा.

जो अज्ञानी करता कर्मक्षय लाखों करोड़ों भवों में।

उस कर्म को ज्ञानी मुनि क्षय करते हैं, केवल एक उश्वास में॥ (1)

ऐसा वर्णन सर्वज्ञ देव ने स्वदिव्य ध्वनि में कहा है।

गणधर से ले परम्परा आचार्य से कुन्दकुन्द सूरी ने कहा है॥ (2)

इससे मुझे शिक्षा मिलती है, मुझे करना है गुप्ति की साधना

अभेद रत्नत्रयमयज्ञानी बनना आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र की आराधना॥ (3)

भले इस काल में ये संभव नहीं, उत्तमसंहनन के अभाव से।

तथाहि उत्तमकाल वातावरण तीर्थकरादि के अभाव से॥ (4)

तथापि मेरा लक्ष्य तो उश्वास मात्र से उक्त कर्म क्षय करना है।

अतएव बाह्य आङ्म्बर त्यागकर शक्तितः त्याग तपस्या करना है॥ (5)

अवसर्पिणी वर्तमान में भरत क्षेत्र में प्रचुर है आर्त रौद्रध्यानी।

नष्ट दुष्ट कष्टी पापीष्ट कृष्णनील लेश्या वाले॥ (6) रयण.

अभी अवसर्पिणी में भरतक्षेत्र में मिथ्यादृष्टि जीव सुलभ।

सम्यक्त्वपूर्वक श्रावक व श्रमण होते हैं दुर्लभ॥ (7) रयण.

यथा कुष्ठरोगी करता है नाश स्वकुल को तथाहि मिथ्यात्वी।

दानादि सुगुणों को नाश करता सुगति को तथा नाशे ये कुदृष्टि॥ (8)

देव गुरू धर्म व गुण चारित्र तपाचार व मोक्षमार्ग के भेद।

जिन वचन को सुदृष्टि बिन कैसे जान पायेगा सम्यक्त्व॥ (9) रयण.

भय दाक्षिण्य कीर्ति च लज्जा आशा तथैव च।

पंचभिः पंचमकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते॥

पंचमकाल में सम्यक्त्व रहित धर्म करते (हैं) पांचो कारणों से।

लोक भय, प्रदर्शन, कीर्ति, लज्जा व लौकिक आशा से॥ (10)

ऐसे जन संपर्क से होती मति चंचल कुटिल दुर्भाव।

इसलिए लौकिक जन सम्पर्क मन वचनकाय से त्यज॥ (11).रयण

अतएव मैं एकान्त मौन व समता शान्ति निस्पृहता से।

बाह्य प्रपंचमय प्रभावना परे लीन हो रहा हूँ साधना में॥ (12)

इससे होती अधिक आत्मविशुद्धि व एकाग्रता से कर्म निर्जरा।

बाह्य शरीर दण्डमय साधना के बिना अधिक मिले सुफलता॥ (13)

कम प्रयास से अधिक फल, अभी विज्ञान कर रहा है शोध।

सर्वज्ञों ने पहले ही यह सिद्धान्त दिया “कनक” हेतु मान्य॥ (14)

ग.पु. का 26.06.2019 रात्रि 9.54

संदर्भ-

त्रिगुप्ति धारी ज्ञानी मुनि प्रचुर कर्मक्षय करता है-

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसय सहस्सकोडीहिं।

तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण॥ (238) प्र.सार

The man of knowledge, who is controlled in three ways, destroys within a breath the Karma which a man devoid of knowledge could destroy in hundred thousand crores of lives.

आगे कहते हैं कि परमागम ज्ञान, तत्त्वार्थ श्रद्धान तथा संयमीपना इन भेदरूप रत्नत्रयों के मिलाप होने पर भी जो अभेदरत्नत्रय स्वरूप निर्विकल्प समाधिमय आत्मज्ञान है वही निश्चय से मोक्ष का कारण है-(अण्णाणी) अज्ञानी (जं कम्मं) जिस कर्म को (भवसयसहस्स कोडीहिं) एक लाख करोड़ों भवों में (खवेइ) नाश करता है। (तं) उस कर्म को (णाणी) आत्मज्ञानी (तिहिंगुत्तो) मन वचन काय तीनों की गुप्ति सहित होकर (उस्सास मेत्तेण) एक उच्छ्वास मात्र में (खवेइ) क्षय कर देता है। निर्विकल्प समाधि रूप निश्चय रत्नत्रयमय विशेष भेदज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में जिस कर्मबंध को क्षय करता है, उस कर्म को ज्ञानी जीव तीन गुप्ति में गुप्ति होकर एक उच्छ्वास में नाश कर डालता है। इस का भाव यह है कि बाहरी पदार्थों के सम्बन्ध में जो सम्यग्ज्ञान परमागम के अभ्यास बल से होता है तथा जो उनका श्रद्धान होता है और श्रद्धान ज्ञानपूर्वक व्रत आदि का चारित्र

पाला जाता है, इन तीन रूप रत्नत्रय के आधार से सिद्धपरमात्मा के स्वरूप में सम्यक् श्रद्धान तथा सम्यक्ज्ञान होकर उनके, गुणों का स्मरण करना इसी के अनुकूल जो चारित्र होता है। फिर भी इसी प्रकार इन तीन के आधार से जो उत्पन्न होता है। निर्मल अखंड एक ज्ञानाकार रूप अपने ही शुद्धात्मा में जानने रूप सविकल्पज्ञान तथा शुद्धात्मा ही ग्रहण करने योग्य है ऐसी रूचि जो विकल्परूप सम्यग्दर्शन और इसी ही आत्मा के स्वरूप में रागादि विकल्पों से रहित सो सविकल्प चारित्र उत्पन्न होता है फिर भी इन तीनों के प्रसाद से विकल्प-रहित समाधि रूप निश्चय रत्नत्रयमय विशेष स्वसंवेदन ज्ञान उत्पन्न होता है। उस ज्ञान को न पाकर अज्ञानी जीव करोड़ों जन्मों में जिस कर्म का क्षय करता है उस कर्म को ज्ञानी जीव पूर्वोक्त ज्ञान गुण के सद्भाव में मन वचन काय की गुप्ति में लवलीन होकर एक श्वास मात्र में लीला मात्र से ही नाश कर डालता है। इससे यह बात जानी जाती है कि परमागमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान तथा संयमीपना इस भेद रत्नत्रय के होने पर भी अभेद या निश्चयरत्नत्रय स्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता है।

समीक्षा—जिस प्रकार लेन्स को चिरकाल तक सूर्य किरण में रखने पर भी जब तक सूर्य किरण बिखर कर रहती हैं परन्तु तब तक अग्नि उत्पन्न नहीं होती है सूर्य किरण एक कागज के केन्द्र में केन्द्रित होते ही अग्नि उत्पन्न हो जाती है उसी प्रकार अज्ञानी जिस कर्म को शत सहस्र कोटि भव (100,000,0000000) में क्षय करता है, नष्ट करता है, निर्जरण करता है, उसी कर्म को रत्नत्रय से युक्त मुनि उच्छ्वास मात्र में ही नष्ट कर देता है। यहाँ पर ज्ञानी उसे स्वीकार किया गया है जो विशिष्ट भेदविज्ञान से युक्त, निश्चयरत्नत्रय से संयुक्त निर्विकल्पसमाधि में स्थित मुनि है। इससे विपरीत अज्ञानी हैं। इससे सिद्ध होता है कि आगम की अपेक्षा मिथ्या दृष्टि अज्ञानी होते हुए भी आध्यात्मिक दृष्टि से निर्विकल्प समाधि से च्युत मुनि भी अज्ञानी है। यदि मुनि भी अज्ञानी है तो पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक, चतुर्थगुणस्थानवर्ती अविरतसम्यग्दृष्टि जीव तो अज्ञानी है ही, क्योंकि पंचमगुणस्थान में तो पूर्ण व्यवहार चारित्र नहीं है और चतुर्थ गुणस्थान में आंशिक भी चारित्र नहीं है जब व्यवहार रत्नत्रय ही नहीं है तब निश्चय रत्नत्रय की सम्भावना ही नहीं है और निश्चय रत्नत्रय के बिना जीव आध्यात्मिक दृष्टि से अज्ञानी है ही। मिथ्यादृष्टि तो आध्यात्म की बात तो दूर

रहे आगम की दृष्टि से भी अज्ञानी है ही, इसलिये अज्ञानी की परिभाषा जयसेनाचार्य ने समयसार एवं प्रवचनसार में उपरोक्त प्रकार से ही दी है। यथा-“जं अण्णाणी कम्मं खवेइ”-“निर्विकल्प समाधिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मक विशिष्टभेदज्ञानाभावाज्ञानीजीवो यत्कर्म क्षपयति” अर्थात् निर्विकल्प समाधिरूप निश्चय रत्नत्रयात्मक विशिष्ट भेद विज्ञान के अभाव वाला अज्ञानी जीव विशेष क्षपणा करता है। पुनः आचार्य श्री ने “ततो ण्णाणी तिहिं गुतो खवेइ उस्सासमेत्तेण” की समीक्षा करते हुए लिखा है कि “ततो ज्ञायते परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां सदभावेऽप्यभेदरत्नत्रयरूपस्य स्वसंवेदेनज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति” इससे यह सिद्धांत प्रतिफलित होता है कि परमागमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयमीपना इस भेद रत्नत्रय के होने पर भी अभेद रत्नत्रयस्वरूपस्वसंवेदन ज्ञान की मुख्यता है अर्थात् अभेद रत्नत्रयधारी तीन गुप्ति से गुप्त मुनि ही उच्छ्वास मात्र में उन कर्मों को नष्ट कर देता है, क्योंकि जब तक अभेद रत्नत्रय प्रगट नहीं होता है, तीनों गुप्तियाँ गुप्त नहीं होती है और जब तक शुक्लध्यान नहीं होता है तब तक मोक्ष प्राप्त योग्य कर्मों का विध्वंस नहीं होता। इस अवस्था से निचली निचली अवस्था में मनवचन काय में परिस्पन्द होने के कारण आत्मा में पूर्ण स्थिरता एवं लीनता नहीं आती है जिसके कारण कुछ कर्म की तो निर्जरा होती है पर कुछ नवीन कर्मों का बंध भी हो जाता है। इसलिये निचली भूमिका के जीव उतना कर्म नष्ट नहीं कर पाते जितना त्रिगुप्ति धारी मुनि करते हैं।

हेदु चदुवियप्पो अट्टवियप्पस्स कारणं होदि।

तेसिं पिय रागादी तेसिमभावे ण बज्झंति।। (185) समयसार

(हेदु चदुवियप्पो अट्टवियप्पस्स कारणं होदि) क्योंकि मिथ्यात्व, अविरति कषाय और योग ये चार कारण ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के नवीन कर्मबन्ध के कारण हैं। (तेसिं पि य रागादी) उन उदय में आए हुए मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्ययों के भी कारण जीवगत रागादिभावरूप प्रत्यय होते हैं (तेसिमभावेण बज्झंति) उन जीवगत रागादि भावप्रत्ययों के न होने पर पूर्वोक्त द्रव्य प्रत्यय भले ही उदय में आए हुए क्यों न हो तो भी वीतरागरूप परमसामायिक भावना में परिणत रहने वाले अभेदरत्नत्रय है लक्षण जिसका ऐसे भेदज्ञान के होने पर यह जीव नवीन कर्मों से नहीं बँधता है इसलिए यह बात माननी पड़ती है कि यद्यपि उदय में आए हुए मिथ्यात्वादि द्रव्यप्रत्यय

नवीन कर्मों के आस्रव के कारण होते हैं किन्तु उनके भी कारण जीवगत रागादिभावप्रत्यय होते हैं। इस प्रकार कारण से कारण का व्याख्यान जानना योग्य है।

णाणगुणेहिं विहाणा एदं तु पदं बहुवि ण लहंति।

गिण्हं सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं।। (221)

(णाण गुणेहिं विहाणा एदं तु पदं बहुवि ण लहंति) सभी प्रकार के विकार से वर्जित जो परमात्म तत्त्व उसकी उपलब्धि होना ही है लक्षण जिसका ऐसे ज्ञान गुण से रहित बहुत से पुरुष, शुद्धात्मा ही उपादेय है इस स्व संवेदन ज्ञान से रहित ऐसे घोर-काय क्लेश आदि तपश्चरण को करते हुए भी मत्यादि पांच प्रकार के ज्ञान से भी जिसमें भेद नहीं हो सके ऐसे साक्षात् मोक्ष के कारणभूत तथा शुद्धात्मा की संवित्ति है लक्षण जिसका ऐसे अपने आपके द्वारा ही अनुभव करने योग्यपद को नहीं पा सकते हैं (तं गिण्हं सुपदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं) इसलिए हे भव्य। यदि तू, कर्मों से मुक्त होना चाहता है तो उस उत्तम पद को स्वीकार कर।

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं।

अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।। (222)

(अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्म) जो इच्छा रहित होता है वह अपरिग्रही होता है जिसके बाह्य द्रव्यों की इच्छा नहीं होती अर्थात् बाह्य पदार्थों से उसका कोई लगाव नहीं होता। इससे स्वसंवेदन ज्ञानी जीव शुद्धोपयोग रूप निश्चय धर्म को छोड़कर शुभोपयोग रूप धर्म अर्थात् पुण्य को नहीं चाहता है (अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि) इसलिए पुण्य रूप धर्म का परिग्रहवान् न होकर किन्तु पुण्य मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा जानकर उस पुण्य रूप से परिणमन नहीं करता हुआ तन्मय नहीं होता हुआ दर्पण में आये हुए प्रतिबिम्ब के समान उसका जानने वाला ही होता है। भगवती आराधना में भी उपर्युक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया गया है।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।

तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि अंतोमुहूत्तेण।।

सम्यग्ज्ञान से रहित अज्ञानी जिस कर्म को लाख करोड़ भवों में नष्ट करता है, इस कर्म को सम्यग्ज्ञानी तीन गुप्तियों से युक्त हुआ अन्तर्मुहूर्तमात्र में क्षय करता है।

छट्टुमद समदुबालसेहिं अण्णाणियस्स जो सोही।

तत्तो बहुगुणदरिया होज्ज हु जिमिदस्स णाणिस्स।। (108)

अज्ञानी जीव के दो, तीन, चार, पाँच आदि उपवास करने से जितनी विशुद्धि होती है उससे बहुत गुणी शुद्धि जीमते हुए ज्ञानी के होती है। इतनी शीघ्रता से कर्मों को काटने की शक्ति अन्य तप में नहीं है यह स्वाध्याय का अतिशय है।

सज्झायभावणाए य भाविदा होंति सब्ब गुत्तीओ।

गुत्तीहिं भावदाहिं य मरणे आराधाअे होदि।। (109)

स्वाध्याय भावना से सब गुप्तियाँ भावित होती हैं, और गुप्तिओं की भावना से मरते समय रत्नत्रय रूप परिणामों की आराधना में तत्पर होता है।

स्वाध्याय करने पर मन वचन काय के सब ही व्यापार, जो कर्मों के लाने में कारण हैं चले जाते हैं। ऐसा होने से गुप्तियाँ भावित होती हैं और तीनों योगों का निरोध करने वाला मुनि रत्नत्रय में ही लगता है। अतः रत्नत्रय सुख पूर्वक साध्य होता है, इसका भाव यह है कि अनन्तकाल से जिन तीन अशुभ योगों का इस जीव ने अभ्यास किया हुआ है और कर्म का उदय जिसका सहायक है उससे अलग होना अत्यन्त कठिन है स्वाध्याय की भावना ही इसे करने में समर्थ है।

इस गाथा में जो ज्ञानी तीन गुप्ति से उच्छ्वास मात्र से कर्मक्षय करता है यह कहा गया है सो यह बहुत महत्वपूर्ण एवं विचारणीय है। अभेद रत्नत्रय से युक्त स्वसंवेदन ज्ञान से जीव जिस प्रकार स्वयं को एवं पर को जानता है वैसा ज्ञान नीचे-नीचे की भूमिका में नहीं होता है और बिना आत्मज्ञान के केवल बाह्य तप त्याग से प्रचुर कर्म की निर्जरा नहीं होती है।

आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।

नायतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वापि परमं तपः।। (41) स.त.

कर्मबन्धन से छूटने के लिए आत्मज्ञानपूर्वक किया हुआ इच्छानिरोध रूप तपश्चरण ही कार्यकारी है। आत्मज्ञान से शून्य केवल शरीर को कष्ट देने वाला तपश्चरण नहीं है संसार परिभ्रमण का ही कारण है। उनसे आत्मा कभी भी कर्मों के बन्धन से छूट नहीं सकता और न स्वरूप में ही स्थिर हो सकता है उसकी कष्ट परम्परा बढ़ती ही चली जाती है।

न जानन्ति शरीराणि सुख दुःखान्यबुद्धयः।

निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते॥ (61)

अन्तरात्मा विचारता है कि जब शरीर जड़ है, इसे सुख दुःख का कोई अनुभव नहीं होता और न ये किसी के निग्रह या अनुग्रह को ही कुछ समझता है तब इसमें निग्रहानुग्रह की बुद्धिधारण करना मूढ़ता नहीं तो और क्या है? उसका यह विचार ही उसे शरीर के वस्त्राभूषणादि से अलंकृत और मंडित करने में उदासीन बनाये रखता है। वह उसकी अनावश्यक चिन्ता को अपने हृदय में स्थान ही नहीं देता। ज्ञानी की तीन गुप्ति से कर्म की निर्जरा होती है यह कहा गया है। इसकी परिभाषा उपर्युक्त दी गई है। अब तीन गुप्ति का विशेष विवेचन करते हैं। गुप्ति का सामान्य अर्थ है 'गुप्त होना, छिपाना, रक्षा करना' इस प्रकरण में इसका अर्थ है आत्मा की सुरक्षा करना। मन, वचन, काय के परिस्पंदन से कर्मास्रव होता है जो आत्मा के लिए असुरक्षित है इसलिए मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को रोकने से कर्मास्रव नहीं होता है जिससे आत्मा की रक्षा होती है।

मणवचकायपउत्ती भिक्खू सावज्जकज्जसंजुत्ता।

खिप्पं णिवारयंतो तीहिं दु गुत्तो हवदि एसो॥ (331) मू.चार

पापकार्य से युक्त मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को शीघ्र ही निवारण करता हुआ यह मुनि तीन गुप्तियों से गुप्त होता है।

प्रवृत्ति शब्द को प्रत्येक के साथ लगा लेना चाहिए। अतः जो मुनि सावद्य कार्य संयुक्त-हिंसादि पाप विषयक मन की प्रवृत्ति को, वचन की प्रवृत्ति को और काय की प्रवृत्ति को शीघ्र ही दूर करता है तीन गुप्तियों से गुप्त अर्थात् रक्षित होता है। यह गुप्ति का सामान्य लक्षण है।

जा रायदिणियत्ती मणस्स जाणाहि तं मणोगुत्ती।

अलियादिणियत्ती वा मोणं वा होंति वचिगुत्ती॥ (332)

मन से जो रागादि निवृत्ति है उसे मनो गुप्ति जानो। असत्य आदि से निवृत्ति होना या मौन रहना वचन गुप्ति है।

राग-द्वेषादि से मन का जो रोकना है अर्थात् मन से जो रागादि भावों का त्याग करना है उसे मनकी संवरणरूप मनोगुप्ति जानो और जो असत्य अभिप्रायों से वचन

को रोकना है अथवा मौन रहना है, ध्यान-अध्ययन चिंतनशील होना अर्थात् वचन के व्यापार को रोककर मौन धारण करना अथवा असत्य वचन नहीं बोलना, यह वचन गुप्ति का लक्षण है।

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती।

हिंसादिणियत्ती वा सरीरगुत्ती हवदि एसा।। (333)

काय की क्रिया का अभावरूप कायोत्सर्ग करना काय से सम्बन्धि गुप्ति है। अथवा हिंसादि कार्यों से निवृत्त होना कायगुप्ति होती है।

शरीर की चेष्टा की प्रवृत्ति नहीं होना अथवा कायोत्सर्ग करना कायगुप्ति है अथवा हिंसा आदि से निवृत्ति होना शरीर गुप्ति है जिसके द्वारा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र गोपित किये जाते हैं, रक्षित किये जाते हैं वे गुप्तियाँ हैं अथवा जिनके द्वारा मिथ्यात्व असंयम और कषायों से आत्मा गोपित होती है, रक्षित होती है वे गुप्तियाँ हैं।

खेत्तस्य वई णयरस्स खइया अहव होइ पयारो।

तह पावस्स णिरोहो ताओ गुत्तीउ साहुस्स।। (334)

जैसे क्षेत्र की बाड़, नगर की खाई अथवा परकोटा होता है उसी प्रकार से पाप का निरोध होने रूप से साधु की वे गुप्तियाँ हैं जैसे खेत की रक्षा के लिए बाड़ है, और नगर की रक्षा के लिए खाई अथवा परकोटा है उसी प्रकार से जो अशुभ कर्म को रोकना है या संवृत होना है वही संयत की गुप्तियाँ कहलाती हैं।

त्रिगुप्ति के धारी पूर्ण रूप से 6 वें गुणस्थानवर्ती मुनि भी नहीं हो सकते हैं।

क्योंकि 6 वें गुणस्थान में प्रमाद होने के कारण, मन, वचन, काय में परिस्पन्दन होता है परन्तु मुनि व्यवहार रूप से गुप्ति का पालन करता है और उसका अभ्यास करता है। गुप्तियाँ जो सप्तम आदि ध्यानस्थ गुणस्थान में उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं वे क्या 4 थें गुणस्थान में हो सकती हैं? कदापि नहीं, कुछ व्यक्ति एकान्त आध्यात्मिकवादी बनकर एकाध अथवा आध्यात्मिक शास्त्र को पढ़कर केवल तोता-रटंत-रटकर स्वयं को ज्ञानी मान लेते हैं और भोग को भोगते हुए भी राग द्वेष में लिप्त होते हुए भी पांच पापों को करते हुए भी असंयम जीवन बिताते हुए भी इस 238 नम्बर गाथा में वर्णित विषय को पूर्ण रूप से स्वयं की चर्या में घटाते हैं। वे स्वयं को निर्ग्रन्थ मुनि से भी श्रेष्ठ ज्ञानी मानते हैं और उनसे भी अधिक ध्यानी मानते हैं एवं

उनसे भी अधिक कर्म की निर्जरा होती हैं यह मानते हैं।

कोटि जन्म तप तपे ज्ञान बिन कर्म झरे जें,
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्तितै सहज टरैं तें।
मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रैवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।। छ.ढा.

परन्तु इस दोहा छंद में जो मुनि व्रत कहा है वह भाव पूर्वक 6वे, 7 वें आदि गुणस्थानवर्ती मुनिव्रत नहीं है, किन्तु अभव्य अपेक्षा या मिथ्यात्व युक्त मुनिव्रत है। क्योंकि भाव सहित जो 32बार मुनि बनता है, वह अवश्य मोक्ष को प्राप्त करता है ऊपर जो सविस्तार वर्णन किया गया कि ज्ञानी निर्विकल्प समाधि में स्थित मुनि ही है, आध्यात्मिक दृष्टि से आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले चौथे से छठवे तीन गुणस्थान वर्ती भी ज्ञानी नहीं है, इसलिये 238 नम्बर गाथा में एवं छहढाला में जो विषय बताया गया है उसके आध्यात्मिक रहस्य को समझना चाहिये और स्वयं असंयमी भोगी होकर भी स्वयं को मुनि के समान श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिये और न उसके समान कर्म निर्जरा मानना चाहिये।

ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवत्तिनो।

ते जना पारतेस्सन्ति मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।। (11) धम्मपद

जो भली प्रकार उपदिष्ट धर्म में धर्मानुचरण करते हैं वे ही दुस्तर मृत्यु के राज्य को पार करेंगे।

यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो।

एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स ज्ञायिनो।। (11)

दुःशील और एकाग्रता रहित के सौ वर्ष के जीने से शीलवान और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है। नारायण कृष्ण ने भी आत्मज्ञान को अग्नि के समान कहा है। जिससे कमरूपी ईंधन भस्म हो जाता है, उनने यह भी कहा है कि ज्ञानरूपी नौका से यह जीव सम्पूर्ण पापों को त्याग कर पवित्र बन सकता है।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।। (36)

तू समस्त पापियों में बड़े से बड़ा पापी होने पर भी ज्ञानरूपी नौका द्वारा सब पापों को पार कर जायगा।

यथैधांसि समिद्धोऽअग्निर्भस्मसात्कुरुते ऽर्जुन।

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।। (37)

हे अर्जुन, जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि सब कर्मों को भस्म कर देती है।

जो व्यक्ति शब्द ब्रह्म को आत्म ब्रह्म (परमब्रह्म) के लिये अध्ययन नहीं करता है उसके लिए यह ज्ञान मोक्षमार्ग के लिए अकिंचित्कर है, हेय है।

वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्ठम्।

प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते।। (59) (वि.चु.)

वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्

वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।। (60)

जिस प्रकार वीणा का रूप लावण्य तथा तंत्री को बजाने का सुन्दर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती; उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं।

अविज्ञाते पर तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।

विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।। (61) (वि. चू)

परमतत्त्व को यदि न जाना तो शास्त्राध्ययन निष्फल व्यर्थ ही है, और यदि परम तत्त्व को जान लिया तो भी शास्त्राध्ययन निष्फल (अनावश्यक) ही है।

शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्।

अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञातत्त्वमात्मनः।। (62)

शब्द जाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान् वन है, इसलिए किन्हीं तत्त्वज्ञानी महात्मा से प्रयत्नपूर्वक आत्मतत्त्व को जानना चाहिए।

अज्ञानसर्पदष्टस्य ब्रह्मानौषधं विना।

किमु वैदैश्च शास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधैः।। (63)

अज्ञानरूपी सर्प से डँसे हुए को ब्रह्म ज्ञान रूपी औषधि के बिना वेद से, शास्त्र से, मन्त्र से और औषध से क्या लाभ?

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषशब्दतः।

विना परोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते॥ (64)

औषध को बिना पाये केवल औषध शब्द के उच्चारण मात्र से रोग नहीं जाता, इसी प्रकार अपरोक्षानुभव के बिना केवल “ब्रह्मब्रह्म” कहने से कोई मुक्त नहीं हो सकता।

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम्।

राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितु मर्हति॥

बिना शत्रुओं का वध किये और बिना सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का ऐश्वर्य प्राप्त किये मैं राजा हूँ-ऐसा कहने से कोई राजा नहीं हो जाता।

आप्तोक्तिं खननं तथोपरिशिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृतिं

निक्षेपः समपेक्षते न हि बहिः शब्दैस्तु निर्गच्छति

तद्वद् ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिर्लभ्यते।

मायाकार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्वं न दुर्युक्तिभिः॥ (67)

(पृथ्वी में गड़े हुए धन को प्राप्त करने के लिये जैसे) प्रथम किसी विश्वसनीय पुरुष के कथन की, और फिर पृथ्वी को खोदने, कंकड पत्थर आदि को हटाने तथा (प्राप्त हुए धन को) स्वीकार करने की आवश्यकता होती है-कोरी बातों से धन बाहर नहीं निकलता उसी प्रकार समस्त मायिक प्रपञ्च से शून्य निर्मल आत्मतत्त्व भी ब्रह्मवित् गुरु के उपदेश तथा उसके मनन और निदिध्यासनादि से ही प्राप्त होता है, थोथी बातों से नहीं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भववन्धविमुक्तये।

स्वैरव यत्नः कर्तव्यो रोगादिविव पण्डितैः॥ (68)

इसलिये रोग आदि के समान भव बंध की निवृत्ति के लिये विद्वान् को अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिये।

विरला णिसुणहि तच्चं विरला जाणंति तच्चदो तच्चं।

विरला भावहि तच्चं विरलाणं धारणा होदि॥ (279) स्वा.का.

जगत् में विरले मनुष्य ही तत्व को सुनते हैं। सुनने वालों में से भी विरले मनुष्य ही तत्व को ठीक ठीक जानते हैं। जानने वालों में से भी विरले मनुष्य ही तत्व की भावना-सतत अभ्यास करते हैं और सतत अभ्यास करने वालों में से भी तत्व की धारणा विरले मनुष्यों को ही होती है।

संसार में राग रंग और काम भोग की बातें सुनने वाले बहुत हैं किन्तु तत्व की बातें सुनने वाले बहुत कम हैं। राग रंग की बातें सुनने के लिये मनुष्य पैसा खर्च करता है किन्तु तत्व की बात मुफ्त में भी सुनना पसन्द नहीं करता। यदि कुछ लोग भूले भटके या पुराने संस्कार वश तत्व चर्चा सुनने आ भी जाते हैं तो उनसे से अधिकांश को नींद आने लगती है, कुछ समझते नहीं हैं। अतः सुनने वालों में से भी कुछ ही लोग तत्व को समझ पाते हैं। जो समझते हैं तो भी गृहस्थी के मोहजाल के कारण दिनभर दुनियाँदारी में फंसे रहते हैं। अतः उनमें से भी कुछ ही लोग तत्व चर्चा से उठकर उसका चिन्तन-मनन करते हैं। चिन्तन मनन करने वालों में से भी तत्व की धारणा कुछ को ही होती है। अतः तत्व को सुनने वाले सुनकर समझने वाले, समझकर अभ्यास करने वाले और अभ्यास करके भी उसे स्मरण रखने वाले मनुष्य उत्तरोत्तर दुर्लभ होते हैं। कहा भी है-आत्मज्ञान से विमुख और सन्देह में पड़े हुए प्राणी बहुत हैं, किन्तु जिनको आत्मा के विषय में जिज्ञासा है ऐसे प्राणी क्वचित् कदाचित् ही मिलते हैं किन्तु जो आत्मिक प्रमोद से सुखी हैं तथा जिनकी अन्तर्दृष्टि खुली है ऐसे आत्मज्ञानी दो तीन अथवा बहुत हुए तो तीन चार ही होते हैं, किन्तु पाँच का होना दुर्लभ है।

तच्चं कहिज्जमाणं णिच्चल-भावेण गिण्हदे जो हि

तं चिय भावेदि सया सो वि य तच्चं वियाणेइ।। (280)

जो पुरुष गुरुओं के द्वारा कहे हुए तत्व को निश्चल भाव से ग्रहण करता है और सदा उसी को भाता है वही तत्व को जानता है।

गुरु आदि ने जीवादि वस्तु का जो स्वरूप कहा है, जो भव्य जीव उस पर दृढ़श्रद्धा रखकर सदा उसी का चिन्तन मनन करता है वही अपने शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द स्वरूप को जानता है बिना दृढ़ श्रद्धा और सतत् भावना के सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आगमज्ञ मुच्छावान् भी मोक्ष प्राप्त नहीं करता है-

परमाणु पमाणं वा मुच्छा देहादियेसु जस्स पुणो।

विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि।। (239)

Further, he, who has an atom of attachment towards body etc, can not attain libertation, even if he knows all the scriptures.

आगे कहते हैं जो पूर्व सूत्र में कहे हुए आत्मज्ञान से रहित हैं उसके एक साथ आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयमपना होना भी कुछ कार्यकारी नहीं है। मोक्ष प्राप्ति में अकिंचित्कर है।

(पुणो) तथा (जस्स) जिसके (देहादियेसु) शरीर आदिकों से (परमाणुपमाणं वा) परमाणु मात्र अर्थात् अल्प भी (मुच्छा) ममत्वभाव (जदिविज्जदि) यदि है तो (सो) वह साधु (सव्वागम धरो वि) सर्वआगम को जानने वाला होते हुए भी (सिद्धिं ण लहदि) मोक्ष को नहीं पा सकता है।

संयम का स्वरूप:-

चागो य अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं।

सो संजमोत्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण।। (239-1)

(चागो य) त्याग और (अणारंभो) आरंभ रहितपना (विसयविरोगो विषयों से वैराग्य (कसायाणं खओ) कषायों का क्षय (जो संजमोत्तिभणिदो) वह संयम है, ऐसा कहा गया है। (पव्वज्जाए) तप के समय (विसेसेण) यह संयम विशेषता से होता है।

निज शुद्धात्मा को ग्रहण करके और बाहरी भीतरी 24 प्रकार के परिग्रह की निवृत्ति सो त्याग है। निःक्रिय निज शुद्धात्म द्रव्य में ठहर कर मन, वचन, काय के व्यापारों से छूट जाना सो अनारंभ है। इंद्रिय विषय रहित अपने आत्मा की भावना से उत्पन्न सुख में तृप्त होकर पंचेन्द्रियों के सुख की इच्छा का त्याग सो विषय-विराग है। निःकषाय निज शुद्धात्मा की भावना के बल से क्रोधादि कषायों का त्याग सो कषाय क्षय है। इन गुणों से संयुक्तपना संयम है, ऐसा कहा गया है। यह सामान्य संयम का लक्षण है। तपश्चरण की अवस्था में विशेष संयम होता है। यहां अभ्यंतर परिणामों की शुद्धि को भाव संयम तथा बाह्य त्याग को द्रव्यसंयम कहते हैं।

समीक्षा- 'सिद्धिः स्वात्मोपलब्धि' अर्थात् आत्मा की पूर्ण उपलब्धि ही सिद्धि है। आत्मा की पूर्ण उपलब्धि तब होती है जब सम्पूर्ण मोह-राग-द्वेषादि रूप वैभाविक परिणाम नष्ट हो जाते हैं। जब तक सूक्ष्म मात्र भी वैभाविक भाव होता है तब तक केवल ज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता है। जिसकी मूर्च्छा शरीरादि में रहती है तब तक वह निर्विकल्प नहीं हो सकती है क्योंकि मूर्च्छा भाव में चंचलता उत्पन्न कर देती है। जब चंचलता रहती है तब अभेद रत्नत्रय की उपलब्धि नहीं होती है। जब अभेद रत्नत्रय नहीं होता है तब स्व-संवेदन ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं होता है। और जब तक स्वसंवेदन ज्ञानपूर्ण नहीं होता है तब सिद्धि की उपलब्धि नहीं होती है। भले वह सम्यग्दर्शन आगम ज्ञान तथा संयम को धारणा करने वाला मुनि ही क्यों न हो? अकलक देव स्वामी ने स्वरूप सम्बोधन में कषायरूपी रंग से रंगा हुआ चित्त आत्मा स्वभाव में लीन नहीं हो जाता है।

कषायैः रज्जितं चेतस्तत्त्वं नौवावगाहते।

नीलीरक्तेऽम्बरे रागो, दुराधेयों हि कौकुमः॥ (17) (स्व.स.)

शुद्धआत्मा का स्वरूप तभी विचारा जा सकता है जबकि चित्त में कषाय भावों का गहरा मैल न चढ़ा होवे कषाय मन्द हो, विवेक शक्ति जाग्रत हो जैसे कुकुम का लाल रंग सफेद या हल्के रंगे हुए कपड़े पर चढ़ सकता है। गहरे नीले रंग से रंगे हुए कपड़े पर कुकुम का रंग नहीं चढ़ सकता है, इस कारण सदा अपने कषाय भावों को अच्छे प्रयत्न के साथ दबा करके रखना चाहिए जिससे आत्मा का विवेक कार्य करता रहे।

ततस्त्वं दोषनिर्मुक्त्यै निर्मोहो भव सर्वतः।

उदासीनत्वमाश्रित्य, तत्त्वचिन्तापरो भव॥ (18)

आत्मा के विवेक भाव को लुप्त करने वाला कषाय भाव तब ही प्रबल होता है जबकि आत्मा इन्द्रियों या शरीर के इष्ट यानी-प्रिय विषयों में राग भाव करता है और इन्द्रियाँ तथा शरीर के अनिष्ट यानी अप्रिय विषयों में द्वेष करता है। यदि सांसारिक शारीरिक तथा इन्द्रिय (इन्द्रियों के) विषयों में इष्ट अनिष्ट की विचार धारा छोड़ कर आत्मा उदासीन बन जावे तो अपना आत्म-स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है आत्मा को विषय मैल से स्वच्छ हो कर संसार से छुटकारा मिल सकता है।

एक लजीज इटैलियन खाद्य है पिज़्ज़ा। लेकिन इस स्वादिष्ट व्यंजन के साथ जाने-अनजाने ही एक तरह का प्रभाव जुड़ गया जिसे कहते हैं पिज़्ज़ा प्रभाव। जानिए क्या है पिज़्ज़ा प्रभाव और इसके होने से आपके जीवन का प्रभाव कितना बढ़ सकता है।

कितना है आपका पिज़्ज़ा प्रभाव!

सीधे मुद्दे पर आते हैं। तो बात इतनी सी है कि आप कुछ न कुछ नया सीखें या जो कर रहे हैं उसे पहले से बेहतर बनाएं (वह भले किसी और के देश की खूबी हो) यानी एक स्तर आगे ले जाएं। जैसे पिज़्ज़ा के साथ हुआ, जिसके बेहतर और बेहतर बनाने की मिसाल को पिज़्ज़ा प्रभाव का नाम मिल गया।

स्वादिष्ट व्यंजन पिज़्ज़ा मूलतः इटली का है लेकिन इसका टॉपिंग्स अमेरिका में रहने वाले इटली के अप्रवासी नागरिकों की देन है। टॉपिंग्स फिर से इटली लौटीं और इतालवी कुज़ीन ने इसे हाथों-हाथ अपनाया। तब से हर वह मामला जिसमें उद्भव कहीं और हुआ लेकिन बेहतरी का काम कहीं और, उसे पिज़्ज़ा प्रभाव कहा जाने लगा।

सीखने योग्य क्या है?

यही पिज़्ज़ा प्रभाव आप आपने जीव में लागू कर आगे बढ़ सकते हैं।

करना इतना है कि किसी भी चीज़, या किसी कार्य को मूल से बेहतर बनाना या उसमें श्रेष्ठता हासिल करना है।

जैसे...

अपनी मातृभाषा से इतर कोई और भाषा इतनी धाराप्रवाह सीख लेना कि उक्त भाषा बोलने वाले भी आपका लोहा मानें। कई हिंदी भाषी लोग उर्दू, अंग्रेजी, मराठी आदि में मातृभाषा न होते हुए भी पारंगत होते हैं।

पिज़्ज़ा की ही तरह किसी अन्य राज्य या देश की डिश बनाना सीख लीजिए। दक्षिण भारतीय इडली, डोसा आदि में तो कई उत्तर भारतीय लोगों का जवाब नहीं।

संगीत आपका शौक है तो भारतीय शास्त्रीय संगीत के अलावा पाश्चात्य संगीत पर पकड़ बना सकते हैं। इन दोनों का फ्यूजन पर कोई नई धुन भी ईजाद हो सकती है।

मसला इतना-सा है कि अपना दिमाग निरंतर कुछ सीखने में, बेहतर को और बेहतर बनाने में खपाना है।

फ़ायदे ही फ़ायदे हैं

बेशक आपके ज्ञान का दायरा बढ़ेगा। आप अन्य चीज़ों में बेहतर तरीके से सम्बंध स्थापित कर पाएंगे।

यकीन मानिए यह आपको एक ऐसा व्यक्ति बनाने में मददगार होगा जिसके साथ वक्त बिताना सभी पसंद करेंगे।

इतना ही नहीं, यह डिमेंशिया से भी दूर रखेगा, क्योंकि दिमाग खपाना ही दिमाग की कसरत है।

विज्ञान की भी सुन लें

मस्तिष्क में मायलिन नामक एक पदार्थ होता है जो नर्व सेल्स में इलेक्ट्रिक इम्पल्स के संचारण की भूमिका निभाता है। वैज्ञानिकों का दावा है कि कुछ नया सीखने पर इस मायलिन का घनत्व बढ़ता जाता है। शोध में यह बात भी सामने आई कि नई चीज़ सीखने पर न्यूरोन्स के बीच नए तार जुड़ने लगते हैं। इसे न्यूरोप्लास्टिसिटी कहते हैं। यानी सरल भाषा में दिमाग के पट नए अनुभवों के लिए स्वतः खुलते लगेंगे।

पुनश्च: पहली बार मैंने इस तरह के अनूठे विषय पर लेख लिखने की कोशिश की, यानी नया सीखने की ओर कदम बढ़ाया। सीधा-सा अर्थ है कि आप जहां अभी हैं वहीं से उसी काम को सीखने और नया रंग-रूप देने की शुरुआत कर सकते हैं।

“मुझ में ही मेरा सर्वस्व”

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:- 1. किसी ने अपना बनाके... 2. कसमें-वादे)

किसे मैं जानूँ, किसे मैं मानूँ, किसे मैं गाऊँ किसे (मैं) ध्याऊँ?

किसे मैं खोजूँ, किसे मैं पाऊँ, सब कुछ मुझ में मैं पाऊँ॥ (धु.)

मैं हूँ आत्मा मेरा मैं कर्ता, मेरा मैं भोक्ता व विधाता।

मेरा मैं प्रभु मेरा मैं विभु, मेरा मैं शत्रु मेरा मैं हूँ मित्र॥
मेरा मैं द्रव्य मेरा पदार्थ, मेरा मैं तत्त्व मेरा मैं सत्य।
मेरा मैं धर्म मेरा अधर्म, मेरा मैं पुण्य मेरा मैं पाप॥ (1)

मेरा मैं स्वर्ग मेरा नरक, मेरा मैं बन्ध मेरा मैं मोक्ष।
मैं ही मेरा पर न है मेरा, सापेक्ष दृष्टि से मुझ में मेरा॥
मैं हूँ जीवद्रव्य अतः मैं सत्य, सत्य होने से मैं हूँ नित्य।
अतः मैं हूँ सनातन या शिव, सत्य-शिव-सुन्दर व चित्॥ (2)

अतएव मैं हूँ स्वयंभू सम्पूर्ण, अज मैं अजर व अमृत।
ज्ञाता हूँ मैं तथा दृष्टा भी हूँ मैं, अनन्त सुख वीर्य से पूर्ण।
यह ही मेरा निज स्वरूप, इसे ही प्राप्त करना परम लक्ष्य।
अतएव मुझे जानूँ व मानूँ, मुझे प्राप्त हेतु मुझे मैं ध्याऊँ॥ (3)

मेरा दर्शन है मेरा आत्मदर्शन, मेरा ज्ञान है मेरा सम्यक् ज्ञान।
मेरा ध्यान है मेरा आत्मध्यान, मेरा चिन्तन मेरा आत्म चिन्तन॥
मेरा सुधार है आत्म सुधार, मेरा विकास है आत्मविकास।
मेरा कल्याण है आत्म कल्याण, स्वात्मोपलब्धि मेरा परिनिर्वाण॥ (4)

इस हेतु ही करूँ देवशास्त्र श्रद्धान, गुरुदेशना से ले गुरुश्रद्धान।
महाव्रत भी इस हेतु पालन, तप त्याग व मनन चिन्तन॥
अन्यथा वृथा सभी धर्मपालन, प्राण बिना शवश्रृंगार सम।
'कनक' इस हेतु ही प्रयत्नवान्, ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्जन॥ (5)

ग.पु.का. दि-27-6-2019, रात्रि 9:39

मात्र भेष/लिंग से कल्याण नहीं

धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्ख हि।

करियउ किरियाकम्म मरिउ जमिउ बहिरप्पुजिउ॥ (68) रयण।

अन्वयार्थः-(बाहिरप्पुजिउ) बहिरात्मा जीव (धरियउ बाहिरलिंगं) बाह्य लिंग को धारण कर (बाहिरक्खसोक्खं हि) बाह्य में इन्द्रिय जनित सुख को ही (परिहरियउ) त्याग करके (किरियाकम्मं) क्रिया कर्मों को (करियउ) करता हुआ (मरिउ) मरता है (जमिउ) जन्म लेता है।

पद्य- बहिरात्मा (जीव) केवल बाह्य लिंग धारण कर, बाह्य इन्द्रिय
सुख ही त्यागे

बाह्य क्रिया कर्म ही करके जन्म-मरण को ही भोगते।।

समीक्षा-आत्मा श्रद्धान व समता-शान्ति बिन जो करते हैं बाह्य त्याग
उनके बाह्य क्रियाकर्म केवल बनते जन्म-मृत्यु के कारक।।

इससे शिक्षा मिले भले शक्ति अनुसार हो बाह्य त्याग।

किन्तु आत्म श्रद्धान-प्रज्ञा सहित-शान्ति से होता आत्मकल्याण

न लोकाः पारमार्थिक

(लौकिक से परे आध्यात्मिक)

(चाल:-दुनिया में रहना है तो..., सायोनारा....तुम दिल की...)

लोकानुगतिक से चलते लोग...नहीं चलते पारमार्थिक...

भेड़-भेड़िया चाल चलते लोग...नहीं चलते गौ-हंस के सम...(ध्रुव)...

गर्व तो करते, न गौरव करते...गौरव योग्य भाव न काम करते...

दिखावा करते...दर्शन नहीं करते...आत्मदर्शन न सत्यदर्शन करते...

पर दोष देखते निन्दा करते...स्व-पर दोषों से शिक्षा न गहते...

प्रशंसा चाहते प्रशंसा न करते...प्रशंसनीय भाव-काम न करते...(1)

ख्याति-पूजा-लाभ सदा चाहते...समता शान्ति संतुष्टि नहीं सेवते...

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि चाहते...दया-दान सेवादि नहीं करते...

अहंकार ममकार सदा करते...स्वाभिमान-सोऽहं भाव नहीं जानते...

उदार-सहिष्णु न पावन होते...अष्ट मद से स्वयं को श्रेष्ठ बताते...(2)

दिखावा-आडम्बर का धर्म करते...संकीर्ण-कट्टर व स्वार्थी होते...

सत्य निष्ठा-शुचिता रहित होते...श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-धार्मिक स्वयं को जताते...

परस्पर भेद-भाव वैरत्व करते...विश्व शांति का नारा लगाते...

गोमुख व्याघ्र सम काम करते...बगुला भगत सम भाव रखते...(3)

आधुनिक भाव व्यवहार न करते...आधुनिक ज्ञान-विज्ञान रहित होते...

फैशन-व्यसनों में भेड़चाल चलते...विदूषक समान स्वांग रचते...

संस्कार-सदाचार रहित होते...साक्षर-राक्षस सम चाल चलते...

सदाचारी शालीन सौम्य न होते...नीली लोमड़ी सम व्यवहार करते...(4)

मृगमरीचिका व गण्डशंख सम...दूर से ही लगे अविचारित रम्य...

इससे परे बने परमार्थिक लोग...इसी हेतु काव्य बनाये 'कनक'...(5)

जीवों के लिए दोष करना व पर दोष जानना सरल क्यों?

(चाल:-छोटी-छोटी गैया...)

अनादि काल से अनंत भवों में, दोष करते हैं जीव अनंत।

इसलिए दोष करना सरल है, अन्य के दोष भी जानना सरल।।

चोर ठग व हत्यारा बलात्कारी, जानते हैं स्वप्रकृति व प्रवृत्ति।

ऐसी प्रकृति व प्रवृत्ति वालों को, जानते सरलता से जो है स्व-अनुभूति।।

एक समान रोगी स्व-अनुभव से, अनुमान से जानता है अन्य रोगी को।

प्रसव पीड़ा को एक माता जानती है, अन्य माता की भी प्रसव पीड़ा को।।

शिकारी जानता है शिकार की कमजोरी, जिससे शिकार का करता शिकार।

चोर जानता है चोरी के उपायों को, जिससे बनता है वह सफल चोर।

मन जाने पाप व माँ जाने बाप, यह यथार्थ से मनोवैज्ञानिक सत्य।

स्व-प्रजाति को जानते स्व-प्रजाति जीव, समगुण गुणी जानते वैसे जो जीव।।

प्यासा जाने है प्यासे की पीड़ा, भूखा जाने है भूखे की पीड़ा।।

संतोषी जाने संतोषी का सुख, वीतरागी जाने वीतरागी का सुख।।

सर्वज्ञ जानते हैं सर्वज्ञ का ज्ञान, अल्पज्ञ न जान पाते हैं सर्वज्ञ को।

स्व पर दोष से दोष दूर करना, 'कनकनन्दी' की गुणग्राही भावना।।

धम्मणेण होइ लिंगं, ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ति।

जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।। 2 लिंगपा.

धर्म से लिंग होता है, लिंगमात्र धारण करने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती।

इसलिए भावको धर्म जानो, भावरहित लिंग से तुझे क्या कार्य है?

भावार्थ-लिंग अर्थात् शरीर का वेष धर्म से होता है। जिसने भाव के बिना मात्र शरीर का वेष धारण किया है उसके धर्म की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए भाव ही कर्म है। भाव के बिना मात्र वेष कार्यकारी नहीं है।

जो पावमोहिदमदी, लिंग घेत्तूण जिणवरिंदाणं।

उवहसइ लिंगं भावं, लिंगं णासेदि लिंगीणं।। (3)

जिसकी बुद्धि पाप से मोहित हो रही है ऐसा जो पुरुष जिनेन्द्र देव के लिंग को नग्न दिगंबर वेष को ग्रहण कर लिंगी के यथार्थ भावकी हँसी करता है वह सच्चे वेषधारियों के वेष को नष्ट करता है अर्थात् लजाता है।

णच्चदि गायदि तावं, वायं वाएदि लिंगरूवेण।

सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (4)

जो मुनि लिंग धारण कर नाचता है, गाता है अथवा बाजा बजाता है वह पाप से मोहितबुद्धि पशु है मुनि नहीं।

सम्मूहदि रक्खेदि य, अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।

सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (5)

जो बहुत प्रकार के प्रयत्नों से परिग्रह को इकट्ठा करता है, उसकी रक्षा करता है तथा आर्तध्यान करता है वह पाप से मोहितबुद्धि पशु हैं, मुनि नहीं।

कलंह वाद जूवां णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।

वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।। (6)

जो पुरुष मुनिलिंग का धारक होकर भी निरंतर अत्यधिक गर्व से युक्त होता हुआ कलह करता है, वादविवाद करता है अथवा जुवा खेलता है वह चूँकि मुनिलिंग से ऐसे कुकृत्य करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

पावोपहदिभावो, सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।

सो पावमोहिदमदी, हिंडदि संसारकांतारे।। (7)

पाप से जिसका यथार्थभाव नष्ट हो गया है ऐसा जो साधु मुनिलिंग धारण कर अब्रह्मका सेवन करता है वह पाप से मोहितबुद्धि होता हुआ संसार रूप अटवी में भ्रमण रहता है।

दंसणणाणचरित्ते, उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।

अट्टं झायदि झाणं, अणंतसंसारिओ होदि।। (8)

जो मुनिलिंग धारण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को उपधान

अर्थात् आश्रय नहीं बनाता है तथा आर्तध्यान करता है वह अनंतसंसारी होता है।

जो जोडदि विव्वाहं, किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।

वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।। (9)

जो मुनिका लिंग रखकर भी दूसरों के विवाहसंबंध जोड़ता है तथा खेती और व्यापार के द्वारा जीवों का घात करता है वह चूँकि मुनिलिंग के द्वारा इस कुकृत्य को करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

चोराण मिच्छवाण य, जुद्ध विवादं च तिक्कम्महिं।

जंतेण दिक्कमाणो, गच्छदि लिंगी णरयवासं।। (10)

जो लिंगी चोरों तथा झूठ बोलने वालों से युद्ध और विवाद कराता है तथा तीव्रकर्म खरकर्म अर्थात् हिंसावाले कार्यों से यंत्र अर्थात् चौपड़ आदि से क्रीड़ा करता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

दंसणणाणचरित्ते, तवसंजमणियमणिच्चकम्ममि।

पीडयदि वट्टमाणो, पावदि लिंगी णरयवासं।। (11)

जो मुनिवेषी दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप तथा संयम नियम और नित्य कार्यों में प्रवृत्त होता हुआ दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

गिण्हदि अदत्तदाणं, परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।

जिणलिंगं धारंतो, चोरेण व होइ सो समणो।। (14)

जो मनुष्य जिनलिंग को धारण करता हुआ भी बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करता है तथा परोक्ष में दुष्ण लगा-लगाकर दूसरे की निंदा करता है वह चोर के समान है, साधु नहीं है।

बंधे णिरओ संतो, सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।

छिंददि तरुगण बहुसो, तिखिक्खजोणी ण सो समणो।। (16)

जो किसी के बंध में लीन होकर अर्थात् उसका आज्ञाकारी बनकर धान कूटता है, पृथिवी खोदता है और वृक्षों के समूह को छेदता है वह पशु है, मुनि नहीं।

भावार्थ-यह कथन साधुओं की अपेक्षा है। जो साधु वन में रहकर स्वयं धान तोड़ते हैं, उसे कुटते हैं, अपने आश्रम में वृक्ष लगाने आदि के उद्देश्य से पृथिवी खोदते हैं तथा वृक्ष लता आदि को छेदते हैं वे पशुके तुल्य हैं, उन्हें हिंसा पाप की चिंता नहीं,

ऐसा साधु नहीं कहला सकता।

रागो (रागं) करेदि णिच्चं, महिलावगं परं च दूसेदि।

दंसणणाणविहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (17)

जो स्त्रियों के समूह के प्रति निरंतर राग करता है, दूसरे निर्दोष प्राणियों को दोष लगाता है तथा स्वयं दर्शन-ज्ञान से रहित है वह पशु है, साधु नहीं।

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।

आयारविणयहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (18)

जो दीक्षा से रहित गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखता है तथा आचार और विनय से रहित है वह तिर्यच है साधु नहीं।

भावार्थ—जो कोई साधु अपने गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखते हैं, अपने पद का ध्यान न कर उसके घर जाते हैं, सुख-दुःख में आत्मीयता दिखाते हैं तथा स्वयं मुनि के योग्य आचार तथा पूज्य पुरुषों के विनय से रहित होते हैं। आचार्य कहते हैं कि वे मुनि नहीं है, किंतु पशु हैं।

एवं सहिओ मुणिवर, संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।

बहुलं पि जाणमाणो, भावविणट्ठो ण सो समणो।।

हे मुनिवर! ऐसी खोटी प्रवृत्तियों से सहित मुनि यद्यपि संयमी जनों के बीच में रहता है और बहुत ज्ञानवान् भी है तो वह भाव से विनष्ट अर्थात् भावलिंग से रहित है—यथार्थ मुनि नहीं है।

मिथ्यात्व के नाश बिना मोक्ष नहीं

मोक्खणिमित्तं दुक्खं वड्ढे परलोयदिट्ठितणुदिट्ठि।

मिच्छाभाव ण छिज्जइ किं पावइ मोक्खसोक्खं हि।। 69 रयण.

अन्वयार्थ—(मिच्छाभावं ण छिज्जइ) मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व भाव को नहीं छेदन करता है। (परलोयदिट्ठि) परलोक-स्वर्गलोक की दृष्टि लगी रहती है (तणुदिट्ठि) शरीर के प्रति दृष्टि रहती है, (मोक्खणिमित्तं) मोक्ष के निमित्त (दुक्खं) दुःख को (वड्ढे) सहन करता है, (मोक्ख सोक्खं) मोक्ष सुख को (हि) निश्चय करके (किं पावइ) क्या पा सकता है? अर्थात् प्राप्त नहीं कर सकता।

पद्य- मोक्ष निमित्त दुःख सहन करे परलोक (स्वर्ग) व शरीर में दृष्टि।
किन्तु मिथ्याभाव नहीं त्यागे क्या पायेगा मोक्ष शान्ति (सुख)।।

समीक्षा-मिथ्याभाव त्यागे बिना मोक्ष न मिले दुःख सहने से।

नारकी सम केवल कष्ट सहन मात्र से ही नहीं मिले स्वर्ग-मोक्ष।

बामी को पीटने से क्या लाभ?

ण हु दंडइ कोहाइं देहं दंडेइ कहं खवइ कम्मं।

सप्पो किं मुवइ तहा वम्मिउ मारिउ लोए।। (70) रयण.

अन्वयार्थः-(ण हु दंडइ कोहाइं) क्योंकि क्रोधादि कषायों को दंड अर्थात् शमन नहीं किया (देहं दंडेइ) शरीर को ही तप के द्वारा दण्ड दिया (कहं खवइ कम्मं) किस प्रकार कर्मों का क्षया होगा? (तहा) जिस प्रकार (वम्मिउ मारिउ लोए) लोक में सर्प के बामी को मात्र कूटने से (सप्पो किं मारिउ) क्या सर्प मरेगा? नहीं।

पद्य- क्रोधादि को दंडित किये बिना देह दण्ड से न कर्म क्षय।

बामी को मारने मात्र से सर्प क्या मरेगा लोक में।।

समीक्षा-कर्म क्षया होता है समता शान्ति व आत्मविशुद्धि से।

इसके अतिरिक्त केवल देह दण्ड से न होता कर्मक्षय कभी।।

इससे शिक्षा मिले भाव विशुद्धि ही मोक्ष के कारण।

इस हेतु ही धर्म करणीय केवल देह दण्ड न करणीय।।

सन्दर्भः

दंसणमूलो धम्मो, उपइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।

त सोऊण सकण्णे, दंसणहीणो ण वंदिव्वो।। (2)

श्री जिनेन्द्र भगवान् ने शिष्यों के लिए दर्शनमूल धर्म का उपदेश दिया है इसलिए इसे अपने कानो से सुनो। जो सम्यग्दर्शन रहित है वह वंदना करने योग्य नहीं है।

दसणभट्टा भट्टा, दंसणभट्टस्य णत्थि णिव्वाणं।

सिज्झति चरियभट्टा, दसणभट्टा ण सिज्झति।। (3)

जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे ही वास्तव में भ्रष्ट हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट मनुष्य को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जो सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हैं वे सिद्ध हो जाते हैं परंतु जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे सिद्ध नहीं हो सकते।

सम्मत्तरयणभट्टा, जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।

आराहणाविरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव।। (4)

जो सम्यक्त्वरूपी रत्न से भ्रष्ट हैं वे बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हुए भी आराधनाओं से रहित होने के कारण उसी संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

सम्मत्तविरहियाणं, सुट्टु वि उगं तवं चरंताणं।

ण लहंति बोहिलाहं, अवि वाससहस्सकोडीहिं।। (5)

जो मनुष्य सम्यग्दर्शन रहित हैं वे भले ही करोड़ों वर्षों तक उत्तमतापूर्वक कठिन तपश्चरण करें तो भी उन्हें रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता है।

सम्मत्तणाणदंसंगबलवीरियवड्डमाण जे सव्वे।

कलिकुलसपावरहिया, वरणाणी होंति अइरेण।। (6)

जो पुरुष सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य से वृद्धि को प्राप्त हैं तथा कलिकाल संबंधी मलिन पाप से रहित हैं वे सब शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।

सम्मत्तसलिलपवहे, णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।

कम्मं वालुयवरणं, बंधुच्चियं णासए तस्स।। (7)

जिस मनुष्य के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता है उसका पूर्वबंध से संचित कर्मरूपी बालूका आवरण नष्ट हो जाता है।

जे दंसणेसु भट्टा, णाणे भट्टा चरित्तभट्टा य।

ऐदे भट्टविभट्टा, सेसं पि जणं विणासंति।। (8)

जो मनुष्य दर्शन से भ्रष्ट हैं, ज्ञान से भ्रष्ट हैं और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टों में भ्रष्ट हैं अत्यंत भ्रष्ट हैं तथा अन्य जनों को भी भ्रष्ट करते हैं।

जो कोवि धम्मसीलो, संजमतवणियमजोयगुणधारी।

तस्स य दोस कहंता, भग्गा भग्गत्तणं दिंति।। (9)

जो कोई धर्मात्मा संयम, तप, नियम और योग आदि गुणों का धारक है उसके

दोषों को कहते हुए क्षुद्र मनुष्य स्वयं भ्रष्ट है तथा दूसरों को भी भ्रष्टता प्रदान करते हैं।

जह मूलिम्म विणट्ठे, दुमस्स परिवार णत्थि परवड्डी।

तह जिणदंसणभट्टा, मूलविणट्टा ण सिज्झंति।। (10)

जैसे जड़के नष्ट हो जाने पर वृक्ष के परिवार की वृद्धि नहीं होती वैसे ही जो पुरुष जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं वे मूल से विनष्ट हैं उनका मूल धर्म नष्ट हो चुका है, अतः ऐसे जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

जह मूलाओ खंधो, साहापरिवार बहुगुणो होई।

तह जिणदंसणमूलो, णिट्ठो मोक्खमग्गस्स।। (11)

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ से शाखा आदि परिवार से युक्त कई गुणा स्कंध उत्पन्न होता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग की जड़ जिनदर्शन-जिनधर्म का श्रद्धान है ऐसा कहा गया है।

आत्मविशुद्धि बिना बाह्य तप त्याग संयम से मोक्ष नहीं

(चाल:-आत्मशक्ति से...)

केवल बाह्य तप त्याग संयम से नहीं होता आत्मकल्याण।

जब तक न होती आत्मविशुद्धि आत्म श्रद्धान युक्त आत्म ज्ञान।। (1)

राग द्वेष मोह क्रोध व ईर्ष्या तृष्णा घृणादि रहित भाव।

होती है आत्म विशुद्धि ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व रहित भाव।। (2)

आत्मश्रद्धान होता जब होता है श्रद्धान स्व शुद्धात्मा (का)

मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध आनन्द स्वरूप परमात्मा।। (3)

किन्तु अनादि कर्म के कारण बना हूँ अशुद्ध संसारी आत्मा।

अभी मैं स्व-आत्म साधना से लक्ष्य बनाया हूँ बनना परमात्मा।। (4)

इस हेतु होता है देवशास्त्र गुरु व द्रव्य-तत्त्व का भी सही श्रद्धान।

तदनुकूल होता है सम्यग्ज्ञान, निश्चय-व्यवहार नय प्रमाण।। (5)

दोनों से सहित होता है श्रावक या श्रमण धर्म पालन।

शक्ति हो तो श्रमण धर्म अन्यथा पालन होता श्रावक धर्म।। (6)

आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र बिना बाह्य तप त्याग संयम से न होता मोक्ष।

यथा बीज के बिन केवल मृदाजल वायु सूर्य किरण से न होता वृक्ष।। (7)

आत्मविशुद्धि से ही होते हैं कर्म संवर-निर्जरा व मोक्ष।

अतएव आत्म विशुद्धि ही मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रमुख कारण।। (8)

आत्म विशुद्धि बिन होता है 'बाह्यतप' या मिथ्या साधना।

यह है सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य 'कनक' करे आत्म साधना।। (9)

स्व-आत्मश्रद्धान ज्ञानाचरण करूँ अन्यथा संयम-

तप-श्रुत युक्त भी व्यर्थ

(चाल:-मन रे! तू काहे...सोयानारा...)

आत्मन्! तू स्व-श्रद्धान/(ज्ञान) कर \$\$\$

स्व श्रद्धान व ज्ञानानुसार...चारित्र भी पालन कर \$\$\$ (ध्रुव)

इस हेतु कर श्रद्धान ज्ञान...देव शास्त्र-गुरु का भी \$\$\$

द्रव्य-तत्त्व पदार्थ सहित...निश्चय व्यवहारनय से भी \$\$\$

स्व-आत्म कल्याण प्रधान ही \$\$\$ आत्मन्। (1)

यथा बीज बिना न सम्भव है...अकुंर से वृक्ष-फूल-फल \$\$\$

अणु बिना यथा न सम्भव है...स्कन्ध से ले ग्रह-नक्षत्र \$\$\$

जल-वायु-मृदा से ले शरीर \$\$\$ आत्मन् (2)

तथाहि तुझे स्व-आत्म श्रद्धान बिन-न होगा स्व-आत्म ज्ञान \$\$\$

दोनों के बिना न होगा आत्मानुचरण...जिससे न होगा आत्मानुभव \$\$\$

इसके बिन न मिलेगा परिनिर्वाण \$\$\$ आत्मन् (3)

आत्म श्रद्धान बिन न होगा श्रद्धान...देव शास्त्र-गुरु का भी यथार्थ \$\$\$

यथा भव्यसेन मुनि या अभव्य जीव...न कर पाते आत्मश्रद्धान \$\$\$

जिससे उन्हें न मिलेगा कभी निर्वाण \$\$\$ आत्मन्।। (4)

इस हेतु त्यागो राग-द्वेष-मोह...ईर्ष्या-तृष्णा-काम-मद \$\$\$

समता-शुचिता-सहिष्णुता भज-निस्पृह-निराडम्बर-विराग \$\$\$

आत्मानुभव-आत्मानुचिन्तन कर \$\$\$ आत्मन्। (5)

आत्मश्रद्धान बिन तप-त्याग भी...न बनते निर्वाण कारण \$\$\$

मिथ्यादृष्टि नारकी सहन करते...भूख-प्यास-सर्दी-गर्मी-रोग \$\$\$

तथापि उन्हें न मिलता निर्वाण SSS। (6)

तथाहि-पशु-पक्षी-कीट-पतंग...वृक्ष-लतादि सहते नाना कष्ट SSS
गुलाम-दोषी-बन्दी अभाव जीव...सहन करते हैं विविध दुःख SSS
आत्मश्रद्धान बिन बन्धे पाप कर्म SSS आत्मन्। (7)

आत्मश्रद्धान बिन करोड़ों भव में भी...मुनि बनने से भी न मिले मोक्ष।
करोड़ों भवों में अज्ञानी जो कर्म-नाशे...ज्ञानी मुनि क्षणमात्र में करे विनाश SSS
आत्मज्ञान-ध्यान में हो लवलीन SSS आत्मन्।। (8)

शक्ति अनुसार बाह्य तप-त्याग कर...ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व मुक्त SSS
आरम्भ-परिग्रह याचना रहित...भौतिक निर्माण-रक्षण रहित SSS
पर निंदा पर प्रपंचों से रहित SSS आत्मन्।। (9)

आत्मविशुद्धि हेतु चक्रवर्ती भी...साधु बनकर करते आत्मध्यान SSS
ऋद्धिधारी व तीर्थकर मुनि भी...आत्मसाधना हेतु न करते बाह्य काम।
यथा शक्ति आत्मा का कर अनुकरण SSS आत्मन्।। (10)

अन्यथा तेरे सभी तप-त्याग-ज्ञान...होंगे केवल बाह्य आडम्बर SSS
इससे होगा आत्मपतन व धर्म विराधना...व्यापार व राजनीति सम काम SSS
'कनक' करो तू आत्मसाधना SSS

(न करो आत्मा/(धर्म) की विराधना SSS आत्मन्।। (11)

सन्दर्भ:

भावार्थ-यद्यपि बाहुबली स्वामी शरीरादि से विरक्त होकर आतापन योग से
विराजमान थे परन्तु मैं भरत की भूमि में खड़ा हूँ, इस प्रकार सूक्ष्म मान विद्यमान
रहने से केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके थे।। जब उनके हृदय से उक्त प्रकार का मान
दूर हो गया था तभी उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि
अंतरंग की उज्ज्वलता के बिना केवल बाह्य त्याग से कुछ नहीं होता।

महुपिंगो णाय मुणी देहाहारदिचत्तवावारो।

सवणत्तणं ण पत्तो, णियाणमित्तेण भवियणुव।। (45) (अष्टपाहुड़)

हे भव्य जीवों के द्वारा नमस्कृत मुनि! शरीर तथा आहार का त्याग करने वाले
मधुपिंग नामक मुनि निदानमात्र से श्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए थे।

अण्णं च वसिट्टमुणी, पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।

सो णत्थि वासठाणो, जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो।। (46)

और भी एक वशिष्ठ मुनि निदानमात्र से दुःख को प्राप्त हुए थे। लोक में वह निवासस्थान नहीं है जहाँ इस जीव ने भ्रमण न किया हो।

सो णत्थि तं पएसो, चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।

भावविरओ वि सवणो, जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो।। (47)

हे जीव! चौरासी लाख योनि के निवास में वह एक भी प्रदेश नहीं है जहाँ अन्य की बात जाने दो, भावरहित साधु ने भ्रमण न किया हो।

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।

तम्हा कुणिज्ज भावं, किं कीरइ दव्वलिंगेण।। (48)

मुनि भाव से ही जिनलिंगी होता है, द्रव्यमात्र से जिनलिंगी नहीं होता। इसलिए भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंग से क्या काम सिद्ध होता है?

दंडअणयरं सयलं, डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।

जिणलिंगेण वि बाहू, पडिओ सा रउरवे णरये।। (49)

बाहु मुनि जिनलिंग से सहित होने पर भी अंतरंग के दोष से दंडक नामक समस्त नगर को जलाकर रौरव नामक नरक में उत्पन्न हुआ था।

अवरो वि दव्वसवणो, दंसणवरणाणचरणपब्भट्टो।

दीवायणुत्ति णामो, अणंतसंसारिओ जाओ।। (50)

और भी एक द्वैपायन नामक द्रव्यलिंगी श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट होकर अनंतसंसारी हुआ।

भावसमणो य धीरो, जुवईजणवेड्ढिओ विसुद्धमई।

णामेण सिवकुमारो, परीत्तसंसारिओ जादो।। (51)

भावलिंग का धारक धीर वीर शिवकुमार नाम का मुनि युवतिजनों से परिवृत होकर भी विशुद्धहृदय बना रहा और इसीलिए संसार समुद्र से पार हुआ।

अंगाइं दस य दुण्णि य, चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।

पढिओ अ भव्वसेणो, ण भावसवणत्तणं पत्तो।। (52)

भव्यसेन नामक मुनि ने बारह अंग और चौदह पूर्वरूप समस्त श्रुतज्ञान को पढ़ लिया तो भी वह भावश्रमणपने को प्राप्त नहीं हुआ।

तुसमासं घोसंतो, भावविसुद्धो महाणुभावो य।

णामेण य सिवभूर्इ, केवलणाणी फुडं जाओ॥ (53)

यह बात सर्वप्रसिद्ध है कि विशुद्ध भावों के धारक और अत्यन्त प्रभाव से युक्त शिवभूति मुनि 'तुषमाष' पद को घोकते हुए याद करते हुए केवलज्ञानी हो गये।

भावेण होइ णगो, बाहिरलिंगेण किं च णगगेण।

कम्मपयडीयणियरं, णासइ भावेण दव्वेण॥ (54)

भाव से ही निर्ग्रथ रूप सार्थक होता है, केवल बाह्यलिंगरूप नग्न मुद्रा से क्या प्रयोजन है? कर्म प्रकृतियों का समुदाय भावसहित द्रव्य से ही नष्ट होता है।

णगगत्तणं अकज्जं, भावणरहिय जीणेहि पण्णत्तं।

इय णारुण य णिच्चं, भाविज्जहि अप्पयं धीरा॥ (55)

जिनेन्द्र भगवान् ने भावरहित नग्नता को व्यर्थ कहा है ऐसा जानकर हे धीर! सदा आत्मा की भावना कर।

देहादिसंगरहिओ, माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।

अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू॥ (56)

जो शरीरादि परिग्रह से रहित है, मान कषाय से सब प्रकार मुक्त है और जिसका आत्मा आत्मा में रत रहता है वह साधु भावलिंगी है।

ममत्तिं परिवज्जामि, निम्ममत्तिमुवट्ठिदो।

आलंबणं च मे आदा, अवसेसाइं वोसरे॥ (57)

भावलिंगी मुनि विचार करता है कि मैं निर्ममत्व भाव को प्राप्त होकर ममता बुद्धि को छोड़ता हूँ और आत्मा ही मेरा आलंबन है, इसलिए अन्य समस्त पदार्थों को छोड़ता हूँ।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा में संवरे जोगे।

आदा पच्चक्खाणे, आदा में संवरे जोगे॥ (58)

निश्चय से मेरे ज्ञान में आत्मा है, दर्शन और चारित्र है, प्रत्याख्यान में आत्मा हैं,

संवर और योग में आत्मा है।

एगो में सम्मदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।

सेसा में बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।। (59)

नित्य तथा ज्ञान दर्शन लक्षणवाला एक आत्मा ही मेरा है, उसके सिवाय परद्रव्य के संयोग से होने वाले समस्त भाव बाह्य हैं...मुझसे पृथक् हैं।

भावेह भावसुद्धं, अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।

लहु चउगइ चइऊणं, जइ इच्छसि सासयं सुक्खं।। (60)

हे भव्य जीवो! यदि तुम शीघ्र ही चतुर्गति को छोड़कर अविनाशी सुख की इच्छा करते हो तो शुद्ध भावों के द्वारा अत्यन्त पवित्र और निर्मल आत्मा की भावना करो।

जो जीवो भावंतो, जीवसहावं सुझावसंजुत्तो।

जो जरमरणविणासं, कुडइ फुडं लहइ णिव्वाणं।। (61)

जो जीव अच्छे भावों से सहित होकर आत्मा के स्वभाव का चिंतन करता है वह जरामरण का विनाश करता है और निश्चय ही निर्वाण को प्राप्त करता है।

जीवो जिणपण्णत्तो, णाणसहाओ य चेयणासहिओ।

सो जीवो णायव्वो, कम्मक्खयकारणणिमित्तो।। (62)

जीव ज्ञान स्वभाव वाला तथा चेतनासहित है ऐसा जिनेंद्र भगवान् ने कहा है। वह जीव ही कर्मक्षय का कारण जानना चाहिए।

जेसिं जीवसहावो, णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ।

ते होंदि भिण्णदेहा, सिद्धा वचिगोयरमतीदा।। (63)

जिसके मन में जीव का सद्भाव है उसका सर्वथा अभाव नहीं है। वे शरीर से भिन्न तथा वचन के विजय से परे होते हैं।

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्त चेयणागुणसहं।

जाणमलिंगगहणं, जीवमणिद्धिट्टुसंठाणं।। (64)

जो रसरहित है, रूपरहित है, गंधरहित है, अव्यक्त है, चेतना गुण से युक्त है, शब्दरहित है, इंद्रियों के द्वारा अग्राह्य है और आकार रहित है उसे जीव जान।

भावहि पंचपयारं, णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं।

भावणभावियसहिओ, दिवसिवसहुभायणो होइ।। (65)

हे जीव! तू अज्ञान का नाश करने वाले पाँच प्रकार के ज्ञान की शीघ्र ही भावना कर। क्योंकि ज्ञानभावना से सहित जीव स्वर्ग और मोक्ष के सुख का पात्र होता है।

पढिण्णवि किं कीरइ, किंवा सुणिएण भावरहिण्ण।

भावो कारणभूदो, सायारणयारभूदाणं।। (66)

भावरहित पढने अथवा भावरहित सुनने से क्या होता है? यथार्थ में भाव ही गृहस्थपने और मुनिपने का कारण है।

दव्वेण सयलणग्गा, सारयतिरिया य सयलसधाया।

परिणामेण असुद्धा, ण भावसवणत्तणं पत्ता।। (67)

द्रव्य सभी रूप से नग्न रहते हैं। नारकी और तिर्यचो का समुदाय भी नग्न रहता है, परंतु परिणामों से अशुद्ध रहने के कारण भाव मुनिपने को प्राप्त नहीं होते।

णग्गो पावइ दुक्खं, णग्गो संसारसायरे भमई।

णग्गो ण लहइ बोहिं, जिणभावणवज्जियं सुइरं।। (68)

जो नग्न जिनभावना की भावना से रहित है वह दीर्घकाल तक दुःख पाता है, संसार सागर में भ्रमण करता है और रत्नत्रय को नहीं प्राप्त करता है।

अयसाण भायणेण य, किंते णग्गेण पावमलिंगेण।

पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण।। (69)

हे जीव! तुझे उस नग्न मुनिपने से क्या प्रयोजन? जो कि अपयशका पात्र है, पाप से मलिन है, पैशुन्य, हास्य, मात्सर्य और माया से परिपूर्ण है।

पयडहिं जिणलिंगं, अब्भिंतरभावदोपसपरिसुद्धो।

भावमलेण य जीवो बाहिरसंगम्मि मयलियई।। (70)

हे जीव! तू अंतरंग भाव के दोषों से शुद्ध होकर जिनमुद्रा को प्रकट कर धारण कर। क्योंकि भावदोष से दूषित जीव बाह्य परिग्रह के संग से अपने आपको मलिन कर लेता है।

धम्ममि णिप्पवासो, दोसावासो य इच्छुफुल्लसमो।

णिष्फलणिग्गुणयारो, णउसवणो णग्गरूवेण॥ (71)

जो धर्म से प्रवास करता है धर्म से दूर रहता है, जिसमें दोषों का आवास रहता है और जो ईख के फूल के समान निष्फल तथा निर्गुण रहता है वह नग्न रूप में रहने वाला नट श्रमण है साधु नहीं नट है।

जे रायसंगजुत्ता, जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।

ण लहंति ते समाहिं, बोहिं जिणसासणे विमले॥ (72)

जो मुनि रागरूप परिग्रह से युक्त हैं और जिनभावना से रहित केवल बाह्य रूप में निर्ग्रथ है नग्न है वे पवित्र जिनशासन में समाधि और बोधि रत्नत्रय को नहीं पाते हैं।

भावेण होइ णग्गो, मिच्छताई य दोस चउऊणं।

पच्छा दव्वेण मुणी, पयडदि लिंगं जिणाणए॥ (73)

मुनि पहले मिथ्यात्व आदि दोषों को छोड़कर भाव से अंतरंग से नग्न होता है और पीछे जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा से बाह्यलिंग-बाह्य वेष को प्रकट करता है।

भावो हि दिव्वसिवसुक्खभायणो भाववज्जिओ सवणो।

कम्ममलमलिणचित्तो, तिरियालयभायणो पावो॥ (74)

भाव इस जीव को स्वर्ग और मोक्ष के पात्र बनता है। जो मुनि भाव से रहित है वह कर्मरूपी मैल से मलिन चित्त तथा तिर्यच गति का पात्र तथा पापी है।

खयरामरणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला।

चक्रहररायलच्छी, लब्भइ बोही सुभावेण॥ (75)

उत्तम भाव के द्वारा विद्याधर, देव और मनुष्यों के हाथों के अंजुलि से स्तुत बहुत बड़ी चक्रवर्ती राजा की लक्ष्मी और रत्नत्रय संपत्ति प्राप्त होती है।

भावं तिविहपयार, सुहासुहं सुद्धमेव णायवं।

असुहं च अट्टरुद्धं, सुहधम्मं जिणवरिंदेहिं॥ (76)

भाव तीन प्रकार के जानना चाहिए-शुभ, अशुभ और शुद्ध। इनमें आर्त और रौद्र को अशुभ तथा धर्मध्यान को शुभ जानना चाहिए। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

सुद्धं, सुद्धासहावं, अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।

इदि जिणवरेहिं भणियं, जं सेयं, तं समायरह।। (77)

शुद्ध स्वभाव वाला आत्मा शुद्ध भाव है, वह आत्मा में ही लीन रहता है ऐसा जिन् भगवान् ने कहा है। इन तीन भावों में जो श्रेष्ठ हो उसका आचरण कर।

पयलियमाणकसाओ, पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।

पावइ तिहुयणसारं, बोही जिणसासणे जीवो।। (78)

जिसका मानकषाय पूर्ण रूप से नष्ट हो गया है तथा मिथ्यात्व और चारित्र मोह के नष्ट होने से जिनका चित्त इष्ट अनिष्ट विषयों में समरूप रहता है ऐसा जीव जिनशासन में त्रिलोक श्रेष्ठ रत्नत्रय को प्राप्त करता है।

विसयविरत्तो सवणो, छद्दसवरकारणाइं भाऊण

तित्थयरणामकम्मं, बंधइ, अइरेण कालेण।। (79)

विषयों से विरक्त रहने वाला साधु सोलहकारण भावनाओं का चिंतवन कर थोड़े ही समय में तीर्थंकर प्रकृति बंध करता है।

पूयादिसु वयसहियं, पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।

मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो धम्मो।। (83)

पूजा आदि शुभ क्रियाओं में ब्रत सहित जो प्रवृत्ति है तथा मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का जो भाव है वह धर्म है ऐसा जिनशासन में जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है।

सद्दहदि य पत्तेदि य, रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि।

पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं।। (84)

जो मुनि पुण्य का श्रद्धान करता है, प्रतीति करता है, उसे अच्छा समझता है और बार-बार उसे धारण करता है उसका यह सब कार्य भोग का ही कारण है, कर्मों के क्षय का कारण नहीं है।

अप्पा अप्पम्मि रओ, रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो।

संसारतरणहेट्ठु, धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्धिट्ठं।। (85)

रागादि समस्त दोषों से रहित होकर जो आत्मा आत्मस्वरूप में लीन होता है वह संसार समुद्र से पार होने का कारण धर्म है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

अह पुण अप्पा णिच्छदि, पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं।

तह वि ण पावदि सिद्धिं, संसारत्थो पुणो भणिदो।। (86)

जो मनुष्य आत्मा की इच्छा नहीं करता-आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं करता वह भले ही समस्त पुण्यक्रियाओं को करता है तो भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता है। वह संसारी ही कहा गया है।

एएण कारणेण य, तं अप्पा सद्देहि ति विहेण।

जेण य लभेइ मोक्खं, तं जाणिज्जह पयत्तेण।। (87)

इस कारण तुम मन वचन काय से उस आत्मा का श्रद्धान करो और यत्नपूर्वक उसे जानो जिससे कि मोक्ष प्राप्त कर सको।

मच्छो वि सालिसिक्खो, असुद्धभावो गओ महाणरयं।

इय णाउं अप्पाणं, भावह जिणभावणं णिच्चं।। (88)

अशुद्ध भावों का धारक शालिसिक्ख नाम का मच्छ सातवें नरक गया ऐसा जानकर हे मुनि! तू निरंतर आत्मा में जिनदेव की भावना कर।

बाहिरसंगच्चाओ, गिरिसरिदरिक्कं दराइं आवासो।

सयलो णाणज्झयणो, णिरत्थओ भावरहियाणं।। (89)

भावरहित मुनियों का बाह्य परिग्रह का त्याग, पर्वत, नदी, गुफा, खोह आदि में निवास और ज्ञान के लिए शास्त्रों का अध्ययन यह सब व्यर्थ है।

भंजसु इंदियसेणं, भंजसु मणोमक्खंडं पयत्तेण।

सा जणरंजणकरणं बाहिरवयवेस तं कुणसु।। (90)

तू इंद्रियरूपी सेना को भंग कर और मनरूपी बंदर को प्रयत्नपूर्वक वश कर। हे बाह्यव्रत के वेष को धारण करनेवाले! तू लोगों को प्रसन्न करने वाले कार्य मत कर।

सव्ववरिओ वि भावहि, ण य पयत्थाईं सत्त तच्चाइं

जीवसमासाइं मुणी, चउदसगुणठाणणामाइं।। (97)

हे मुनि! यद्यपि तू सर्वविरत है तो भी नौ पदार्थ, सात तत्त्व चौदह जीवसमास और चौदह गुणस्थानों का चिंतन कर।

विणयं पंचपयारं, पालहि मणवयणकायजोएण।

अविणयणरा सुविहियं, तत्तो मुत्तिं ण पावन्ति।। (104)

हे मुनि! तू मन, वचन, कायरूप योग से पाँच प्रकार के विनय का पालन कर क्योंकि अविनयी मनुष्य तीर्थकर पद तथा मुक्ति को नहीं पाते हैं।

जं किंचि कयं दोसं, मणवयकाएहिं असुहभावेण।

तं गरहि गुरुसयासे, गारव मायं च मोत्तूण।। (106)

हे मुनि! शुभ अशुभ भाव से मन, वचन, काय के द्वारा जो कुछ भी दोष तूने किया हो, गर्व और माया छोड़कर गुरु के समीप उसकी निंदा कर।

दुज्जणवयणचउक्कं णिदुरकडुयं सहन्ति सप्पुरिसा।

कम्ममलणासणदुं, भावेण य णिम्मया सवण।। (107)

सज्जन तथा ममता से रहित मुनीश्वर कर्मरूपी मल का नाश करने के लिए अत्यंत कठोर और कटुक दुर्जन मनुष्यों के वचन रूपी चेष्टा को अच्छे भावों से सहन करते हैं।

पावं खवइ असेसं, खमाय परिमंडिओ य मुणिपवरो।

खेयरअमरणराणं, पंससणीओ धुवं होई।। (108)

क्षमा गुण से सुशोभित श्रेष्ठ मुनि समस्त पापों को नष्ट करता है तथा विद्याधर, देव और मनुष्यों के द्वारा निरंतर प्रशंसनीय रहता है।

इय णारुण खमागुण, खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं।

चिरसंचियकोहसिहिं, वरखमसलिलेण सिंचेह।। (109)

हे क्षमागुण के धारक मुनि! ऐसा जानकर मन वचन काय से समस्त जीवों को क्षमा कर और चिरकाल से संचित क्रोधरूपी अग्नि को उत्कृष्ट क्षमा रूपी जल से सींच।

श्रमणाभास का स्वरूप

ण हवदि समणो त्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि।

जदि सहहदि ण अत्थे आदापधाणे जिणक्खादे।। (264) प्र.सा.

It is Opined that one does not become a Sharmana, though

endouled with moral discipline, austerities and scriptural study, if he has no faith in the realities, the foremost of which is the soul, as preached by jinas.

आगे श्रमणाभास कैसा होता है इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य कहते हैं:

(संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि) संयम, तप तथा शास्त्रज्ञान सहित होने पर भी (जदि) जो कोई (जिणक्खादे) जिनेन्द्र द्वारा कहे गये। (आदापधाणे अत्थे) आत्मा को मुख्य करके पदार्थों को (ण सद्दहदि) नहीं श्रद्धान करता है (समणोत्तिणहवदि मदो) वह साधु नहीं हो सकता है, ऐसा माना गया है। यदि साधु, संयम भी पालता हो, तप भी करते हो, शास्त्रज्ञान सहित भी हो परन्तु तीन मूढता आदि सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों से रहित होकर वीतराग सर्वज्ञ द्वारा प्रकाशित तथा दिव्य ध्वनि अनुसार गणधर द्वारा ग्रंथों में गुम्फित निर्दोष परमात्मा आदि पदार्थ समूह का श्रद्धान नहीं करता, रुचि नहीं रखता, मान्यता नहीं देता, वह श्रमण नहीं है अर्थात् मिथ्यादृष्टि है।

समीक्षा: श्रमणाभास का अर्थ है श्रमण+आभास=श्रमणाभास अर्थात् जो श्रमण के जैसे दिखायी देता है परन्तु यथार्थ से श्रमण नहीं है जैसे मृगमरीचिका दूर से जल जैसी दिखाई देती है परन्तु जल नहीं है जलाभास है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र से युक्त ऐसे छठे गुणस्थानवर्ती से लेकर आगे के जीव श्रमण है। छठे गुणस्थान से नीचे अर्थात् पंचम गुणस्थान से लेकर प्रथम गुणस्थान तक बाह्य वेष को धारण करने वाला जीव श्रमणाभास है परन्तु यहाँ पर आचार्य श्री ने जिस श्रमणाभास को कहा है वह प्रथम गुणस्थानवर्ती श्रमणाभास के लिये कहा और वही सबसे निकृष्ट श्रमणाभास है क्योंकि वहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र तीनों का अभाव है ऐसे जीव भले बाह्य में निर्ग्रन्थ हो या संयम, तप से युक्त हो तथापि वह श्रमणाभास ही है।

कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

परमट्टम्मि य अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारयदि।

तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू। (159) समयसार

जो कोई ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्थित नहीं हो रहा है और तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है तो उसके व्रत और तप को सर्वज्ञ देव 'अज्ञानतप' और

अज्ञान व्रत कहते हैं।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।

परमट्टबाहिरा जेण तेण होंति अण्णाणी॥ (160)

यद्यपि जो व्रत और नियमों को धारण करते हैं, तथा तप भी करते हैं परन्तु परमात्म स्वरूप के ज्ञान से रहित हैं इसलिए वे सब अज्ञानी हैं।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता जिसमें तीन गुणियों का पालन हुआ करता है ऐसी परम-समाधि ही है लक्षण जिसका उस भेद ज्ञान से दूरवर्ती है, वे व्रत और नियमों को धारण करते हुए और तपश्चरण करते हुए भी मुक्ति को प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि **परमट्ट बाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी** पूर्वोक्त भेदज्ञान के न होने से वे परमार्थ से दूर रहने वाले होते हैं इसलिए अज्ञानी होते हैं। फलतः अज्ञानियों को मोक्ष कैसे हो सकता है? हाँ, जो परमसमाधि स्वरूप भेदज्ञान से युक्त हैं, वे व्रत नियम और शीलियों को बिना धारण किये भी बाह्य-द्रव्य रूप तपश्चरण को न करते हुए भी मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं क्योंकि वे पूर्वोक्त भेदज्ञान रूप परमार्थ से युक्त होते हैं, इसलिए वे ही ज्ञानी भी होते हैं और जब ज्ञानी होते हैं तो ज्ञानियों को मोक्ष होना ही चाहिए।

संयमी कौन?

उपसम तव भाव जुदो णाणी सो भाव संजुदो होइ।

णाणी कषायवसगो असंजदो होइ सो ताव॥ (71) रयण.

अन्वयार्थः-(उपसम तव भाव जुदो) उपशम तप भाव युक्त (सो) वह (णाणी) ज्ञानी (भाव संजुदो होइ) संयम भाव संयुक्त होता है (णाणी) ज्ञानी (कषाय वसगो) कषाय वश होकर रहता है (तावत्) तब तक (सो) वह (अंसजदो) असंयमी (होइ) होता है।

पद्य- उपशम तप भाव युक्त ज्ञानी होता है भाव संयम युक्त।

ज्ञानी तो कषायवश होता है असंयम तब तक॥

समीक्षा-भाव संयमी मुनि वे होते जो उपशम तप भाव युक्त।

ज्ञानी भी जब होते असंयमी जब तक होते कषाय युक्त॥

इससे महान् शिक्षा मिलती भाव संयमी हेतु बनना उपशमी।
ज्ञान के साथ कषाय रहित होने से बनेंगे श्रेष्ठ संयमी॥

मोहात्मक प्रेम त्याग से व शुभ प्रेम से आध्यात्म प्रेम की प्राप्ति

(चाल:-आत्मशक्ति...,तुम दिल की...)

भोगोपभोग व काम भोग में, आसक्त होना ही नहीं सच्चा-प्रेम।
हर जीव प्रति मैत्री भावना, होता है सच्चा-आदर्श-प्रेम॥ (स्थायी)
भोगोपभोग व काम भोग में, आसक्त होना है मोह-कर्म।
इसी से तो अनेक अनर्थ होते, तथाहि बंधता है पाप कर्म॥
आसक्ति पूर्वक प्रेम के कारण, होते हैं फैशन-व्यसन।
इसी हेतु परिग्रह भी होता, होते हैं रोगी तन व मन॥ (1)
इसी से परे निःस्वार्थ भाव से, होता है जो आदर्श-प्रेम।
वह ही विश्व मैत्री विश्व कल्याण की, भावना होता है शुभप्रेम॥
दान-दया-सेवा व परोपकार, ये सब ही है आदर्श प्रेम/(शुभ प्रेम/धर्म प्रेम)।
तीर्थकर नामकर्म का भी बंधन, होता ऐसा यह विश्व प्रेम॥ (2)
आत्मविशुद्धि व आत्म कल्याण, आत्मसुधार ही है आध्यात्म-प्रेम।
इसी से ही आत्मविकास होता, जिससे मिलता है परिनिर्वाण॥
आदर्श-प्रेम से मोह-प्रेम त्यागो, पाओ है! आध्यात्मिक प्रेम।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' त्याग किया है मोहात्मक प्रेम॥ (3)

अशुभाच्छुभमयाताः शुद्धः स्यादयमागमात्।

खेरप्राप्तसंध्यस्य तमसो न समुद्गमः॥ (122) आत्मानु.

भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ रूप संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कर्ममल से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। ठीक है सूर्य जब तक संध्या (प्रभात काल) को नहीं प्राप्त होता है तब तक वह अधंकार को नाश नहीं करता है।

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबन्धनः।

संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः॥ (123)

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप और शास्त्र विषयक अनुराग होता है वह सूर्य की प्रभात की लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

विहाय व्याप्तमालोक पुरस्कृत्य पुनस्तमः।

रविवद्रागमागच्छन्यातालतलमृच्छति॥ (124)

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोड़कर और अंधकार को आगे करके जब राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है/अस्त हो जाता है, उसी प्रकार जो प्राप्त वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञान रूप प्रकाश को छोड़कर अज्ञान को स्वीकार करता हुआ राग (विषयवांछा) को प्राप्त होता है वह पाताल तल को अर्थात् नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है।

एकमेव परमशरण

सगरूव सहजसिद्धो विहावगुणमुक्कम्मवावारो।

अण्णो ण मज्झं सरणं सरणं सो एग परमप्पा॥ (41) (कल्याण.)

पद्य- स्व-स्वरूप से सहज सिद्ध विभावगुण मुक्त कर्म व्यापार से।
वह परमात्मा ही मम एकमेव शरण अन्य न कोई मम शरण॥

एकमेव परमशरण

सुण्णो णेय असुण्णो णोकम्मो कम्मवज्जिओ णाणं।

अण्णो ण मज्झं सरणं सरणं सो एग परमप्पा॥ (42) (कल्याण.)

पद्य- कर्म नोकर्म रहित से शून्य ज्ञान से सहित होने से पूर्ण।
वह परमात्मा ही मम एकमेव शरण अन्य न कोई मम शरण॥

एकमेव परमशरण

णाणाउज्जोण भिण्णो वियप्पभिण्णो सहावसुखमओ।

अण्णो ण मज्झं सरणं सरणं सो एग परमप्पा॥ (43) (कल्याणा.)

पद्य- ज्ञान से न भिन्न विकल्प से भिन्न स्वभाव सुखमय।
वह परमात्मा ही मम एकमेव शरण अन्य न कोई मम शरण॥

एकमेव परमशरण

अच्छिण्णोवच्छिण्णो पमेय रुवत्तमगुरुलहू चेव।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एग परमप्पा।। (44) (कल्याणा.)

पद्य- अच्छिन्न व अविच्छिन्न प्रमेयरूप व अगुरुलघुत्व आदि।

वह परमात्मा ही मम एकमेव शरण अन्य न कोई मम शरण।।

एकमेव परमशरण

सुहअसुहभावविगहो सुद्धसहावेण तम्मयं पत्तो।

अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एग परमप्पा।। (45) (कल्याणा.)

पद्य- शुभ-अशुभ भाव रहित शुद्ध-स्वभाव से तन्मय प्राप्त।

वह परमात्मा ही मम एकमेव शरण अन्य न कोई मम शरण।।

जब आत्मा शब्द का अर्थ कहते हैं। 'अतः' निरंतर गमन करते रूप अर्थ में वर्तता है और सब गमनरूप अर्थ के धारक धातु ज्ञान अर्थ के धारक है। इस वचन से यहाँ पर गमन शब्द करके ज्ञान कहा जाता है। इस कारण जो यथासंभव ज्ञान, सुख आदि गुणों में पूर्णरूप से वर्तता है वह आत्मा है अथवा शुभ-अशुभ रूप जो मन वचन, काय के व्यापार है उन करके यथा सम्भव तीव्र मन्द आदि रूप से जो पूर्ण रूप से वर्तता है वह आत्मा कहलाता है। अथवा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीनों करके जो पूर्ण रूप से वर्तता है उसको आत्मा कहते हैं।

'सोऽहं' से 'अऽहं' बनने की साधना

(सोऽहं की दृढ़ भावना का फल आत्मा में स्थिरता व आत्मलाभ)

सोहमित्यात्त संस्कार स्तस्मिन् भावनया पुनः।

तत्रैव दृढ़ संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्।। (28)

पद्य भावानुवाद-

जो परमात्मा वे ही 'मैं' हूँ, ऐसी दृढ़ भावना करने से।

आत्मा में स्थिरता आती है, दृढ़ संस्कार के वश से।। (1)

समीक्षा-

- जो परमात्मा वे ही 'मैं' हूँ, शुद्ध रूप से 'मैं' परमात्मा।
ऐसे दृढ़ संस्कार के कारण, स्व-आत्मस्वरूप में आती स्थिरता।। (2)
श्रद्धा-प्रज्ञा से जब जानता अन्तरात्मा 'मैं' भी बनूँगा परमात्मा।
पर्याय रूप में अभी 'मैं' अन्तरात्मा साधना से बनूँगा परमात्मा।। (3)
ऐसी भावना व साधना से जब अन्तरात्मा स्व में करता दृढ़ संस्कार।
जिससे वह स्वयं में ही लीन (स्थिर) होकर, नाश करता है कर्म संस्कार।। (4)
घाती कर्म के नाश से बनते अरिहंत अघाती नाश से बनते सिद्ध।
जिससे वह स्वयं से 'अहं' (मैं) बनते, ऐसा है 'सोऽहं' ध्यान का फल।। (5)
यथा जल ही शीतल होकर, बन जाता स्थिर-ठोस बर्फ।
यथा ईन्धन ही ताप व प्राणवायु पाकर बन जाती स्वयं ही अनल।। (6)
भावना से भावी निर्माण होता, परमात्मा ध्यान से तथा परमात्मा।
साधना से सिद्धि की प्राप्ति होती, अन्तरात्मा ही बनते परमात्मा।। (7)

आत्म-संवित्तिवान का लक्षण

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।

स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति।। (41) इष्टो.

He who has firmly established himself in the knowledge of the self, such a one does not speak while speaking, does not move while moving and does not see while seeing!

“आत्मज्ञानात्परं कार्यं, न बुद्धो धारयेच्चिपरम्।

कुर्यादर्थवशात्किं चिद्वाग्कायाभ्यामतत्परः।।” (50)

तथा भोजनार्थव्रजन्नपि न व्रजत्यपि तथा

सिद्धप्रतिमादिकावलोकयन्नपि नावलोकयत्येव तुरेवार्थः।।

आगे श्रमणाभास कैसा होता है इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य कहते हैं:

स्व पर आवश्यक करणीय भोजनादि यत्किञ्चित् श्रावक से साधु प्राप्त करता है उससे भी वह खेद को प्राप्त होता है। आवश्यकतानुसार श्रावक को कुछ कहकर मुनि उसे तत्क्षण भूल जाता है। श्रावक मुनि को कुछ पूछने पर कुछ नहीं है ऐसे

कहकर उससे भी विरक्त हो जाते हैं। यथा-जिस योगी ने स्वस्वरूप में स्वयं के चित्त को स्थिर कर लिया है ऐसा योगी संस्कार वशात् दूसरों के अनुरोध से धर्मादि सम्बन्धी कुछ उपदेश करते हैं तथापि उपदेश के बाद पुनः वे स्व स्वरूप में आ जाते हैं क्योंकि उपदेश करना उनकी मुख्यता नहीं है। समाधि तन्त्र में ग्रन्थ कर्ता ने कहा भी है-

आत्माकाँक्षी योगियों को आत्म ध्यान से भिन्न किसी भी कार्य को चिरकाल तक धारण नहीं करना चाहिये। किसी कारण वशात् वचन और काय से कार्य करना पड़े तो उसमें आसक्त न होवे।

इसी प्रकार साधु शरीर को धारण के लिये भोजन करते हैं और उसके लिये गमन करने पर भी उस में आसक्त न होने के कारण गमन गमन के लिये नहीं होता है। इसी प्रकार सिद्ध प्रतिमा आदि के दर्शन करते हैं तथापि उनका दर्शन अवलोकन नहीं है।

समीक्षा-यह प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक सिद्ध सिद्धान्त है कि जब किसी व्यक्ति का चित्त एक विषय में स्थिर हो जाता है तब उसके आस-पास जो घटनाएँ घटती हैं उसे न वह देख पाता है न सुन पाता है भले उसकी आँखे कान खुले रहते हैं। सामान्य व्यक्तियों को जो ज्ञान होता है उसके लिए लब्धि, उपयोग एवं उपकरण चाहिये। जब कोई एक व्यक्ति एक वस्तु को देखता है तब वह अपनी लब्धि को उपकरण के माध्यम से उस वस्तु में अपना उपयोग लगाता है। उस समय उपयोग क्षेत्र से बाह्य क्षेत्र में जो वस्तु है उसे वह नहीं देख सकता है।

कदाचित् कोई वस्तु उसकी दृष्टि क्षेत्र के मध्य में आ जावे तो भी अच्छा पूर्ण ज्ञान उसको नहीं होगा। इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जान लेना चाहिये। अर्थात् जो स्व आत्मा में रूचि लेता है, लीन होता है उसे अन्य वस्तु का ज्ञान, भान नहीं होता है।

भक्ति एवं योग से प्राप्त अपरा एवं परा सिद्धियाँ

-शिवचरण शर्मा

जीवन में उच्चकोटि का ज्ञान-विज्ञान एवं दिव्य शक्तियों की ऋद्धि सिद्धियाँ सबको अभीष्ट है। ऋद्धि का अर्थ ऐश्वर्य सम्पन्न विभूतियाँ होती है। ऋद्धि-सिद्धि का व्यापक

अर्थ ऐश्वर्य सम्पन्न विभूतियों की सिद्धियों से हैं जो आध्यात्म-भक्ति एवं योग से प्राप्त की जा सकती है।

अष्ट ऋद्धि-सिद्धियाँ तो भातरीय वाङ्मय में प्रसिद्ध हैं ही परन्तु यदि ये अष्ट-सिद्धियाँ अहंकार आदि विकारों को जन्म देती है और साधक अपने अहं की तुष्टि में इन ऋद्धि-सिद्धियों का चमत्कार रूप में प्रदर्शन करता है तो ये सिद्धियाँ मुक्ति-पथ में विघ्न डालती है एवं पतन का कारण बनती हैं तथा इन सिद्धियों की शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः सिद्धि प्राप्त साधक को इनका प्रयोग यदि आवश्यक हो तो यथासम्भव परोपकार के लिए किया जाना चाहिए। जीव मात्र के कल्याण के लिए करना चाहिए।

शरीर, इन्द्रियों, चित्त तथा बुद्धि में विलक्षण परिणाम उत्पन्न होने तथा मानव प्रकृति में विलक्षण परिवर्तन होने को ऋद्धि-सिद्धि कहते हैं। सिद्ध पुरुषों के पाँच प्रकार के भेद होते हैं-

1. **जन्मजा सिद्धि**-कुछ जीवों की सिद्धियों का कारण उनके जन्म संस्कार होते हैं। पूर्व जन्म के कर्म-पुण्यों के प्रभाव से कोई प्राणी जन्मजात सिद्धि प्राप्त होता है।

2. **औषधिजा सिद्धि**-रसायनिक प्रयोग से भी शरीर में विलक्षण परिणाम उत्पन्न हो जाने के कारण औषधिजा सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

3. **मन्त्रजा सिद्धि**-मंत्रों द्वारा इष्ट देवता की सिद्धि प्राप्त की जाती है।

4. **तपोजा सिद्धि**-तप के द्वारा शरीर, इन्द्रियों एवं अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है तथा इससे शरीर, इन्द्रिय एवं अन्तःकरण की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

5. **समाधिजा सिद्धि**-योगाभ्यास द्वारा अष्टयोग के माध्यम से समाधिष्ट होकर सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।

मूल रूप से भक्ति एवं योग द्वारा प्राप्त सिद्धियाँ दो प्रकार की होती हैं-

1. **अपरा सिद्धियाँ**-अपरा सिद्धियाँ भौतिक सामर्थ्य को प्राप्त करने वाली सिद्धियाँ होती है। इनसे भौतिक ऐश्वर्य का सुख प्राप्त किया जा सकता है। सुख के बाद दुःख का आगमन होता है। यदि अपरा सिद्धियाँ अहंकार आदि विकारों को जन्म देती है तो उनकी शक्ति एवं प्रभाव स्वयं नष्ट हो जाता है। अतः अपरा सिद्धियों का प्रयोग मानव कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। अपरा सिद्धियाँ प्राप्त होने पर धन-जन सम्पत्ति हुए भी मन को शांति नहीं मिलती। क्षणिक सुख के बाद दुःख ही मिलता है।

आत्मशान्ति देने वाला आनंद तो परा सिद्धियों में ही मिलता है जो आध्यात्मिक वैभव की अनुभूति कराता है। विषय संबंधी सब प्रकार की उत्तम, मध्यम और अधम सिद्धियाँ अपरा सिद्धियाँ कहलाती हैं।

2. परा सिद्धियाँ—मुक्ति प्रदायनी एवं आनन्ददायिनी परा सिद्धि की प्राप्ति जो असम्प्रज्ञात एवं निर्बीज समाधि का फल है। परा सिद्धियाँ शरीर के आनन्दमय कोष में पल्लवित एवं विकसित होती हैं। इसमें अलौकिक आनन्द या शान्तानन्द की स्थिति प्राप्त होती है। यह गुणातीत स्थिति है। इसमें षड् विकार (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह तथा मत्सर) नष्ट हो जाते हैं एवं अपवर्ग पनपता है अर्थात्-पाप, फलाशक्ति, वैर, भय एवं मृत्यु से मुक्ति मिल जाती है। योगी विवेक जनित वैराग्य के कारण कर्म दोषों में बीज-नाश हो जाने पर तुरिया अवस्था में 'कैवल्य' की प्राप्ति कर लेता है, यह सिद्धि ही परा सिद्धि कहलाती है।

अणिमादि अष्ट ऋद्धि सिद्धियाँ—भक्ति एवं योग साधना से प्राप्त अष्ट-ऋद्धि-सिद्धियाँ निम्न प्रकार की हैं-

1. अणिमा—इसमें प्राणी भक्ति और योग साधना के प्रभाव से अणु के समान सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है।

2. लघिमा—इसमें प्राणी अपने योग तप और भक्ति के प्रभाव से अपने शरीर को हलका बना लेता है। आकाश में उड़ने लगता है।

3. महिमा—इसमें प्राणी को अपने शरीर को विशाल बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

4. प्राप्ति—इसमें प्राणी भक्ति और तप शक्ति के माध्यम से संसार के किसी भी भौतिक पदार्थ को प्राप्त कर सकता है।

5. प्राकाम्य—इसमें साधक अपने किसी भी मनोरथ एवं कामनाओं की पूर्ति कर सकता है।

6. ईशत्व—इसमें साधक शिवत्व भाव से भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय करने में समर्थ बन जाता है। वह ईशत्व गुण प्राप्त कर लेता है।

7. वशित्व—साधक को संसार में किसी भी प्राणी को वश में करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

8. कामावसायित्व-काम+असायित्व का अर्थ काम की समाप्ति अर्थात् वैराग्य सिद्धि। यह सिद्धि परा-सिद्धि की सर्वोच्च सिद्धि जिससे भव बन्धन से मुक्त वैराग्य भाव की प्राप्ति हो जाती है।

नव-निधियाँ-धन के देवता कुबेर की नौ निधियाँ या नौ खजाने भारतीय वाड मय में बताए गए हैं-1.महापदम 2.पदम 3.शंख 4.मकर 5.कच्छप 6.मुकुन्द 7.कुन्द 8.नील 9.खर्व। कुबेर की नौ निधियाँ भी भक्ति एवं साधना के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

योग-साधना से प्राप्त उनतीस ऋद्धि-सिद्धियाँ-अणिमादि सिद्धियों के अतिरिक्त महर्षि पतञ्जलि ने अपने अष्ट-योग-दर्शन में निम्नांकित अपरा एवं परा ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन किया है जिनकी संख्या उनतीस हैं। दिव्य ऐश्वरीय रूपी अपरा सिद्धियाँ तो सम्प्रज्ञात समाधि से प्राप्त की जा सकती हैं। परन्तु परा ऋद्धि सिद्धियाँ असम्प्रज्ञात समाधि से प्राप्त होती हैं क्योंकि मोक्ष रूपी परम सिद्धि की प्राप्ति निर्बीज समाधि का फल है।

1.अन्तःकरण-शुद्धि-सिद्धि-चित्त निरोध से अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

2.वाणी-सिद्धि-शब्द और अर्थ के ज्ञान के मेल से शुद्ध-वाणी-सिद्धि प्राप्त होती है।

3.पूर्व-जन्म-ज्ञान-सिद्धि-संस्कारों के संयम से पूर्व जन्मों का ज्ञान प्राप्त होता है।

4.पर-अन्तःकरण ज्ञान-सिद्धि-ज्ञानी के ज्ञान की समीक्षा से उसके अन्तःकरण की पूर्ण जानकारी मिल जाती है।

5. अदृश्य-शक्ति-सिद्धि-रूप विषय संयम से योगी अदृश्य शक्ति प्राप्त कर लेता है। योगी सबकी दृष्टि से ओझल हो जाता है।

6.मृत्यु-ज्ञान-सिद्धि-कर्मों के संयम से योगी मृत्यु का ज्ञान-प्राप्त कर लेता है।

7.आत्मबल-सिद्धि-मैत्री, मुदिता, करुणा एवं उपेक्षा के संयम से आत्मबल की सिद्धि प्राप्त होती है।

8.तन-बल, मन-बल सिद्धि-तन-मन-बल में संयम करने से तन-मन-बल की सिद्धि होती है।

9. गुप्त-पदार्थ-ज्ञान-सिद्धि-प्रकृति के प्रकाश बिन्दु ध्यान अवस्था में संयम से

सूक्ष्म दूरस्थ एवं गुप्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है।

10. सूक्ष्म-लोक-ज्ञान-सिद्धि-सूर्य नारायण में संयम करने से स्थूल एवं सूक्ष्मलोक का ज्ञान हो जाता है।

11. नक्षत्र-ज्ञान सिद्धि-चन्द्रमा के ध्यान में संयम करने से नक्षत्र-समूह का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

12. तारागण गति-ज्ञान-सिद्धि-ध्रुव में संयम करने से तारों की गति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

13. शरीर समुदाय ज्ञान सिद्धि-नाभीचक्र के संयम से योगी को शरीर के तीन दोषो (वात, पित, कफ) एवं सात धातुओं (चर्म, रुधिर, माँस, नख, हाड, चर्बी और वीर्य) का ज्ञान हो जाता है।

14. भूख-प्यास-निवृत्ति-सिद्धि-कण्ठकूप संयम से भूख और प्यास की निवृत्ति हो जाती है। कण्ठकूप शरीर में पाँचवा चक्र है।

15. मन-स्थिर-सिद्धि-कूर्म-नाड़ी के संयम से मन की चंचलता समाप्त हो जाती है तथा मन स्थिर हो जाता है। कण्ठ-कूप में कच्छप आकृति की कूर्म नाड़ी होती है।

16. सिद्ध-योगी-दर्शन-सिद्धि-कपाल ज्योति संयम से सिद्ध योगी दर्शन सिद्धि प्राप्त होती है। मस्तिष्क के भीतर कपाल के नीचे एक छिद्र होता है जिसे ब्रह्मरन्द्र कहते हैं। ब्रह्मरन्द्र में मन ले जाने से ज्योति प्रकट होती है। उस प्रकाश में संयम करने से सिद्ध योगियों के दर्शन होते हैं।

17. सम्पूर्ण-ज्ञान-सिद्धि-प्रतिभ (तेजोमय तारा) में संयम करने से योगी को सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति होती है। योगी को ध्यानावस्था में तेजोमय तारा दिखाई देता है, उसके दिख जाने से ज्ञान सम्राज्य की सब सिद्धियाँ योगी को प्राप्त हो जाती है।

18. चित्त शान्त सिद्धि-हृदय में संयम करने से योगी का चित्त शान्त हो जाता है। चतुर्थ चक्र का नाम हृत्कमल है। उसका अन्तःकरण से सीधा सम्बन्ध है। योगी जब अपने हृत्कमल चक्र पर ध्यान लगाता है तब वह अपने चित्त का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

19. शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सिद्धि-बुद्धि के शुद्ध भाव एवं अहंकार शून्यता के

संयम से शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव (आत्मज्ञान) प्राप्त होता है। इस आत्म-ज्ञान की परासिद्धि प्राप्त करने से षड्सिद्धियों की प्राप्ति होती है:-

1. प्रातिभ-सिद्धि-सम्पूर्ण जगत् के अतीत, अनागत सूक्ष्म पदार्थों का ज्ञान हो जाता है।

2. श्रावण सिद्धि-दिव्य श्रमण ज्ञान की प्राप्ति, प्रणव ध्वनि एवं अणहृद् नाद का ज्ञान।

3. वेदना सिद्धि-दिव्य स्पर्श से वेदना मुक्ति तथा शक्तिपात।

4. आदर्श सिद्धि-दिव्य योगी दर्शन सिद्धि।

5. आस्वादसिद्धि-दिव्य रस ज्ञान सिद्धि।

6. दिव्य-गंध-सिद्धि-दिव्य नासिका से गंध का ज्ञान हो जाता है।

20. पर-काया-प्रवेश-सिद्धि-समाधि अवस्था में सूक्ष्म शरीर का यह बन्धन शीथिल हो जाता है। समाधि अवस्था में चित्त की गमनागमन नाड़ी ज्ञान से सूक्ष्म शरीर को दूसरे स्थूल मृत शरीर में प्रवेश करना तथा पुनः अपने स्थूल शरीर में प्रवेश करना। यह गमनागमन योग प्रक्रिया असम्प्रज्ञात समाधि में ही सम्भव है।

21. इच्छा-मृत्यु-सिद्धि-उदान वायु संयम से प्राणमय कोष रहित सूक्ष्म शरीर का आधिपत्य स्थापित हो जाता है। उदान वायु कण्ठ से सिर तक व्याप्त होती है। इसके संयम से वायु का ऊर्ध्वकारी गमन होता है। स्नायु-तन्त्र मजबूत होता है। मस्तिष्क क्रिया ठीक रहती है। योगी इच्छानुसार प्राणोत्क्रमण रूप से इच्छा मृत्यु प्राप्त कर सकता है।

22. साम्यवस्था-सिद्धि-समान वायु को वश में करने से शरीर साम्यवस्था में ज्योतिर्मय हो जाता है। समान वायु नाभि के चारों ओर दूर तक साम्यावस्था में रहती है। तेजोमयी काया बन जाती है।

23. श्रवण-सिद्धि-योगी जब कर्णेन्द्रिय एवं आकाश के बीच संयम करता है तो दूरवृत्ति दिव्य शब्दों का श्रवण करता है।

24. लघिमा-सिद्धि-योगी अपने शरीर एवं आकाश में संयम करता है तो वह अपने शरीर का लघिमा (हलका) रूप धारण कर आकाश में उड़ने लगता है।

25. महाविदेह-सिद्धि-शरीर से युक्त मन की वृत्ति 'कल्पिता' कहलाती है

तथा शरीर से युक्त मन की वृत्ति 'अकल्पिता' कहलाती है। जब योगी मन की कल्पिता वृत्ति को छोड़कर मन की अकल्पिता वृत्ति अपनाता है तो मन की अकल्पिता वृत्ति अर्थात् 'महाविदेह वृत्ति' में प्रकाशवान बुद्धि का विकास होता है। योगी अभिमान से उत्पन्न पंच क्लेष कर्म और उनके फलों से मुक्त हो जाता है।

26. पंचभूत सिद्धि-पाँच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी) पर संयम करने से योगी पंचभूत पर विजय प्राप्त करता है। पंच भूतों की अवस्थाएँ होती हैं-

1. स्थूलावस्था-पाँच तत्वों (आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी) की मूलावस्था कान, त्वचा, नेत्र, जीभ, नाक आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं।

2. स्वरूपावस्था-स्वरूपवस्था में पाँच तत्व के स्थूल रूप में गुण रूप अदृश्यमान रहते हैं जैसे आकाश की शून्यता, वायु की गति, अग्नि की उष्णता, जल की शीतलता एवं पृथ्वी का आकार। यह पंचतत्वों की धर्मावस्था कहलाती है।

3. सूक्ष्मावस्था-पंच भूत की पाँच सूक्ष्म अवस्थाएँ अर्थात् तन्मात्राएँ या विषय होते हैं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। यह पंच-तत्व की कारणावस्था कहलाती है।

4. अन्वयावस्था-सभी पंचभूतों के तीन गुण होते हैं सत्, रज और तम। यह पंचतत्व की गुणावत्ता कहलाती है।

5. अर्थवत्त्वावस्था-पंच तत्वों की यह अवस्था फल-दायनी होती है। इसीलिए इस अवस्था को प्रयोजनावस्था भी कहते हैं।

जब योगी पंच तत्वों की उपर्युक्त पाँचो अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है तो प्रकृति माँ उस योगी की सेवा में तत्पर रहती है। महाभूतों का प्रयोजन पुरुष के भोग (काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मत्सर) तथा योग (अपवर्ग-पाप, फलासक्ति, वैर, भय, मृत्यु की समाप्ति) दोनों के लिए है। पुरुष तनोन्मुखी भोग को भी अपना सकता है तथा ऊर्ध्वगामी मोक्ष को ले जाने वाला योगी का मार्ग भी अपना सकता है।

27. इन्द्रिय-विजय-सिद्धि-इन्द्रियों की पाँच वृत्तियों पर संयम करने से इन्द्रियों पर विजय सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। इन्द्रियों की पाँच वृत्तियाँ होती हैं:-

1. गृहणावस्था-इन्द्रियों की ग्रहण अवस्था उनके बाह्य (विषयावस्था) विषय (तन्मात्राएँ) आती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पाँच विषय ही इन्द्रियों की गृहणावस्था है क्योंकि इन विषयों को ही इन्द्रियाँ प्रथम रूप से ग्रहण करती है।

2. **स्वरूपावस्था**-इन्द्रियों द्वारा गृहीत विषय जब मन में आते हैं (मन-अवस्था) तो इस अवस्था में अहं पनपता है।

3. **अस्मिता अवस्था**-अहंकार मिश्रित भाव ही अस्मिता वृत्ति कहलाती है।

4. **अन्वयावस्था**-जब मन वृत्ति के विचार बुद्धि द्वारा सत्य असत्य की कसौटी पर निर्णय करते हैं तब वह अन्वयावस्था या बुद्धि अवस्था कहलाती है।

5. **अर्थवत्त्वावस्था या प्रयोजनावस्था**-इस अवस्था में योगी अपने उपर्युक्त चार अवस्थाओं पर विजय प्राप्त कर इन्द्रिय शमन या मार्ग रूपान्तरण की योग सिद्धि की ओर बढ़ जाता है तो उसे तीन सिद्धि प्राप्त होती है:-

1. **मनोजवित्त्व-सिद्धि**-इसमें मन गति के साथ शरीर की उत्तम गति प्राप्त होती है।

2. **विकरण-भाव-सिद्धि**-शरीर के बिना ही चक्षु आदि इन्द्रियों से गति प्राप्त करने का नाम ही विकरण-भाव-सिद्धि कहलाती है।

3. **प्रधान-जय-सिद्धि**-इस सिद्धि के द्वारा प्रकृति के विकारों के मूल कारणों पर विजय प्राप्त की जाती है।

28. **सर्वज्ञता/सर्वभाव-अधिष्ठाता-सिद्धि**-जब योगी बुद्धि रूप दृश्य एवं पुरुष रूप दृष्टा के तात्त्विक भेद समझने लगता है तो वह सर्वभाव अधिष्ठाता/सर्वज्ञता सिद्धि प्राप्त करता है।

29. **त्रिकाल-दृष्टि-सिद्धि**-योगी अपनी योग बुद्धि से क्षण और क्रम में संयम करके त्रिकाल दृष्टि वाला बन जाता है। वह भूत, वर्तमान एवं भविष्य का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म काल खण्ड को क्षण कहते हैं तथा परमाणुओं की गति के रूप को क्रम कहते हैं।

स्वयं का कर्ता भोक्ता मैं स्वयं

(चाल:-1.किसी ने अपना बनाके... 2.क्या मिलिए... 3.भातुकली)

-आचार्य कनकनन्दी

स्वयं का कर्ता भोक्ता स्वयं का, अशुभ शुभ शुद्ध भाव का।

अन्य का कर्ता भोक्ता मैं नहीं, हर द्रव्य की ऐसी ही व्यवस्था।। (1)

उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त सत् गुणपर्ययवद होते हैं द्रव्य।

भले बाह्य निमित्त (भी) होते विभिन्न, किन्तु द्रव्यों में होता परिणमन।। (2)

एक द्रव्य अन्य द्रव्य न होता, द्रव्यत्व गुण से गुणों में परिवर्तन होता।
 अगुरु लघु गुण के कारण से भी, द्रव्य-गुण अन्य द्रव्य गुण न होता।। (3)
 यह है शाश्वतिक वस्तु स्वभाव, अकृत्रिम शाश्वत सत्य सिद्धान्त।
 अतएव मैं ही मेरे रूप प्रवर्तू, पर रूप में कभी न प्रवर्त सकूँ।। (4)
 इस सिद्धान्त के अनुसार ही, अनादि काल से किया था अशुभ।
 रागद्वेषकामक्रोधादि अशुभ किया, उन का फल भी दुःख ही भोग।। (5)
 आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र हुआ, रागद्वेषादि को हीन मैं किया।
 मैत्रीप्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाया, उत्तमक्षमादि धर्म को धरा।। (6)
 इससे समता शान्ति मिल रही है, निस्पृहता वीतरागता बढ रही हैं।
 ध्यान अध्ययन व लेखन प्रवचन, शोध बोध में वृद्धि हो रही हैं।। (7)
 इस से परे भी मैं शुद्ध भाव करूँगा, आत्मविशुद्धि से मोक्ष पाऊँगा।
 अनन्त ज्ञानदर्शनसुखवीर्य पाऊँगा, स्व स्वरूप में 'कनक' लीन रहूँगा।। (8)
 ऐसा है मेरा परमलक्ष्य निश्चय, तदनुकूल मेरे भाव-व्यवहार।
 अन्य सभी संकल्प-विकल्प संव्लेश, त्याग करूँ सभी बाह्य प्रपंच।। (9)

ग.पु. कॉ. 18-6-2019 अपराह्न (6:44) (केशलॉच के दिन)

आर्य, सनातन और हिन्दू धर्म स्व-आत्मज्ञान (धर्म-परिवर्तन होता ही नहीं)

-स्वामी अड़गड़ानन्दजी महाराज

श्री परमहंस आश्रम परिवार, शेक्तेषगढ़, मिर्जापुर, उत्तरप्रदेश में दिनांक 4 अप्रैल, 2011, सोमवार के प्रातः कालीन सतसंग में एक श्रद्धालु ने प्रश्न किया "महाराज जी! आये दिन हिन्दुओं के धर्म-परिवर्तन के समाचार सुनने को मिलते हैं। कृपया बतायें इस समस्या का समाधान क्या है?"

पूज्य महाराजश्री ने बताया कि आश्रमीय साहित्य में यत्र-तत्र इस प्रकरण का उल्लेख है। परमपूज्य गुरुदेव श्री परमहंस जी महाराज के समक्ष भी ऐसा ही एक प्रश्न आया था कि 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। यह नामकरण तो अरब आक्रामकों द्वारा सिन्धु नदी के तटवर्ती निवासियों के लिये प्रयुक्त

एक घृणात्मक सम्बोधन था, जो धीरे-धीरे यहाँ के निवासियों की पहचान के रूप में प्रचलन में आ गया तो हिन्दू-धर्म सनातन-धर्म कैसे है?

उस समय गुरु महाराज ने उन्हें बताया था-“नहीं हो! यह नाम अरब आक्रमणकारियों की देन नहीं बल्कि उनसे भी प्राचीन है; क्योंकि भारत के सुदूर वनप्रान्तों, आसाम और ब्रह्मा (बर्मा) इत्यादि क्षेत्रों, जहाँ इस्लाम का प्रचार-प्रसार और प्रशासन व्यवस्था नहीं थी, वहाँ भी पूर्ण श्रद्धा से स्वीकृत है।” (देखे-‘जीवनदर्श एवं आत्मानुभूति’, संस्करण)

यह सच है कि धार्मिक आधार पर गठित संगठन भी इस प्रश्न का उत्तर देने से कतराते हैं कि हिन्दू किसे कहते हैं? उसका मानना है कि इस प्रश्न की निर्विवाद व्याख्या आज तक नहीं हुई और न होनी ही उत्तम है; क्योंकि यदि कहें कि वर्णाश्रम व्यवस्था मानने वाला हिन्दू है तो हिन्दूओं में बहुत से ऐसे हैं जो वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति और छुआछूत नहीं मानते। यदि कहा जाये ‘जो वेद-शास्त्रों को माने वही हिन्दू’ तो बौद्ध, जैन इत्यादि वेदों को प्रमाण नहीं मानते। यदि कहें ‘जो अवतार माने वही हिन्दू’ तो हिन्दुओं में ही बहुत से पन्थ अवतारों में श्रद्धा नहीं रखते। यदि यह कहा जाये कि ‘चोटी, धोती या यज्ञोपवीत धारण करने वाला हिन्दू है,’ तब भी बहुत से प्रान्तों में ऐसा नहीं करते और अपने को हिन्दू कहते हैं। शवदाह करने वालों को हिन्दू कहें तो बहुत से हिन्दू जल-प्रवाह करते या समाधि बनाते देखे जाते हैं। यदि भारत के निवासियों को हिन्दू कहा जाए तो विदेशों में रहनेवाले इससे वंचित रह जायेंगे। वास्तव में हिन्दू एक संस्कृति है, जिसमें हर तरह की उपासना की स्वतंत्रता और सहनशीलता है। अच्छा तो यह होगा कि जो कोई अपने को हिन्दू कहता है, हिन्दू है। किन्तु ये सब भ्रान्तियाँ हैं। कहना न होगा कि इसी तरह हिन्दू धर्म के बारे में कोई ज्ञान उन्हें भी नहीं है जो वरिष्ठ पदों पर रह चुके हैं। कुछ वर्ष पहले ईसाइयों के धर्मगुरु भारत पधारे। उनके स्वागत में समूचा तंत्र उमड़ पड़ा। वापसी में वायुयान में बैठते समय उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री से पूछ लिया-यह हिन्दू क्या होता है? उन्हें उत्तर मिला-हिन्दू एक विचार है! विचार तो क्षण-क्षण पर बदलते ही रहते हैं। क्या इतना ही अस्थिर है हिन्दू-धर्म?

वस्तुतः प्राचीन भारत में शुंगकाल से भारत की मूलभाषा संस्कृत, धर्मशास्त्र गीता और गौरवपूर्ण इतिहास-ग्रन्थ महाभारत के पठन-पाठन पर कड़े प्रतिबन्ध लग जाने के कारण इन भ्रान्तियों ने जन्म लिया कि हिन्दू शब्द कहाँ से आया, आर्य कहाँ से आये और हिन्दू-धर्म सनातन कैसे?

पहले पूरे भारत में बोलचाल की भाषा संस्कृत थी; किन्तु दो हजार वर्ष से गीता के एक श्लोकांश 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं' को लेकर तत्कालीन व्यवस्थाकारों ने प्रचारित किया कि चार वर्णों की संरचना भगवान ने स्वयं की और इस प्रकार समाज में घृणा और फूट की दीवार खड़ी कर दी। कदाचित् गीता पढ़कर कोई समझ न जाय कि भगवान श्रीकृष्ण ने मनुष्यों को नहीं बल्कि चिंतन-कर्म को चार भागों में बाटा। अतः उन्होंने व्यवस्था दी कि गीता घर में रखो ही मत; नहीं तो लड़का सन्यासी हो जाएगा। गीता महाभारत का एक अंश है, इसलिए उन्होंने कहा-महाभारत मत पढ़ना, नहीं तो घर में महाभारत जैसा विनाश हो जाएगा। महाभारत पूर्वजों की गौरवगाथा है। वह शौर्य को जगाता है। यदि शौर्य जग जाएगा तो शोषित वर्ग हमला कर सकता है, इसलिए उनसे शस्त्र छीन लिया गया कि शस्त्र केवल क्षत्रिय उठा सकता है। अपनी वस्तु की रक्षा में ब्राह्मण भी उठा सकता है; किन्तु वैश्य और शुद्र शस्त्र नहीं रख सकते। शिक्षा, शास्त्र, और इतिहास पर प्रतिबन्ध लग जाने से भारत अँगूठा छाप हो गया, समाज बिखर गया और इसी व्यवस्था को लोगों ने सनातन-धर्म कहकर चला दिया, स्व-धर्म कहकर चला दिया और अब भारत भूल गया कि वह हिन्दू क्यों है! जबकि-

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ (गीता)

ऋषियों ने इस गीताशास्त्र का विधिवत् चिंतन करके इस रहस्य को स्पष्ट किया और गीता से ही धर्म के तीन आदर्श नाम आर्य, सनातन और हिन्दू दिये, जिससे मनुष्य चाहकर भी न भटक सके।

गीता के आरम्भ में ही भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।

अनार्यजुष्टस्वर्ग्यकीर्तिकरमर्जुन ॥ (गीता)

अर्जुन! तुझे इस विषम स्थल में यह अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया? न यह कीर्ति बढ़ाने वाला है, न कल्याण करने वाला है, न ही पूर्व वरिष्ठ महापुरुषों ने भूलकर इसका आचरण ही किया। ‘अनार्यजुष्टम्’-यह अनार्यों का आचरण तुमने कहाँ से सीखा? गीता आर्यसहिता है, जिसमें है कि सिवाय आत्मा के किसी का अस्तित्व नहीं है। जो उस परमात्मा के प्रति निष्ठावान है ‘आर्य’ है। उस आत्मा को विदित करने की विधि (गीतोक्त-विधि-योग-विधि) यज्ञ को जो आचरण में ढालता है यह आर्यव्रती है उसके परिणाम में जिसकी आत्मा विदित है, जो आत्मतृप्त है, दर्शन, स्पर्श और आत्मस्थिति पा जाता है वह आर्यत्व प्राप्त है।

सनातन-धर्म-गीता का प्रारम्भ ही सनातन-धर्म से होता है। दोनों ही सेनाओं में अपने परिजनों को देखकर अर्जुन ने कहा-गोविन्द! इन्हें मारकर मैं कैसे सुखी होऊँगा। ऐसा करने से सनातन-धर्म नष्ट हो जाएगा। भगवान ने पूछा-क्या सनातन धर्म? अर्जुन ने बताया- ‘कुलधर्माः सनातनाः,’ ‘जातिधर्माश्चशाश्वताः।’, पिण्डोदक क्रिया लोप हो जायेगी, पितर गिर जायेंगे, कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जायेंगी, वर्णसंकर पैदा होगा, जो कुल और कुलघातियों को नरक में ले जाने के लिये ही होता है। जिसे अर्जुन धर्म-धर्म कहता रहा, भगवान ने कहा-अरे! तुझे यह घोर अज्ञान कहाँ से उत्पन्न हो गया। अर्जुन का जो प्रश्न था, आज का भारत उसी का उत्तर मान कर चल रहा है; जातिधर्म, कुलधर्म, पिण्डोदक क्रिया ही तो कर रहा है। रात-दिन और क्या कर रहा है? स्व-स्व धर्म का पालन करो-जाति-पराम्परा में जिसको जो मिला है उसी का पालन ही तो कर रहा है। अर्जुन तो सीख गया पीछे वाली पीढ़ी आज भी जहाँ की तहाँ खड़ी है।

अर्जुन ने सविनय कहा-प्रभो! आप ही बताइये कि सत्य क्या है? भगवान ने कहा-

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ (गीता)

अर्जुन! सत्य वस्तु का तीनों कालों में अभाव नहीं है, उसे मिटाया नहीं जा सकता। असत् का अस्तित्व नहीं है, उसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। क्या है वह सत्य और असत्य? इस पर भगवान ने बताया कि अर्जुन! आत्मा ही सत्य है

और भूतादिकों के शरीर नाशवान हैं। शरीरों के ही उतार-चढ़ाव, ऊँच-नीच को आज लोग धर्म मान बैठे हैं। अर्जुन! आत्मा ही सनातन है।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ (गीता)

आत्मा अच्छेद्य है, इसे शस्त्र नहीं काट सकता, अग्नि इसे जला नहीं सकती, वायु सूखा नहीं सकता, जल इसे गीला नहीं कर सकता। यह सदा रहने वाला एकरस और सनातन है। सनातन केवल आत्मा है। आत्मा, परमात्मा, ईश्वर-ये पर्यायवाची शब्द हैं। यह अन्तःकरण में सदा विद्यमान होने से आत्मा सबमें रहते हुए सबसे परे है इसलिए परमात्मा, स्वर के निरोध काल में विदित होने से ईश्वर-ऐसे हजारों नाम हो सकते हैं। यह तो प्रार्थना है, चरित्र-चिंतन है। इस आत्मा के प्रति जो श्रद्धावान है वही सनातनधर्मी है। यदि हम आत्मा के प्रति श्रद्धावान नहीं, उस परमतत्व परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं है तो हम भटके हुए हैं, धार्मिक नहीं।

ईश्वर का निवास-स्थल-मान लिया उस आत्मा का ही अस्तित्व है, वही सनातन है। वह सनातन ज्योतिर्मय प्रभु रहता कहाँ है? भगवान बताते हैं-

ज्योतिषामपि तज्योतिस्मसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥ (गीता)

वह ज्योतियों का भी ज्योति है, अंधकार से अत्यन्त परे वह पूर्ण ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण ज्ञाता है, जानने योग्य है, 'ज्ञानगम्यं'-ज्ञान के द्वारा सबके लिये सुलभ और 'हृदि सर्वस्य विष्ठितम्'-वह सनातन आत्मा हृदय में रहता है। जिन्हें हमें प्राप्त करना है उनका निवास बैकुण्ठ में नहीं, आकाश में नहीं, हृदय में है। हिन्दू शब्द भगवान के स्थान का वाचक है। उस हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से हम हिन्दू कहे जाते हैं। हृदय में बैठकर भगवान करते क्या हैं? इस पर कहते हैं-

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।

वेदैश्च सर्वैहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥ (गीता)

सबके हृदय में समाविष्ट मुझसे ही बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और विकारों से निर्लेप रहने की क्षमता होती है। यह साधारण बुद्धि नहीं बल्कि वह बुद्धि जो भगवान को धारण कर ले। 'ज्ञान' दर्शन के साथ मिलने वाली अनुभूति है। विकारों से निर्लेप

रहने की क्षमता हृदय में बैठकर ईश्वर प्रदान करते हैं। इसी हृदयस्थ ईश्वर का उपासक होने से आप हिन्दू हैं।

गीता के समापन पर भगवान अपनी ओर से पुनः स्पष्ट करते हैं-अर्जुन! जानते हो ईश्वर का निवास कहाँ है?

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। (गीता)

अर्जुन! वह ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय-देश में निवास करता है। इतना समीप कि हमारे हृदय में है तो हम उसे देखते क्यों नहीं? भगवान बताते हैं कि मायारूपी यंत्र में आरूढ़ होकर लोग भ्रमवश भटकते ही रहते हैं इसलिए नहीं देखते। जब ईश्वर हृदय में ही है तो हम शरण किसकी जाएँ? भगवान अगले श्लोक में ही आदेश देते हैं-

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥ (गीता)

अर्जुन! उस हृदयस्थित ईश्वर की शरण जाओ, 'सर्वभावेन'-संपूर्ण भावों से जाओ। ऐसा नहीं कि थोड़ा भाव संकटमोचन में, कुछ पशुपतिनाथ में, कुछ देवी में...तब तो हम भटक गये। मन-कर्म-वचन से भलीभाँति समर्पित होकर जाओ। मान लें, हमने सारी मान्यताओं से चित्त समेटा और हृदयस्थ ईश्वर की शरण में चले ही गये तो उससे लाभ क्या है? भगवान कहते हैं-अर्जुन! 'तत्प्रसादात्परां शान्तिम्'-तुम उसके कृपाप्रसाद से परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे और 'स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्'-उस निवास स्थान को पा जाओगे तो शाश्वत है, एकरस है, सनातन है, अपरिवर्तनशील है, जो सदैव रहेगा। उस हृदयस्थ ईश्वर की शरण जाने वाला ही हिन्दू है। हिन्दू शब्द ईश्वर के निवास का परिचय देता है।

हिन्दुत्व की साधना हृदय में ईश्वर की जागृति के साथ आरम्भ होती है। ज्यों-ज्यों संयम सधता जाता है, उसी स्तर के अनुरूप हृदय में ईश्वरीय निर्देश मिलता जाता है। यह पढ़ाई भगवान स्वयं को पढ़ाते हैं। हर व्यक्ति के अपने अनन्त संस्कार हैं। सबकी अलग-अलग मनोदशा और अलग-अलग अनन्त वृत्तियाँ हैं। उन वृत्तियों के अनुरूप साधक को भगवान की ओर से प्रतिदिन, प्रतिपल निर्देश मिलते रहते हैं।

सबके निर्देशों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिये, साधक को कैसे रहना है? कब भोजन करना है?, किसका भोजन करना है?, किसका नहीं करना है, क्या खाना है और क्या नहीं?, क्या पहनना है, कहाँ उठना-बैठना-चलना है? कब सोना, कब जागना है?, कब भजन करना है, कैसे करना है? बैठकर या चलित ध्यान?...इत्यादि प्रत्येक गतिविधि भगवान स्वयं नियन्त्रित करने लगते हैं। कभी जिस वस्तु का प्रयोग मना था, बाद में उसी को करना पड़ सकता है। भगवान की इन आज्ञाओं का पालन ही भजन है। हर व्यक्ति की साधना का स्तर अलग-अलग होता है। किसी को इन्द्रियों का संयम करना है, किसी को युक्तहार विहार की आवश्यकता है, किसी को चिंतन में समय देना है तो कोई सेवा स्तर पर है। सबके लिये एक जैसी साधना नहीं हो सकती इसलिए वह साधना लिखने में नहीं आती। यही कारण है कि प्राचीन महापुरुषों ने आर्ष ग्रन्थों में हिन्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है। हिन्दू नामकरण साधना का क्रियात्मक पक्ष है। यह प्रत्यक्ष दर्शन है, क्रियाजन्य है जो किसी अनुभवी सद्गुरु के संरक्षण में चलकर ही पूरा होता है।

सृष्टि में जो भी उस ईश्वर को ढूँढेगा, हृदय में ही पाएगा। इसलिये मानवमात्र जो भी हृदयस्थ ईश्वर का आराधक है, सब हिन्दू हैं। अन्यत्र ढूँढने पर भी ईश्वर नहीं मिलेगा। संसार का भटका हुआ मानव भटकाव से हृदयस्थ ईश्वर की ही शरण जाता है इसलिए वह सभी हिन्दू हैं। उनका रहन-सहन, वेशभूषा, पर्व-उत्सव सो गुरुघरानों की पहचान हैं। सृष्टि का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के प्रशस्त पथ पर आते ही हिन्दू हो जाता है-भले ही वह अपने को कुछ भी कहता या मानता रहे। जब तक वह शरण में नहीं आता, मोह-निशा में आक्रान्त है और ज्यों ही वह हृदयस्थ ईश्वर की शरण आता है, वह हिन्दू है। यह नाम अन्य किसी की देन नहीं, आदिशास्त्र गीता की ही निष्पत्ति है।

हिन्दू शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'ही' हिय अर्थात् हृदय और इन्दु अर्थात् चन्द्रमा! चन्द्रमा का क्षीण प्रकाश ज्योतिर्मय ईश्वर की उपस्थिति का द्योतक है। हिन्दू शब्द इस तथ्य का परिचायक है कि भगवान आपके हृदय में विद्यमान हैं। नास्तिक, जो भगवान को नहीं चाहता, उसके हृदय में भी भगवान भली प्रकार हैं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। (गीता)

इस जगतरूपी रात्रि में सभी प्राणी निश्चेष पड़े हुए हैं, इसमें संयमी पुरुष जग जाते हैं। गीतोक्त साधना समझकर जहाँ किसी ने अभ्यास किया, संयम सधा, तहाँ वह जीव तत्काल जग जाता है। ऐसी मोह-निशा में भी भगवान क्षीण प्रकाश के रूप में हर व्यक्ति के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं। रात्रि में तो चन्द्रमा ही प्रकाश करता है। संयम और चिंतन पार लगते ही रात्रि का अवसान हो जाता है, ईश्वरीय प्रकाश फैलने लगता है। रात्रि गयी तो चन्द्रमा का कोई उपयोग नहीं रहता। ईश्वरीय क्षीण प्रकाश पूर्ण प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है।

श्री भगवान कहते हैं-‘न तद्भासते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।’-वहाँ न चन्द्रमा प्रकाश कर सकता है, न सूर्य और न अग्नि ही; इसलिए ईश्वरीय प्रकाश जहाँ फैला तो रात्रि का अवसान हो गया, साधक हृदयस्थ ईश्वर को प्राप्त कर लेता है। अस्तु, इन्दु जो क्षीण प्रकाश है, ज्योतिर्मय परमात्मा के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

हिन्दू धर्म परमात्मा के निवास स्थान का परिचायक शब्द है और गीता शास्त्रसम्मत है। इसी प्रकार आर्य न कहीं से आता है, न कहीं जाता है। अस्तित्व के प्रति निष्ठावान हुए तो आर्य, और जब तक नहीं है तब तक अनार्य! परमात्मा ही सनातन है। सनातन के प्रति श्रद्धावान सनातनधर्मी है।

समाज में जो देवी-देवता पूजा चल रही है, परमात्म-पथ की शुरुआत यहीं से होती है। यह शिशु को वर्णमाला ज्ञान सिखाने जैसा है कि ‘क’ से कमल या ‘ए’ फार एप्पल! शिक्षा की कुछ दूरी सम्पन्न होते ही यह पाठ समाप्त हो जाता है। गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर इसी ने पहुँचाया है। अचेत आत्मा को जगाने के लिये, परमात्मा का रहस्य प्रकट करने के लिए रासलीला, रामलीला, कथा, कीर्तन, नृत्य, गायन चित्रकथा की तरह धर्म की खुली पुस्तक है। भगवान से श्रद्धा जोड़ने, अचेत आत्माओं को जगाने के लिये है। यह सभी ‘भजन’ के ही अन्तर्गत है।

मंदिर, मस्जिद, चर्च और प्रार्थना-स्थलियाँ आध्यात्म की आरम्भिक पाठशालायें हैं। वस्तु-पूजा, प्रतीक-पूजा, पुस्तक या लाकेट-पूजा, दीवाल या चबूतरा पूजन मूर्तिपूजा के ही विभिन्न रूप हैं। अधिकांश मंदिर, मूर्तियाँ पूर्वजों और महापुरुषों के स्मृति-स्थल ही तो हैं। बालक पहले इन स्थलियों पर सिर झुकाना सीखता है, तो

कभी वृक्ष। स्वयं में एक मन्दिर है, जिसमें ईंट-पत्थर जोड़ने की भी आवश्यकता नहीं रहती। माता-पिता और गुरुओं से आरम्भिक पाठ पढ़कर व्ययस्क होते-होते वह महात्माओं के संसर्ग में आता है। क्रमशः परिपक्व होने पर उनसे प्रश्न-परिप्रश्न कर वह एक परमात्मा की शरण में जाते ही गीतोक्त साधन-पथ पर आ जाता है और हृदयस्थ परमात्मा की शोध में संलग्न हो जाता है।

रामचरित मानस भी आदिशास्त्र गीता का ही अनुवाद है-

जप तप नियम जोग जिन धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा।

ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि कहत श्रुति सज्जन।।

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।।

तव पद पंकज प्रीति निरन्तर। सब साधन कर यह फल सुन्दर।। (मानस)

जप, तप, नियम, योग, तीर्थों का अवगाहन-ये सब श्रुतिसम्मत धर्म हैं। पुस्तक पढ़ना आदि का फल केवल उन प्रभु के चरण-कमलों में प्रीति है। हृदयस्थ ईश्वर तक पहुँचने के ये सब आरम्भिक साधन हैं। मन्दिर, मस्जिद इत्यादि माध्यमों को गोस्वामी तुलसीदास इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं।

तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई।

नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।

भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई।।

जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।। (मानस)

उपर्युक्त सभी साधन वेदवर्णित हैं। जब अपना प्रकाश देने की स्थिति में आते हैं तो एक हरि की भक्ति प्रदान करते हैं।

सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई। (मानस)

फिर वह गीतोक्त साधना के प्रशस्त पथ पर आ जाता है, वह हृदयस्थ ईश्वर का पुजारी हो जाता है, हिन्दू है।

सृष्टि के आरम्भ में सबका आदिशास्त्र गीता थी। वह अविनाशी योग विस्मृत हो चला तो द्वापर में भगवान द्वारा यह गीता पुनःप्रकाश में आयी। इसके अर्थ को लेकर 'यथार्थ गीता' प्रकाश में आयी, जिसे 4-6 बार पढ़ लेने पर न कोई सन्देह है, न होगा। यही हृदयस्थ ईश्वर की साधना है।

सृष्टि में मानवमात्र का एक ही धर्म है-हृदयस्थ परमात्मा को विदित करना! उसकी निर्धारित विधि भी एक ही है-गीतोक्त नियत विधि! उसकी विशेषता बताते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥ (गीता)

अर्जुन! इस निष्काम कर्मयोग में आरम्भ का नाश नहीं है, सीमित फलरूपी दोष नहीं है और इसका स्वल्प अभ्यास भी महान जन्म-मृत्यु के बन्धन से उद्धार करने वाला होता है। आप इस कर्म-पथ पर दो कदम चल भर दें तो अगले जन्म में तीसरा ही कदम आगे बढ़ेगा और पड़ेगा। जैसे कोई बीज पृथ्वी पर डाला, वह अंकुरित हो गया, दो पत्ती फूट गयी तो वह फूलेगा, फलेगा और मिलेगा। माया में कोई क्षमता नहीं कि उसे नष्ट कर दे तो साधारण मनुष्य धर्म में परिवर्तन कैसे कर लेगा?

गीता के अध्याय 6 में भगवान कहते हैं-अर्जुन! वायुरहित स्थान में दीपक की लौ सीधे ऊपर की ओर जाती है, उसमें कम्पन नहीं होता। योगी के अच्छी प्रकार जीते हुए चित्त की यही परिभाषा है। उसकी वृत्ति शान्त स्थिर तैलधारावत् बाँस की तरह खड़ी हो जाती है। वृत्ति श्वास में समाहित हो जाती है। श्वास आयी तो ओम् गयी तो ओम्! बीच में कोई दूसरा संकल्प न आया, न टकराया। अर्जुन थोड़ा चौंका। वह बोला-प्रभो! इस मन को तो मैं वायु से भी तेज चलने वाला समझता हूँ। इसका रुकना तो लगभग असम्भव है। अतः शिथिल प्रयत्न वाला श्रद्धावान पुरुष आपको न प्राप्त होकर किस दुर्गति को प्राप्त होता है? कहीं छिन्न-छिन्न बादल की तरह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता? छोटी-सी बदली आकाश में आयी, न बरस पायी न बादलों से ही मिल पायी और देखते ही देखते हवा के झोंकों से नष्टप्राय हो गयी, विलुप्त हो गयी। इसी प्रकार वह पुरुष भी बेचारा न संसार में भोग-भोग पाया न आपको ही प्राप्त कर सका। कहीं वह नष्ट-भ्रष्ट तो नहीं हो जाता?

भगवान ने बताया-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥(गीता)

अर्जुन! निःसदेह यह मन वायु से भी तेज चलने वाला और निरोध करने में दुष्कर है, किन्तु साधना समझकर अभ्यास और देखी-सुनी वस्तुओं में लगाव का त्याग अर्थात् वैराग्य के द्वारा यह भली प्रकार स्थिर हो जाता है। इस गीतोक्त कर्म को करने वाला कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। इस साधन के प्रभाव से वह पुण्यवानों के लोक में अथवा पवित्र योगीकुल में जन्म लेता है। वहाँ विषयों में आकण्ठ डूबा होने पर भी पिछले जन्म के बुद्धि संयोग को अनायास ही प्राप्त कर लेता है, उसी साधना को आगे बढ़ाता है और 'अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्' (गीता) अनेक जन्मों के साधन के परिणाम में वहीं पहुँच जाता है जिसका नाम परमगति, परमधाम है। कागभुशुण्डि कई जन्मों के बाद पहुँच गये। वह कौवा हो गये लेकिन धर्म कभी नहीं बदला! जड़भरत मृग हो गये लेकिन धर्म नहीं बदला। भगवान महावीर कभी शेर हुए, हाथी हुए; अन्त में लक्ष्य पर पहुँच गये, धर्म नहीं बदला। धर्म कभी नहीं बदलता। धर्म को लोग जानते ही नहीं इसलिए उन्हें लगता है कि धर्म-परिवर्तन हो गया। परिवर्तन रूढ़ियों, परम्पराओं और प्रथाओं का होता है। धर्माचरण आरम्भ भर हो गया तो माया भी अवरोध नहीं डाल सकती, तो यह क्षुद्र मनुष्य रहन-सहन बदलकर धर्म-परिवर्तन कैसे कर सकता है? यह एक भ्रान्ति है और धर्मशास्त्र गीता के विस्मृत हो जाने का दुष्परिणाम है।

गीता में भगवान आश्वासन देते हैं- 'अपि चेत्सुदुराचारो' अर्जुन! अत्यन्त दुराचारी भी यदि अनन्य भाव से मुझे भजता है तो वह साधु मानने योग्य है। अनन्य माने अन्य न! किसी भी अन्य देवी-देवता को न भजते जो निरंतर मुझे भजता है वह साधु मानने योग्य है। कौन? वही दुराचारी! क्योंकि वह यथार्थ निश्चय से लग गया है। यथार्थ जो सत्य है, तत्त्व है; उसका निश्चय वहाँ स्थिर हो गया, उसका भटकाव समाप्त हो गया है। इतना ही नहीं-

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। (गीता)

वह दुराचारी शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है, सदा रहने वाली शान्ति को प्राप्त कर लेता है। अर्जुन! निश्चयपूर्वक ध्रुवसत्य जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। गीतोक्त साधन ऐसा जीवन बीमा जैसा है जिसके अनुसार थोड़ा भी साधन आपको

जन्म-मृत्यु के बंधन से पार लगा देता है। तीन-चार बार गीताभाष्य 'यथार्थ गीता' पढ़ लिया, कुछ अभ्यास शुरू कर दिया, बीजारोपण हो गया तो विनाश कभी नहीं होगा। ये साधारण लोग 'मेरा धर्म', 'तेरा धर्म' करके क्या परिवर्तन करेंगे? माया का पूरा प्रकोप हो तब ही वह नष्ट नहीं होगा। इसलिए सद्गुरु की शरण होकर गीतोक्त साधना आरम्भ करें, सबको गीता प्रदान करें, धर्मान्तरण का प्रश्न सदा-सदा के लिये सुलझ जायेगा।

“हर जीव को विश्व में प्रसन्न करना असंभव”

(चाल:-आत्मशक्ति...)

हर जीव को प्रसन्न रखने/(करने) का कोई उपाय न आविष्कार हुआ पूरे विश्व में। तीर्थंकर बुद्ध ईसा (मसीह) से ले आधुनिक साधु नेता से वैज्ञानिक तक में (ने)॥ (1)
अनन्त जीव है अनन्त कर्म अनन्तानन्त उनके भाव-व्यवहार।

अतः संभव नहीं पूर्ण समानता नवम गुणस्थान व सिद्धों के पहले॥ (2)

तीर्थंकर बुद्ध ईसा से ले वैज्ञानिकों तक न सभी जीव सही मानते।

उन्हें भी गलत मानकर उनका भी विरोध से हत्या तक भी करते॥ (3)

सभी जीवों को प्रकाश में भी न दिखता रात्रिचर को रात्रि (तम) में दिखाई देता।

दिन में जिसे दिखाई देता है रात्रि (तम) में उन्हें न दिखाई भी देता॥ (4)

चतुर्थकाल (सतयुग) में भी नहीं होते थे सत्यग्राही व विनम्रजन।

उस युग में भी महापापी होते थे यहाँ तक कि उन्होंने हत्या की साधु सज्जन॥ (5)

हर जीव न मानते सत्य अहिंसा अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह।

क्षमा मार्दव आर्जव शौच तप त्याग आकिंचन्य व मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ॥ (6)

सादा जीवन व उच्च विचार उदार सहिष्णु समन्वय न चाहते।

दया दान सेवा परोपकार निस्पृह निराडम्बर सह फैशन-व्यसन त्याग नहीं करते॥ (7)

ऐसे जीव अधिक होते इनसे विपरीत सत्य अहिंसादि पालक अति कम होते।

जिससे पापी जीव सत्य आदि पालकों को गलत मानकर उनका विरोध करते॥ (8)

इसीलिए तो हर धर्म पंथ मत भाषा क्षेत्र जाति में होते अनेक भेद प्रभेद।

उन में परस्पर भेदभाव से ले होते हैं रागद्वेष मोह से संघर्ष युद्ध॥ (9)

कमठ सम पापी विरोध करते पार्श्वनाथ के सम सज्जन साधुओं के।

तथाहि सीता सुकरात मीराबाई सम सज्जनों का विरोध करते दुर्जन॥ (10)

विभीषण विदुर सम नीतिज्ञों को नहीं मानते रावण दुर्योधन सम दुर्जन।

सज्जनों को दुर्जन बनाने हेतु दबाव भयादि से करते भाव व काम॥ (11)

आँखें यथा स्वयं को न देखती तथाहि दुर्जन स्व दोष न देखते।

स्वमुख का कलंक दर्पण में देखकर दर्पण को साफ करने लगते॥ (12)

इसीलिये साधु सज्जन मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ भाव रखते।

आत्मकल्याण को प्रमुखता से करते...

‘कनक’ भी ऐसा भाव-व्यवहार करते॥ (13)

ग.पु.का. 24-6-2019 प्रातः 8:23

परफेक्शन पर ज्यादा जोर देने से शारीरिक, मानसिक नुकसान

बच्चों को सिखाएं कि सबकुछ हमारे हाथ में नहीं

कई युवा विश्वास करते हैं कि कड़ी मेहनत के जरिये वे अपनी जीवन की स्थितियों पर नियंत्रण कर सकते हैं। यह अजेय रहने जैसी मानसिकता है। मैंने कई स्टूडेंट में नोटिस किया कि जीतने और कामयाब होने पर वे शक्तिशाली और स्मार्ट महसूस करते हैं। लेकिन, जब वांछित सफलता नहीं मिलती है तब टूट जाते हैं।

हम अक्सर ऐसे युवाओं की बात करते हैं जिन्हें माता-पिता के ज्यादा लाड़-प्यार के कारण विफलता का सामना करने में कठिनाई होती है। लेकिन, अति खास युवाओं के बीच एक गलत धारणा भी बनती है। उन्हें बताया जाता है कि वे अगर काम करने की इच्छा दिखाएं तो कुछ भी पा सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धांत के आधार पर माइंड सैट रिसर्च की। इसमें पाया गया कि बच्चों के प्रयासों की तारीफ करने से शैक्षणिक प्रदर्शन सुधरता है। स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी के मनोवैज्ञानिक केरोल ड्वेक द्वारा तैयार माइंड सैट एजुकेशन दुनियाभर में फैल गया। लेकिन, 2018 में एक विश्लेषण में पाया गया कि योग्यता की तुलना में प्रयासों की ज्यादा प्रशंसा करने से आर्थिक रूप से कमजोर छात्रों को लाभ हो सकता है पर जरूरी नहीं है कि हर किसी को इससे मदद मिले।

पिछले वर्ष सुनिया लूथर और नीना कुमार ने एक रिसर्च पेपर में बताया कि संपन्न समुदायों के बीच प्रोत्साहन, प्रेरणा और लगन की कमी बड़ी समस्या नहीं है। इसकी बजाय परफेक्शन पर जोर देने और उपलब्धियाँ पाने के लिए पूरा जोर लगाने के बाद पीछे हटने में कठिनाई के अभाव से परेशानी खड़ी होती है। इससे शारीरिक और भावनात्मक दबाव पैदा हो सकता है।

वास्तविकता यह है कि आप पूरी ताकत लगाने के बाद भी नाकाम हो सकते हैं। यह अहसास अल्पसंख्यकों, वंचित समुदायों के बीच जल्द जागता है। असमानता और भेदभाव झेलने का अनुभव उन्हें असफलताएं सहन करने में सक्षम बनाता है। इसलिए बच्चों को बताया जाए कि हर परिस्थिति पर उनका नियंत्रण नहीं है। हम उन्हें बताएं कि जब हम उम्मीद नहीं करते तब जीवन हमें कड़वे अनुभव देता है।

दिल की बीमारियों का खतरा

2007 में मनोवैज्ञानिकों ग्रेगरी मिलर और कारस्टन ब्रोस्च ने एक स्टडी से निष्कर्ष निकाला कि असंभव लक्ष्य छोड़ने से इंकार करने वाली किशोरियों के शरीर में सीआरपी (प्रोटीन) का स्तर बढ़ गया। इसका संबंध डायबिटीज, हृदय रोगों और अन्य बीमारियों से है। 2014 में लूथर और एमिली लाइमैन की एक स्टडी ने अमीर युवाओं के बीच परफेक्शन हासिल करने की प्रवृत्तियों और हीनता की भावनाओं के बीच संबंध दर्शाया गया है।

यूरोप के कई देशों में यहूदियों के खिलाफ नफरत का माहौल

ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी में हमले की घटनाएं बढ़ीं

पिछले वर्ष स्वीडन के लुंड शहर में 70 वर्षीय रिटायर्ड एक महिला प्राफेसर को धमकी भरा पत्र मिला था। पत्र पर स्वीडन के नाजी समर्थक संगठन नोर्डिक प्रतिरोध आंदोलन का लोगो अंकित था। अक्टूबर में एक दिन सुबह उनका घर जला दिया गया। वे किस्मत से उस दिन घर पर नहीं थीं। लेकिन, यूरोप के सबसे उदार देश स्वीडन में ऐसी घटना अजीब लगती है। आगे और हमलों के डर से वे अपना नाम छिपाना चाहती हैं। प्रोफेसर को इसलिए निशाना बनाया गया क्योंकि वे यहूदी हैं। वे इस मामले में अकेली नहीं हैं। दुनिया के कई देशों में यहूदियों के

खिलाफ हिंसा बढ़ रही है। अमेरिका में 2017 की तुलना में 2018 में यहूदियों पर हमले दोगुने हो गए।

75 वर्ष पहले यहूदियों के खिलाफ नफरत और उनके खात्मे का अभियान देख चुके यूरोप में हिंसा का ट्रेंड खासतौर से बढ़ा है। ब्रिटेन में पिछले तीन वर्षों में सबसे अधिक यहूदी विरोधी हमले दर्ज किए गए। फ्रांस में 2017-2018 में ऐसे हमलों में 74 बढ़ोतरी हुई। जर्मनी में पिछले वर्ष ऐसी घटनाएं पूर्व वर्ष की तुलना में 19 बढ़ गईं।

यूरोपियन यूनियन के एक सर्वे में 89 लोगों ने कहा, यहूदियों का विरोध फैल रहा है। महाद्वीप में हुआ सर्वे जनवरी में प्रकाशित हुआ था। एक अलग सर्वे में 12 ईयू देशों में 16300 यहूदियों के सर्वे के बाद ईयू की बुनियादी अधिकार एजेंसी का निष्कर्ष है कि यहूदियों के खिलाफ इस दशक में घृणा और हिंसा बढ़ी है। 38 लोगों ने कहा, वे पलायन करने की सोच रहे हैं क्योंकि सुरक्षित नहीं हैं।

यूरोपीय अधिकारी इन नतीजों से स्तब्ध हैं। कई कारणों से यूरोप के सबसे पुराने समुदाय के लिए ऐसी स्थिति बनी है। गोरों की श्रेष्ठता के पक्षधर और इजराइल विरोधियों ने इस आग को हवा दी है। यूरोप में लाखों बाहरी लोग बस रहे हैं। इनमें बड़ी संख्या मुस्लिम देशों से आए लोगों की है जिनका इजराइल और यहूदियों के प्रति बहुत आक्रामक रुख रहता है।

कई कारणों से बढ़ी रही है यहूदियों के खिलाफ घृणा

गोरों की श्रेष्ठता में यकीन रखने वाले और इजराइल विरोधी ऐसा कर रहे हैं।

यूरोप में बड़ी संख्या में मुस्लिम शरणार्थी बस गए हैं। कई मुस्लिम देश इजराइल और यहूदियों के खिलाफ बेहद आक्रामक रवैया रखते हैं।

सोशल मीडिया पर यहूदी विरोधी दुष्प्रचार बड़े पैमाने पर चल रहा है।

स्वीडन में यहूदी विरोधी नॉर्डिक प्रतिरोध आंदोलन ने राजनीतिक पार्टी के रूप में रजिस्ट्रेशन करा लिया है। उमिया शहर में 35 वर्ष से रह रहीं केरिये जोबर्ग ने 2010 में यहूदी सेंटर खोला था। जहां यहूदी लोग त्योहार मानते थे। वहां हर साल जनवरी में हेलोकास्ट (यहूदियों को खत्म करने की योजना) स्मृति दिवस पर हिटलर के फोटो लगाए जाते थे। धमकियों के बाद जोबर्ग ने 2017 में सेंटर बंद कर दिया।

माल्मों में दो मुस्लिम किशोरों ने पिछले वर्ष एक यहूदी प्रार्थना स्थल में आग लगाने की कोशिश की थी।

धुंधले परिदृश्य के बीच आशा के संकेत उभरे हैं। यूरोप के कई नेता सोचते हैं कि यहूदी विरोधी भावना के खिलाफ संघर्ष करना होगा। फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुअल मैक्रों ने कहा यहूदी विरोध फ्रांसीसी मूल्यों के खिलाफ है। यह बात उन्होंने एक यहूदी विरोधी कब्रिस्तान की यात्रा के दौरान कही थी।

क्या है धर्म? क्या है कर्म?

(स्वशुद्ध आत्मा ही स्वधर्म-स्वकर्म...व इसके उपाय भी)

(चाल:-1.किसी ने अपना बनाके...2.बंगल-उडिया...)

क्या है धर्म? क्या है कर्म? क्या है तेरे ज्ञान-विज्ञान?

क्या है सत्ता? क्या सम्पत्ति? क्या है तेरी प्रसिद्धि डिग्री (सिद्धि)॥

तू ही धर्म, तू ही कर्म, तू ही तेरे ज्ञान विज्ञान।

तू ही सत्ता, तू ही सम्पत्ति, तू ही तेरी प्रसिद्धि सिद्धि॥ (1)

“वस्तु स्वभाव धर्म” होने से, तेरा “शुद्ध स्वभाव” ही तेरा धर्म।

इस हेतु ही जो तेरा पुरुषार्थ, वह ही तेरा परमार्थ कर्म॥

इस हेतु ही तेरा जो ज्ञान, वह (ही), यथार्थ से ज्ञान-विज्ञान।

स्व-परम सत्य ही तेरी है सत्ता, स्व अनन्त वैभव तेरी सम्पत्ति॥ (2)

उक्त सभी प्राप्ति ही सिद्धि-प्रसिद्धि, अनन्त ज्ञान दर्शन तेरी डिग्री।

इसके अतिरिक्त तेरी विकृति, कर्म जनित सभी विकार वृत्ति॥

चौरासी लक्ष्य योनि चतुर्गति में, उक्त गुण धर्म न प्राप्त हुए हैं।

राजा महाराजा चक्री इन्द्र तक, शुद्ध आत्मिक गुण प्राप्त न किये॥ (3)

अतः (तू) स्वस्वरूप का करो श्रद्धान, स्वस्वरूप का करो सही विज्ञान।

स्वस्वरूप प्राप्ति हेतु करो आचरण, इस हेतु त्याग करो विकार परिणाम॥

राग द्वेष मोह काम क्रोध मद, ईर्ष्या तृष्णा घृणा दीन हीन त्याग।

संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग, “पर चिन्ता अधमा धमा” भी त्याग॥ (4)

तब तेरे धर्म कर्मादि होंगे सम्यक्, अन्यथा सभी है बाह्य प्रपंच।

दिखावा ढोंग पाखण्ड मिथ्यात्व, आडम्बर से ले संकीर्ण स्वार्थ॥

अनन्तकाल से अनन्तानन्तबार, ऐसे मिथ्या धर्म का किया आचरण।

अभी सम्यक् रूप से करो, अनन्तवां भाग, जिससे पाओगे स्वआत्मवैभव॥ (5)

यह परम आध्यात्मिक रहस्य, सर्वज्ञ हितोपदेशी द्वारा कथितसत्य।

इससे अनन्त आत्मा बने परमात्मा, परमात्मा बनना 'कनक' का परमलक्ष्य॥ (6)

ग.पु.का. दि. 17.06.2019 रात्रि 9:23

सांसारिक सुख-मधु बिन्दु सम

(मोही जीव सांसारिक सुख हेतु जो दुःख सहते)

(उसके अनन्तवां भाग दुःख मोक्ष हेतु सहते तो मोक्षसुख मिल जाता)

(चाल:-1.सुनो सुनो ऐ!...2.क्या मिलिए...)

सुनो हे! मोही संसारी जीव तेरी दशा की सच्ची कहानी।

रागद्वेष से ग्रसीत होकर नहीं जानते हो आत्म कहानी॥

तुम स्वयं को मानते देह उसके सम्बन्ध से ही करते हो स्नेह।

पति पत्नी कुटुम्ब भोगोपभोग को ही तुम मानते हो स्ववैभव॥ (1)

यथा एक पथिक भयंकर वन में प्रवृष्टि हुआ होकर मार्ग भ्रष्ट।

उसे मारने हेतु एक भयानक हाथी उसके पीछे भागा होकर क्रुद्ध॥

भयभीत पथिक अज्ञात कूप में गिरकर देखा वहाँ एक भयंकर अजगर,

वटवृक्ष की जटा पकड़कर देखा वहाँ और भी चार विषधर सर्प॥ (2)

उस जटा को दो सफेद व काला चूहा काट रहे अविरल रूप से।

हाथी आकर उस वृक्ष को हिलाया मारने हेतु उस पथिक को॥

वृक्ष हिलाने से मधुमखियाँ विचलीत होकर क्रूरता से काटे पथिक को।

महादुःख से दुःखी हुआ पथिक किन्तु एक मधुबिन्दु गिरा मुख में॥ (3)

मधु के स्वाद से मोहीत होकर अन्य (महान्) दुःखों के निवृत्ति हेतु न क्रिया उपाय।

बारबार मधु के मोह से विद्याधर-विद्याधरी के आह्वान को न दिया महत्व॥

आकाश मार्ग में जाते हुए विद्याधर दम्पति ने किया उसे आह्वान।

इस दुःख से निवृत्ति हेतु हमारे साथ चलो हमारे भवन॥ (4)

किन्तु वह पथिक बोलता रहा मैं आऊँगाँ अवश्य आप के साथ।

किन्तु एक बुन्द मधु खाकर आऊँगा इस महा दुःखों को छोडकर।।
बारबार ऐसा बहुसमय तक जब तक पथिक ऐसा कहता/(करता) रहा।
तब दोनों विद्याधर वहाँ से चले गये किन्तु पथिक मरकर दुःख पाया।। (5)
यह एक रूपक अलंकार की कथा मोही जीवों की।

पथिक मोही जीव, कूप संसार, भव हाथी काल/(मृत्यु) जटा के समान आयु भी।।
अजगर सम नरक, चूहों के सम कृष्ण शुक्ल, चार सर्पों के सम चार कषायें।
मधूमक्खियों के समान रोग है, मधूबिन्दू के सम सांसारिक भोगोपभोग सुख।। (6)
विद्याधर दम्पति के सम हितोपदेशी, साधु-साध्वी जो मोक्ष हेतु कहते।
किन्तु मोही न मोह त्याग करते, तब साधु-साध्वी समता-मौन रखते।।

इस कारण ही अभी तक संसार से न मुक्त हुए, एक निगोद शरीर के सभी जीव।
मोही जितने सहते संसार में दुःख उसके अनन्तता में पा जाते मोक्ष सुख।। (7)
अतएव मोह सम न कोई मध या विष, अथवा न कोई बन्ध या शत्रु।

मोह क्षय से मोक्ष मिलता है इस हेतु 'कनक' सूरी क्षय कर रहे मोह शत्रु।। (8)

ग.पु.कों. दि. 19-6-2019 मध्याह्न 2:35

संदर्भ-

सभायामथ तत्रैको भव्यः पप्रच्छ भक्तितः।

नत्वा जिनमतिं साधु मवधिज्ञानलोचनम्।।

भगवन्नत्र संसारे सरतां सारवर्जिते।

कियत्सुखं कियद् दुःखं कथ्यतां में प्रसादतः।। (धर्मपरीक्षा)

उस सभा में किसी एक भव्यने जिनमति नाम के अवधिज्ञानी साधु को
भक्तिपूर्वक नमस्कार उसके उनसे पूछा है कि हे भगवन्! इस असार संसार में
परिभ्रमण करनेवाले प्राणियों को सुख कितना और दुःख कितना प्राप्त होता है, यह
कृपा करके मुझे कहिए।

ततो ऽवादीद्यतिर्भद्र श्रूयतां कथयामि ते।

विभागो दुःशकः कर्तुं संसारे सुखदुःखयो।।

मया निदर्शनं दत्त्वा किञ्चित्तदपि कथ्यते।

न हि बोधयितु शक्यास्तद्विना मन्दमेधसः॥

इस पर वे मुनि बोले कि हे भद्र! सुनो, मैं उसको तुम्हें बतलाता हूँ। यद्यपि संसार में सुख और दुःख का विभाग करना अशक्य है, तो भी मैं दृष्टान्त देकर उसके सम्बन्ध में कुछ कहता हूँ। कारण यह है कि बिना दृष्टान्त के मन्दबुद्धि जनों को समझाना शक्य नहीं है।

अनन्तसत्त्वकीर्णायां संसृत्यामिव मार्गगः।

दीर्घायां कश्र्वनाटव्यां प्रविष्टो दैवयोगतः॥

जैसे-दुर्भाग्य से कोई एक पथिक अनन्त जीवों से परिपूर्ण संसार के समान अनेक जीव-जन्तुओं से व्याप्त किसी लम्बे वन के भीतर प्रविष्ट हुआ।

ऊर्ध्वीकृतकरं रौद्रं कृतान्तमिव कुञ्जरम्।

क्रुद्धं संमुखमायान्तं तत्रोदर्शद् गुरुस्यदम्॥

वहाँ उसने सूँढ़ को ऊपर उठाकर भयानक यमराज के समान अतिशय वेग के सामने आते हुए क्रुद्ध हाथी को देखा।

त्रस्तोऽतोऽग्रीकृतस्तेन पथिको भिल्लवर्त्मना।

अदृष्टपूर्वके कूपे धावमानः पपात सः॥

उस हाथी ने उसे भीलों के मार्ग से अपने आगे कर लिया। तब उससे भयभीत होकर वह पथिक भागता हुआ जिसको पहिले कभी नहीं देखा था ऐसे कुएँ के भीतर गिर पड़ा।

शरस्तम्बं पतंस्तत्र त्रस्तधीः स व्यवस्थितः।

भव्यो धर्ममिवालम्ब्य दुर्गमे नरकालये॥

भयभीत होकर उसमें गिरता हुआ वह तृणपुंज का (अथवा खश के गुच्छे या वृक्ष की जड़ों का) आलम्बन लेकर इस प्रकार से वहाँ स्थित हो गया जिस प्रकार कोई भव्य जीव दुर्गम नरकरूप घर में पहुँचकर धर्म का आलम्बन लेता हुआ वहाँ स्थित होता है।

अधस्तात्सिन्धुरात्रस्तो यावदेष विलोकते।

यमदण्डमिवाद्राक्षीत्तावत्तत्र महाशयुम्॥

हाथी से भयभीत होकर जब तक यह नीचे देखता है तब तक उसे वहाँ यम के दण्डे के समान एक महान् अजगर दिखाई दिया।

आखुभ्यां शुक्लकृष्णाभ्यां पञ्चति स्म स सर्वतः।

खन्यमानं शरस्तम्बं पक्षाभ्यामिव जीवितम्॥

तथा उसने यह भी देखा कि उस तृणपुंज को-जिसके आश्रय से वह लटका हुआ था-श्वेत और काले रंग के दो चूहे सब ओर से इस प्रकार खोद रहे हैं जिस प्रकार कि शुक्ल और कृष्ण ये दो पक्ष जीवित (आयु) को खोदते हैं-उसे क्षीण करते हैं।

उरगांश्वतुरस्तत्र दिक्कतुष्टयवर्तिनः।

ददर्शागच्छतो दीर्घान् कषायानिव भीषणान्॥

इसके अतिरिक्त उसने वहाँ चार कषायों के समान चारों दिशाओं में आते हुए अतिशय भयानक चार लम्बे सर्पों को देखा।

रुष्टेन गजराजेन वृक्षः कूपतटस्थितः।

कम्पितो रभसाभ्येत्यासंयतेनेव संयमः॥

उधर क्रुद्ध उस हाथी ने आकर कुएँ के किनारे पर स्थित वृक्ष को इस प्रकार वेग से झकझोर दिया जिस प्रकार कि असंयमी जीव आराधनीय संयम को झकझोर देता है।

चलिताः सर्वतस्तत्र चलिते मधुमक्षिकाः।

विविधा मधुजालस्था वेदना इव दुःखदाः॥

उस वृक्ष के कम्पित होने से उस के ऊपर छत्तो में स्थित अनेक प्रकार की मधुमक्खियाँ दुःखद वेदनाओं के समान ही मानो सब ओर से विचलित हो उठीं।

मक्षिकाभिरसौ ताभिर्मर्माविद्धिः समन्ततः।

ऊर्ध्वं विलोकयामास दश्यमानो बृहद्व्यथः॥

मर्म को वेधनेवाली उन मधुमक्खियों के द्वारा सब ओर से काटने पर वह पथिक महान् दुःख का अनुभव करता हुआ ऊपर देखने लगा।

ऊर्ध्वीकृतमुखस्यास्य वीक्षमाणस्य पादपम्।

दीनस्यौष्ठतटे सूक्ष्मः पतितो मधुनः कणः॥

उस वृक्ष की ओर देखते हुए उसने जैसे ही अपने मुँह को ऊपर किया वैसे ही उस बेचारे पथिक के ओठों के किनारे एक छोटी-सी शहद की बूँद आ पड़ी।

श्वभ्रबाधाधिकां बाधामवगण्य स दुर्मनाः।

स्वादमानो महासौख्यं मन्यते मधुविप्रुषम्॥

उस समय यद्यपि उसको नरक की वेदना से भी अधिक वेदना हो रही थी, तो भी उसने उस वेदना को कुछ भी न मानकर उस शहद की बूँद के स्वाद में ही अतिशय सुख माना।

अविचिन्त्यैव ताः पीडास्तत्स्वीकृतमुखोऽधमः।

तदेवास्वादानासक्तः सोऽभिलालष्यते पतत्॥

तब वह मूर्ख उन सब पीड़ाओं का कुछ भी विचार न करके अपने मुख में वह शहद लेता हुआ उसी शहद की बूँद के स्वाद में मग्न हो गया और उसी के बार-बार गिरने की अभिलाषा करने लगा।

प्रस्तावेऽत्रास्य पान्थस्य यादृशे स्तः सुखासुखे।

जीवस्य तादृशे ज्ञेये संसारे व्यसनाकरे॥

बस, अब जैसे इस पथिक के प्रकरण में उसे सुख और दुःख दोनों हैं वैसे ही सुख-दुःख इस आपत्तियों के खानस्वरूप संसार के प्राणी के भी समझने चाहिए।

भिल्लवर्त्म मतं पापं शरीरी पथिको जनः।

हस्ती मृत्युः शरस्तम्बो जीवितं कूपको भवः॥

नरकोऽजगरः पक्षौ मूषिकावसितेतरौ।

कषायाः पन्नगाः प्रोक्ता व्याधयो मधुमक्षिकाः॥

मधुसूक्ष्मकणास्वादो भोगसौख्यमुदाहृतम्।

विभागमिति जानीहि संसारे सुखदुःखयोः॥

उपर्युक्त उदाहरण में जिस भीलों के मार्ग का निर्देश किया गया है उसके समान प्रकृत में पाप, पथिक जन के समान प्राणी, हाथी के समान मृत्यु, शरस्तम्ब (तृणपुंज) के समान आयु, कुएँ के समान संसार, अजगर के समान नरक, चूहों के समान कृष्ण

और शुक्ल पक्ष, चार सर्पों के समान चार कषाएँ, मधुमक्खियों के समान व्याधियाँ तथा शहद के छोटे बिन्दु के स्वाद के समान भोगजनित सुख माना गया है। इस प्रकार हे भव्य, उस पथिक के सुख-दुख के समान संसार में परिभ्रमण करनेवाले प्राणियों के सुख-दुःख के विभाग को समझना चाहिए।

भवे बभ्रम्यमाणानामन्तरं सुखदुःखयो।

जायते तत्त्वतो नूनं मेरुसर्षपयोरिव।।

इस संसार में बार बार परिभ्रमण करनेवाले प्राणियों के सुख और दुख के मध्य में वस्तुतः इतना भारी अन्तर है जितना कि अन्तर मेरु पर्वत और सरसों के बीच में है-संसारी प्राणियों का सुख तो सरसों के समान तुच्छ और दुःख तो मेरु पर्वत के समान महान् है।

दुःखं मेरूपमं सौख्यं संसारे सर्षपोपमम्।

यतस्ततः सदा कार्यः संसारत्यजनोद्यमः।।

जब कि संसार में दुख तो मेरु पर्वत के बराबर बहुत और सुख सरसों के दाने के बराबर बहुत ही थोड़ा (नगण्य) है तब विवेकी जनको निरन्तर उस संसार के छोड़ने का उद्यम करना चाहिए।

येऽणुमात्रसुखस्यार्थं कुर्वते भोगसेवनम्।

ते शङ्के शीतनाशाय भजन्ते कुलिशानलम्।।

जो मूर्ख परमाणु प्रमाण सुख के लिए विषयभोगों का सेवन करते हैं वे मानो शैत्य को नष्ट करने के लिए वज्राग्नि का उपयोग करते हैं, ऐसी मुझे शंका होती है। अभिप्राय यह है कि जैसे वज्राग्नि से कभी शीत का दुःख दूर नहीं किया जा सकता है वैसे ही इन्द्रिय विषयों के सेवन से कभी दुःख को दूर करके सुख नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

मृग्यमाणं हिमं जातु वह्निमध्ये विलोक्यते।

संसारे न पुनः सौख्यं कथंचन कदाचन।।

यदि खोजा जाया तो कदाचित् अग्नि के भीतर शीतलता मिल सकती है, परन्तु संसार के भीतर सुख कभी और किसी प्रकार से भी उपलब्ध नहीं हो सकता है।

दुःखं वैषयिकं मूढा भाषन्ते सुखसंज्ञया।

विध्यातो दीपकः किं न नन्दितो भण्यते जनैः॥

मूर्ख जन विषयों के निमित्त से उत्पन्न हुए दुःख को 'सुख' इस नाम से कहते हैं। सो ठीक भी है-कारण कि क्या लोग बुझे हुए दीपक को 'बढ़ गया' ऐसा नहीं कहते है? कहते ही हैं। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार व्यवहारी जन बुझे हुए दीपको 'बुझ गया' न कहकर 'बढ़ गया' ऐसा व्यवहार करते हैं उसी प्रकार अज्ञानी जन विषय वन से उत्पन्न होनेवाले दुःख में सुख की कल्पना किया करते है।

दुःखदं सुखदं जीवा मन्यन्ते विषयाकुलाः।

कनकाकुलिताः किं न सर्वं पश्यन्ति काञ्चनम्॥

विषयों से व्याकुल हुए प्राणी दुखदायी को सुख देनेवाला मानते हैं। ठीक भी है-धतूरे के फल को खाकर व्याकुल हुए प्राणी क्या सब वस्तुओं को सुवर्ण जैसा पीला नहीं देखते? अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार धतूरे फल के भक्षण से मनुष्य को सब कुछ पीला ही पीला दिखाई देता है उसी प्रकार विषय वन में रत हुए प्राणी को भ्रान्तिवश दुख ही सुखस्वरूप प्रतीत होता है।

संपन्नं धर्मतः सौख्यं निषेव्यं धर्मरक्षया।

वृक्षतो हि फलं जातं भक्ष्यते वृक्षरक्षया॥

प्राणियों को जो सुख प्राप्त हुआ है वह धर्म के निमित्त से ही प्राप्त हुआ है। अतएव उन्हें उस धर्म की रक्षा करते हुए ही प्राप्त सुख का सेवन करना चाहिए। जैसे-बुद्धिमान् मनुष्य वृक्ष से उत्पन्न हुए फल उस वृक्ष की रक्षा करते हुए ही खाया करते हैं।

पश्चन्तः पापतो दुःखं पापं मुञ्चन्ति सज्जनाः।

जानन्तो वह्नितो दाहं वह्नौ हि प्रविशन्ति के॥

सज्जन मनुष्य पाप से उत्पन्न हुए दुखको देखकर उस पाप का परित्याग करते हैं। ठीक है-अग्नि से उत्पन्न होनेवाले संताप को जानते हुए भी कौन-से ऐसे मूर्ख प्राणी हैं जो उसी अग्नि के भीतर प्रवेश करते हो? कोई भी समझदार उसके भीतर प्रवेश नहीं करता है।

सुन्दराः सुभगाः सौम्याः कुलीनाः शीलशालिनः।

भवन्ति धर्मतो दक्षाः शशाङ्क्यशसः स्थिराः।।

जो भी प्राणी सुन्दर, सुभग, सौम्य, कुलीन, शीलवान्, चतुर, चन्द्र के समान धवल यशवाले और स्थिर देखे जाते हैं, वे सब धर्म के प्रभाव से ही वैसे होते हैं।

विरूपा दुर्भगा द्वेष्या दुःकुलाः शीलनाशिनः

जायन्ते पापतो मूढा दुर्यशोभागिनश्चलाः।।

इसके विपरीत जो भी प्राणी कुरूप, दुर्भगा, घृणा करने योग्य, नीच, दुर्व्यसनी, मूर्ख बदनाम और अस्थिर देखे जाते हैं वे सब पाप के कारण ही वैसे होते हैं।

व्रजन्ति सिन्धुरारूढा धर्मतो जनपूजिताः।

धावन्ति पुरतस्तेषां पापतो जननिन्दिताः।।

धर्म के प्रभाव से मनुष्य अन्य जनों से पूजित होते हुए हाथीपर सवार होकर जाया करते हैं और पाप के प्रभाव से दूसरे मनुष्य जननिन्दा के पात्र बनकर उनके (गजारूढ़ मनुष्यों के) ही, आगे-आगे दौड़ते हैं।

लभन्ते वल्लभा रामा लावण्येत्यत्तिमेदिनीः।

धर्मतः पापतो दीना जम्पानस्था वहन्ति ताः।।

प्राणी धर्म के प्रभाव से सौन्दर्य की उत्पत्ति की भूमिस्वरूप प्रिय स्त्रियों को प्राप्त किया करते हैं और पाप के प्रभाव से बेचारे वे हीन प्राणी शिबिका में बैठी हुई उन्हीं स्त्रियों को ढोया करते हैं।

धर्मतो ददते केचिद् द्रव्यं कल्पद्रुमा इव।

याचन्ते पापतो नित्यं प्रसारितकराः परे।।

कितने ही मनुष्य धर्म के प्रभाव से कल्पवृक्षों के समान दूसरों के लिए द्रव्य दिया करते हैं तथा इसके विपरीत दूसरे मनुष्य पाप के प्रभाव से अपने हाथों को फैलाकर याचना किया करते हैं-भीख माँगा करते हैं।

धार्मिकाः कान्तयाशिष्टाः शेरते मणिमन्दिरे।

पापिनो रक्षणं तेषां कुर्वते शस्त्रपाणयः।।

पुण्यशाली मनुष्य स्त्री के द्वारा आलिंगित होकर मणिमय भवन के भीतर सोते

हैं और पाप के प्रभाव से दूसरे मनुष्य हाथ में शस्त्र में ग्रहण करके उक्त पुण्यशाली पुरुष-स्त्रियों की रक्षा किया करते हैं।

भुञ्जते मिष्टमाहारं सौवर्णमत्रसंस्थितम्।

धार्मिकाः पापिनस्तेषामुच्छिष्टं मण्डला इव।।

पुण्यपुरुष सुवर्णमय पात्र में स्थित मधुर आहार को ग्रहण किया करते हैं, और पापी जन कुत्तों के समान उनकी जूठन को खाया करते हैं।

धार्मिका वसते वस्त्रं महार्घं कोमलं धनम्।

लभन्ते य शतच्छिद्रं कौपीनमपि पापिनः।।

धर्मात्मा जन प्रशस्त, बहुमूल्य, कोमल और सघन वस्त्र को प्राप्त करते हैं, परन्तु पापी जन सौ छेदोंवाली लँगोटी को भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं।

गीयन्ते पुण्यतो धन्या लोकविख्यातकीर्तयः।

गायन्ति पुरतस्तेषां पापतश्चित्रचाटवः।।

पुण्य के उदय से जिन की कीर्ति लोक में फैली हुई ऐसे प्रशंसनीय पुरुषों का यशोगान किया जाता है और पाप के उदय से इनकी अनेक प्रकार से खुशामद करनेवाले दूसरे जन उनके आगे उन्हीं की कीर्ति को गाया करते हैं।

चक्रिणस्तीर्थकर्तारः केशवाः प्रतिकेशवाः।

सर्वे धर्मेण जायन्ते कीर्तिव्याप्तजगत्त्रयाः।।

तीनों लोकों को अपनी कीर्ति से व्याप्त करनेवाले चक्रवर्ती, तीर्थकर, नारायण और प्रतिनारायण ये सब धर्म के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं।

वामनाः पामनाः खञ्जा रोमशाः किङ्कराः शठाः।

जायन्ते पापतो नीचाः सर्वलोकविनिन्दिता।।

इसके विपरीत सब लोगों के द्वारा अतिशय निन्दित बौने, खुजलीयुक्त शरीरवाले, कुबड़े, अधिक रोमोंवाले, दास, मूर्ख और नीच जन पाप के उदय से उत्पन्न हुआ करते हैं।

धर्मः कामार्थमोक्षाणं काडिक्षमानां वितारकः।

अधर्मो नाशकस्तेषां सर्वानर्थमहाखनिः।।

धर्म तो अभीष्ट काम, अर्थ और मोक्ष इनका देनेवाला तथा सब अनर्थों की खानस्वरूप अधर्म उन्हीं कामादिकों को नष्ट करनेवाला है।

प्रशस्तं धर्मतः सर्वमप्रशस्तमधर्मतः।

विख्यातमिति सर्वत्र बालिशैरपि बुध्यते।।

लोक में जितने भी प्रशंसनीय पदार्थ हैं वे सब धर्म के प्रभाव से तथा जितने भी निन्दनीय पदार्थ हैं वे सब पाप के प्रभाव से होते हैं, वह सर्वत्र विख्यात है और इसे मूर्ख भी जानते हैं।

प्रत्यक्षमिति विज्ञाय धर्माधर्मफलं बुधाः।

अधर्म सर्वथा मुक्त्वा धर्म कुर्वन्ति सर्वदा।।

इस प्रकार धर्म और अधर्म के फल को प्रत्यक्ष में जान करके विवेकी जीव सब प्रकार से अधर्म का परित्याग करते हुए निरन्तर धर्म किया करते हैं।

नीचा एकभवस्यार्थं किञ्चित्तत्कर्म कुर्वते।

लभन्ते भवलक्षेषु यतो दुःखमनेकशः।।

नीच पुरुष एक भव में ही किञ्चित् सुख की अभिलाषा से यह कार्य कर बैठते हैं कि जिससे उन्हें लाखों भवों में अनेक प्रकार के दुःखों को भोगना पड़ता है।

दुःसहासुखसंवधिविषयासवमोहिताः।

कृपणाः कुर्वते पापमद्यक्षीनेऽपि जीविते।।

क्षुद्र जन दुःसह दुखको बढ़ानेवाली विषयरूप मदिरा के सेवन में मुग्ध होकर जीवन के आज-कल रहनेवाला (नश्वर) होने पर भी पाप कर्म को किया करते हैं।

न किञ्चिद् विद्यते वस्तु संसारे क्षणभङ्गरे।

शर्मदं सहगं पूतमात्मनीनमनश्चरम्।।

क्षणनश्वर संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो कि सुखप्रद, जीव के साथ जाने वाली, पवित्र, आत्मा के लिए हितकारक और स्थायी हो।

तारुण्यं जरसा ग्रस्तं जीवितं समवर्तिना।

संपदो विपदा पुंसां तृष्णैका निरुपद्रवा।।

मनुष्यों की युवावस्था (जवानी) बुढ़ापे, जीवित यम (मृत्यु) से और सम्पत्तियाँ

विपत्ति से व्याप्त हैं। हाँ, यदि कोई बाधा से रहित है तो वह उनकी एक तृष्णा ही है। अभिप्राय यह है कि युवावस्था, जीवन और सम्पत्ति ये सब यद्यपि समयानुसार अवश्य ही नष्ट होनेवाले हैं फिर भी अज्ञानी मनुष्य विषयतृष्णाको नहीं छोड़ते हैं-वह उनके साथ युवावस्था के समान वृद्धावस्था में भी निरन्तर बनी रहती है।

आरोहतु धराधीशं धात्रीं भ्राम्यतु सर्वतः।

प्राणी विशतु पातालं तथापि ग्रसतेऽन्तकः।।

प्राणी चाहे पर्वत के ऊपर चढ़ जावे, चाहे पृथिवी के ऊपर सब ओर घूमे, और चाहे पातालमें प्रविष्ट हो जावे; तो भी यमराज उसे अपना ग्रास बनाता ही है-वह मरता अवश्य है।

सज्जनाः पितरो भार्याः स्वसारो भ्रातरोऽङ्गजाः।

नागच्छन्तं क्षमा रोद्धुं समवर्तिमतङ्गजम्।।

सत्पुरुष, पिता (गुरुजन), स्त्रियाँ, बहिनें, भाईजन और पुत्र; ये सब आते हुए उस यमराजरूप उन्मत्त हाथी के रोकने में समर्थ नहीं है-मृत्यु से बचानेवाला संसार में कोई भी नहीं है।

हस्त्यश्वरथपादाति बलं पुष्टं चतुर्विधम्।

भक्ष्यमाणं न शक्नोति रक्षितुं मृत्युरक्षसा।।

हाथी, घोड़ा, रथ और पादचारी; यह परिपुष्ट चार प्रकार का सैन्य भी मृत्युरूप राक्षस के द्वारा खाये जाने वाले प्राणी की रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं।

दानपूजामिताहारमन्त्रतन्त्ररसायनैः।

पार्यते न निराकर्तुं कोपनो यमपन्नगः।।

दान, पूजा, परिमित भोजन, मन्त्र, तन्त्र और रसायन (रोगनाशक औषधि) इनके द्वारा भी उस क्रोधी यमरूप सर्प का निराकरण नहीं किया जा सकता है।

स्तनंधयो युवा वृद्धो दरिद्रः सधनोऽधनः।

बालिशः कोविदः शूरः कातरः प्रभुरप्रभुः।।

वदान्यः कृपणः पापी धार्मिकः सज्जनः खलः।

न कोऽपि मुच्यते जीवो दहता मृत्युवह्निना।।

स्तनपान करनेवाला शिशु, युवा, वृद्ध, दरिद्र, धनवान्, निर्धन, मूर्ख, विद्वान्, शूर कायर, स्वामी, सेवक, दाता, सूम, पापी, पुण्यात्मा, सज्जन, और दुर्जन; इनमें से कोई भी जीव उस जलानेवाली मृत्यु से नहीं छूट सकता है-समयानुसार ये सब ही मरण को प्राप्त होनेवाले हैं।

हन्यन्ते त्रिदशा येन बलिनः सपुरंदराः।

न नरान्निघ्नतस्तस्य मृत्योः खेदोऽस्ति कश्चन।।

दह्यन्ते पर्वता येन दृढपाषाणबन्धनाः।

विमुच्यन्ते कथं तेन वह्निना तृणसंचयाः।।

जिस मृत्यु के द्वारा इन्द्र के साथ अतिशय बलवान् देव भी मारे जाते हैं, उस मृत्यु को मनुष्यों को मारने में कोई खेद नहीं होता है। ठीक ही है-जो अग्नि मजबूत पत्थरों से सम्बन्धित पर्वतों को जला डालती है वह अग्नि तृणसमूहों (घास-फूस) को भला कैसे छोड़ सकती है? नहीं छोड़ती है।

नोपायो विद्यते कोऽपि न भूतो न भविष्यति।

निवार्यतो यमो येन प्रवृत्तः प्राणिर्चर्वणे।।

वह कोई भी उपाय न वर्तमान में है, न भूतकाल में हुआ है, और न भविष्य में होनेवाला है; जिसके कि द्वारा जीवों के चबाने में प्रवृत्त हुए यम को रोका जा सके-उनको मरने से बचाया सकता हो।

सर्वज्ञभाषितं धर्मं रत्नत्रितयलक्षणम्।

विहाय नापरः शक्तो जरामरणमर्दने।।

सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट रत्नत्रयस्वरूप धर्म को छोड़कर और दूसरा कोई भी जरा एवं मृत्यु नष्ट करने में समर्थ नहीं है-यदि जन्म, जरा एवं मरण से कोई बचा सकता है तो वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप रत्नत्रय ही बचा सकता है।

जीविते मरणे दुःखे सुखे विपदि संपदि।

एकाकी सर्वदा जीवो न सहायो ऽस्ति कश्चन।।

जीवित और मरण, सुख और दुख तथा सम्पत्ति और विपत्ति इनके भोगने में प्राणी निरन्तर अकेला ही रहता है; उसकी सहायता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है।

भिन्नप्रकृतिका भिन्ना जन्तोर्यऽत्रैव बान्धवाः।

तेऽमुत्र न कथं सन्ति निजकर्मवशीकृताः॥

भिन्न-भिन्न स्वभाववालों जो बन्धुजन इसी भव में प्राणी से भिन्न हैं वे अपने-अपने कर्म के आधीन होकर भला परभव में कैसे भिन्न नहीं होंगे? भिन्न होंगे ही।

नात्मनः किंचनात्मीयं निरस्यात्मानमञ्जसा।

अयं निजः परश्चायं कल्पना मोहकल्पिता।।

वास्तव में अपनी आत्मा को छोड़कर और कुछ भी अपना निजी नहीं है। यह अपना है यह दूसरा है, यह केवल मोह के द्वारा कोरी कल्पना की जाती है।

आत्मनः सह देहेन नैकत्वं यस्य विद्यते।

बहिर्भूतैः कथं तस्य मित्रपुत्राङ्गनादिभिः॥

जिस आत्मा का शरीर के साथ भी एकता नहीं है, उसका क्या मित्र, पुत्र और स्त्री आदि बाहरी पदार्थों के साथ कभी एकता हो सकती है? नहीं हो सकती है।

कार्यमुद्दिश्य निःशेषा भजन्त्यत्र जने जनाः।

न वाचमपि यच्छन्ति स्वकीयां कार्यवर्जिताः॥

समस्त जन अपने कार्य के उद्देश्य से ही यहाँ मनुष्य की सेवा करते हैं। कार्य से रहित होने पर वे अपने वचन को भी नहीं देते हैं-बात भी नहीं करते हैं।

न कोऽपि कुरुते स्नेहं विना स्वार्थेन निश्चितम्।

क्षीरक्षये विमुञ्चन्ति मातरं किं न तर्णकाः॥

स्वार्थ के बिना निश्चय से कोई भी स्नेह नहीं करता है। ठीक ही है-दूध के नष्ट हो जाने पर क्या नवजात बछड़े भी माँ को (गायको) नहीं छोड़ देते हैं? छोड़ ही देते हैं।

दुःखदं सुखदं मत्वा स्थावरं गत्वरं जनाः।

वतानात्मीयमात्मीयं कुर्वते पापसंग्रहम्॥

यह खेद की बात है कि प्राणी दुखदायक वस्तु को सुखदायक, अस्थिर को स्थिर और पर को स्वकीय मानकर यों ही पापका संचय करते हैं।

पुत्रमित्रशरीरार्थं कुर्वते कल्मषं जनाः।

श्वभ्रादिवेदनां घोरां सहन्ते पुनरेककाः॥

प्राणी पुत्र, मित्र और शरीर आदि के लिए तो पापाचरण करते हैं, परन्तु उससे उत्पन्न होनेवाली नरकादि की वेदना को भोगते वे अकेले ही हैं।

न क्वापि दृश्यते सौख्यं मृग्यमाणं भवार्णवे।

उद्वेष्टितेऽपि किं सारो रम्भास्तम्भे विलोक्यते।।

खोजने पर संसाररूप समुद्र के भीतर कहीं पर भी सुख नहीं दिखता है। ठीक ही है-केले के खम्भे को छीलने पर भी क्या उसमें कभी सार देखा जाता है? नहीं देखा जाता है।

न कोऽपि सह गन्तेति जानद्धिरपि सज्यते।

यत्तदर्थं महारम्भे मूढत्वं किमतः परम्।।

कोई भी बाह्य पदार्थ अपने साथ जानेवाला नहीं है, यह जानते हुए भी प्राणी जो उन्हीं पदार्थों के निमित्त से महान् आरम्भ में प्रवृत्त होते हैं; इससे दूसरी मूर्खता और कौन-सी होगी? अभिप्राय यह है कि जब कोई भी चेतन व अचेतन पदार्थ प्राणी के साथ नहीं जाता है तब उसके निमित्त से व्यर्थ ही पापकार्य में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

अक्षार्थसुखतो दुःखं यत्तपः क्लेशतः सुखम्।

तदक्षार्थसुखं हित्वा तप्यते कोविदैस्तपः।।

चूँकि इन्द्रियविषयजनित सुख से भविष्य में दुःख तथा तपश्चरणजनित दुःख से भविष्य में अतिशय सुख प्राप्त होता है, इसलिए विद्वज्जन उस इन्द्रियविषयजनित सुख को छोड़कर तप को किया करते हैं।

ये यच्छन्ति महादुःखं पोष्यमाणा निरन्तरम्।

विषयेभ्यः परस्तेभ्यो न वैरी कोऽपि दुस्त्यजः।।

निरन्तर पोषण करने पर भी जो विषय महान् दुःख दिया करते हैं उनसे दूसरा और कोई भी दुःसह शत्रु नहीं हो सकता है। अभिप्राय यह है कि इन्द्रियविषय शत्रु से भी अधिक दुखदायक हैं। कारण कि शत्रु तो प्राणी को केवल उसी भव में दुःख दे सकता है, परन्तु वे विषय उसे अनेक भवों में भी दुःख दिया करते हैं।

नायान्ति प्रार्थिताः क्वापि ये यान्त्यप्रेषिताः स्वयम्।

आत्मीयास्ते कथं सन्ति धनबन्धुगृहादयः।।

जो धन, बन्धु और घर आदि प्रार्थना करने पर कहीं पर आते नहीं है और भेजे बिना स्वयं ही चले जाते हैं वे धनादि भला अपने कैसे हो सकते है? अभिप्राय यह है कि जो धन आदि बाह्य पदार्थ हैं उनका संयोग और वियोग अपनी इच्छानुसार कभी भी नहीं होता है-वे प्राणी के कर्मानुसार स्वयं ही आते और जाते रहते हैं। इसीलिए उनके संग्रह में प्रवृत्त होकर पापकार्य करना योग्य नहीं है।

संसारे यत्र विश्वासस्ततः संपद्यते भयम्।

अविश्वासः सदा यत्र तत्र सौख्यमनुत्तरम्।।

संसार में जिन बाह्य पदार्थों के विषय में विश्वास है उनसे भय उत्पन्न होता है-वे वास्तव में दुःख ही देनेवाले हैं और जिन सम्यग्दर्शनादि या तपश्चरणादि में प्राणी का कभी विश्वास नहीं रहता है उनसे अनुपम सुख प्राप्त होता है।

आत्मकार्यमपाकृत्य देहकार्येषु ये रताः।

परकर्मकराः सन्ति परे तेभ्यो न निन्दिताः।।

जो प्राणी आत्मकार्य को छोड़कर शरीर के कार्यों में संलग्न रहते हैं वे परके ही गुलाम रहते हैं, उनसे निकृष्ट और दूसरे नहीं है।

अनेकभवसौख्यानि पावनानि हरन्ति ये।

तस्करेभ्यो विशिष्यन्ते न कथं ते सुतादयः।।

जो पुत्र-मित्रादि अनेक भवों के पवित्र सुखों का अपहरण किया करते हैं वे भला चोरों में विशिष्ट कैसे न होंगे? उन्हें लोकप्रसिद्ध चोरों से भी विशिष्ट चोर समझना चाहिये-कारण कि चोर तो धन आदि का अपहरण करके एक ही भव के सुख को नष्ट करते हैं, परन्तु ये विशिष्ट चोर अपने निमित्त से प्राणी को पापाचरण में प्रवृत्त करके उसके अनेक भवों के सुख को नष्ट किया करते हैं।

अनात्मनोनमालोच्य सर्वं सासारिकं सुखम्।

आत्मनीनः सदा कार्यो बुधैर्धर्मा जिनोदितः।।

जितना कुछ भी सांसारिक सुख है वह सब आत्मा के लिए हितकारक नहीं है-उसको नरकादि के कष्ट में डालने वाला है, ऐसा विचार करके विवेकी जनों को निरन्तर जिनेन्द्र के द्वारा उपदिष्ट धर्म का आचरण करना चाहिए, क्योंकि आत्मा के

लिए हितकारक वही है।

धर्मोऽस्ति क्षान्तिः कोपं मानं मार्दवतोऽस्यतः।

मायामार्जवतो लोभं क्षिप्रं संतोषतः परः।।

जो जीव क्षमा के आश्रय से क्रोध को, मृदुता के आश्रय से मान को, ऋजुता (सरलता) के आश्रय से माया को तथा सन्तोष के आश्रय से लोभ को भी शीघ्र फेंक देता है-नष्ट कर देता है-उसके धर्म रहता है।

निर्मलं दधतः शीलं धर्मोऽस्ति जिनमर्चतः।

पात्रेभ्यो ददतो दानं सदा पर्वण्यनाश्रुषः।।

जो भव्य जीव सदा निर्मल शील को धारण करता है, जिन भगवान् की पूजा करता है, पात्रों के लिए दान देता है, तथा पर्व (अष्टमी आदि) में उपवास करता है; उसके धर्म होता है (वह धर्मात्मा है)।

देहिनो रक्षतो धर्मो वदतः सूनृतं वचः।

स्तेयं वर्तयतो रामां राक्षसीमिव मुञ्चतः।।

धीरस्य त्यजतो ग्रन्थं संतोषामृतपायिनः।

वत्सलस्य विनीतस्य धर्मो भवति पावनः।।

जो प्राणी अन्य प्राणियों की रक्षा करता है, सत्य वचन बोलता है, चोरी का परित्याग करता है, स्त्री को राक्षसी के समान छोड़ देता है, तथा परिग्रह का त्याग करके सन्तोषरूप अमृत का पान करता है; उसी धीर प्राणी के पवित्र धर्म होता है। ऐसा प्राणी नम्रीभूत होकर धर्मात्मा जनों से अतिशय अनुराग करनेवाला होता है।

यो भावयति भावेन जिनामिति भाषितम्।

विध्यापयति संसारवज्रवह्निं सुदुःखदम्।।

जो भव्य जीव यथार्थ में जिनदेव के भाषित (जिनागम) का विचार करता है वह अतिशय कठिनाई से शान्त होनेवाली संसाररूप वज्र-अग्नि को बुझाता है।

योगिनो वचसा तेन प्रीणिता निखिला सभा।

पर्जन्यस्येव तोयेन मेदिनी तापनोदिता।।

उन जिनमति मुनिराज के इस कथन से (धर्मोपदेश से) सारी सभा इस

प्रकार से प्रसन्न हुई जिस प्रकार के ताप को नष्ट करनेवाले मेघ के जल से पृथिवी प्रसन्न हो जाती है।

विश्व प्रवासी दिवस: 2018 में 1.36 लाख लोगों ने घर छोड़ा, ये संख्या 2017 से 23 लाख ज्यादा

यूएन रिपोर्ट: दुनिया में 108 में से एक व्यक्ति विस्थापित; युद्ध, हिंसा और उत्पीड़न से 7 करोड़ लोग घर छोड़ने को मजबूर हुए

संयुक्त राष्ट्र शरणार्थी एजेंसी ने कहा है कि दुनियाभर में हिंसा, युद्ध और उत्पीड़न की वजह से 7 करोड़ से ज्यादा लोग अपने घरों से भागने के लिए मजबूर किए गए। एजेंसी ने सालाना 'ग्लोबल ट्रेंड्स' रिपोर्ट जारी की है। इसके अनुसार धरती पर 108 लोगों में से एक व्यक्ति विस्थापित है। वहीं हर दूसरा शरणार्थी बच्चा है। एक दशक पहले दुनिया में 160 लोगों में एक विस्थापित था और पिछले साल यह संख्या 110 में एक थी, लेकिन अब यह घटकर 108 हो गई। वहीं, 2018 में घरों के छोड़ने को मजबूर लोगों की संख्या 1.36 करोड़ है। यह 2017 की तुलना में 23 लाख ज्यादा है। इसमें 2.59 करोड़ शरणार्थी भी हैं। अब तक की सबसे ज्यादा शरणार्थी संख्या है।

2018 में सिर्फ पांच देशों से दो-तिहाई से ज्यादा शरणार्थी आए

यहां से सर्वाधिक गए

यहां सबसे ज्यादा आए

देश शरणार्थी

देश शरणार्थी

सीरिया 67

तुर्की 37

अफगानिस्तान 27

पाकिस्तान 14

दक्षिण सूडान 23

युगांडा 12

म्यांमार 11

सूडान 11

सोमालिया 0.90

जर्मनी 11

अन्य 67

(संख्या लाख में)

दुनिया के शरणार्थियों में 50% संख्या बच्चों की है।

2017 की तुलना में घर छोड़ने वाले 23 लाख बढ़े।

शरण आवेदन देने वालों में 20 लाख वेनेजुएला से हैं।

एक दशक में 3.5 करोड़ शरणार्थी बढ़ गए

37 हजार लोग हर दिन घर छोड़ने को मजबूर हैं।

4.1 करोड़ लोग अपने ही देश में विस्थापित।

4.3 करोड़, विस्थापित थे वर्ष 2009 तक।

2.5 करोड़ लोग दूसरे देश में शरणार्थी बने।

7.8 करोड़ पर पहुंच गए विस्थापित 2019 में।

35 लाख लोग शरणार्थी के तौर पर रहने के इंतजार में।

इस सबसे बड़ी चुनौती में अच्छी बात यह है कि शरणार्थी के प्रति उदारता और एकजुटता दिख रही है। -फिलिपो ग्रैंडी, उच्चायुक्त, यूएन रिफ्यूजी एजेंसी

“स्व आत्मा की आराधना विरुद्ध सभी काम-भाव त्याग करूँ”

(ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व कारक (हेतु) बाह्य प्रभावना भी न करूँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:-1.आत्मशक्ति...2.क्या मिलिए...)

धन्य हे! मेरा भाव जगा है, आत्मतत्त्व में लगन लगा है।

त्याग के ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व, ध्यान अध्ययन में सतत लगा है॥

मुझ में ही मेरे अनन्त गुण धर्म, तथाहि अनन्त ज्ञान व दर्शन।

अनन्तसुख व अनन्तवीर्य, अतः मैं स्वयंभू व स्वयं में पूर्ण॥ (1)

अतएव मुझे पाने से ही मुझे, प्राप्त होंगे मम उक्त सभी गुणधर्म।

इसलिए मुझे, मुझे ही पाने हेतु, क्षय करूँ सभी द्रव्य भाव कर्म॥

इस हेतु ही चाहिए स्वश्रद्धान ज्ञान चर्या, परावलम्बन से पूर्ण रहित होकर।

धनमान नाम मोह ममत्वरहित, संकल्प विकल्प व संक्लेश रिक्त॥ (2)

उभयलोक भोगाकांक्षा से रहित, दुःखक्षय कर्मक्षय बोधिलाभ निमित्त।

सुगति गमन व जिनगुण सम्पत्ति हेतु, त्याग करना है मुझे समस्त परद्रव्य॥

इस हेतु ही मैं समता शान्ति से, एकान्त मौन से करूँ आत्मा की आराधना।

अन्य की अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा परे, आत्मा की शुद्धि हेतु करूँ आत्मसाधना॥ (3)

यदि ख्याति पूजा लाभ हेतु साधन, शरीर दण्ड मात्र से होगी आत्मविराधना।
विष त्याग बिन कांचुली त्याग से, विषधर (सर्प) सम न होगी आत्मारधना॥
वर्चस्व हेतु होती जो बाह्य प्रभावना, उसमें होती आत्मा की विराधना।
भौतिक निर्माण व तामझाम के कारण, होती त्रस स्थावरों की विराधना॥ (4)
प्रकृष्ट भावना होती प्रभावना, केवल भीड़ धनागमन नहीं प्रभावना।
धर्म प्रभावनीय रत्नत्रय तेजसा सतत, इस हेतु ही बाह्य करणीय प्रभावना॥
श्रावक योग्य काम तो अयोग्य है, गृहस्थ योग्य प्रभावना जो धनाश्रित।
वे भी मेरी साधना में बाधक है, वे सभी न करूँ जो पापमिश्रित॥ (5)
ध्यान अध्ययन मुख्य श्रावक धर्म है, ध्यान अध्ययन मुख्य साधु धर्म है।
धर्मतीर्थ प्रवर्तक होते हैं श्रमण, दानतीर्थ प्रवर्तक होते (हैं) श्रावक॥
स्व-स्व मर्यादा योग्यधर्म पालनीय, रथ के दोनों चक्र सम समानान्तर।
दोनों चक्र ही एक पार्श्व में होने पर, यथा न रथ चले तथा श्रावक मुनिधर्म॥ (6)
जो रागी द्वेषी मोही स्वार्थी गृहस्थ, मम साधना से विपरीत करना चाहते कार्य।
उससे समता से मैं रहूँ निरपेक्ष, अन्यथा मेरी होगी साधना कलंकित॥
आत्मपतनकारी समता विध्वंसक, आगम विरुद्ध जो लोगों से निन्दित।
विषम कलहकारी धनजन पराश्रित, प्रत्यक्ष स्वार्थी से प्रशंसित परोक्ष निन्दित॥ (7)
इत्यादि सभी अनात्म काम करूँ त्याग, स्व पर विश्व कल्याण हेतु प्रयत्न।
मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ चित्त, शुद्ध बुद्ध आनंद हेतु 'कनक' दत्तचित्त॥ (8)
ग.पु.का. दि-22-6-2019, रात्रि 9:41

संदर्भ-

दिशाबोध

अप्रैल-2019

आकलन अंक

धर्म का अर्थ क्या है?

क्या मात्र मंदिर जाना, पूजा-पाठ करना धर्म है?

क्या मात्र व्रत-उपवास करना, अष्टमी-चतुर्दशी करना धर्म है?

क्या मात्र दान-दक्षिणा देना या डाक बोली लेना धर्म है?

क्या मात्र कंदमूल सेवन का त्याग धर्म है?

क्या तीर्थयात्रा या संत-समागम करना मात्र धर्म है?

असल में इन क्रियाओं का उद्देश्य स्वभाव को बदलना है, लेकिन अक्सर लोग जीवनभर यह क्रियाएं करते हैं और इसे ही धर्म बना लेते हैं।

परंतु

क्रोध छोड़कर विनम्र नहीं बनते,

अहंकार छोड़कर सरल नहीं बनते,

ईर्ष्या छोड़कर उदार नहीं बनते,

लोभ छोड़कर संतोषी नहीं बनते।

जब तक व्यक्ति अपने स्वभाव को बदलने के लिए दृढ़ निश्चय नहीं करता, तब तक कठोर सच्चाई यह है कि

कोई भी भगवान, गुरु या धर्म कुछ भी भला नहीं कर सकते।

सबसे पहले अपने आप को बदलें

(कु) स्वभाव बदलो....(कु) भाव बदलो, परिणाम तभी मिलेगा।

संतवाद और पंथवाद से उन्मुक्त उद्देश्यपरक पत्रकारिता

संपादक: डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा

सम्पादकीय

आकलन रिपोर्ट वर्ष: 2018-19

-डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा

दिशा और दशा- वर्ष 2018 का सर्वाधिक चर्चित चातुर्मास आचार्य श्री विद्यासगरजी महाराज संसद का खजुराहो चातुर्मास रहा। खजुराहो अंतरराष्ट्रीय स्तर का प्रसिद्ध पर्यटक स्थल है। प्रवासकाल में वहाँ अनेक प्रेरक प्रसंग देखने-सुनने को मिले, आर्चाश्री की प्रतिष्ठा की अनुगूंज अंतरराष्ट्रीय स्तर तक सुनाई दी, अनेक नए आयाम स्थापित हुए। अर्थ का अनवरत अथाह प्रवाह सर्वत्र चर्चित रहा, वहीं यह चातुर्मास भविष्य के लिए कुछ गंभीर दिशासूचक प्रश्न भी छोड़ गया। कुछ श्वेत वस्त्रधारियों का बढ़ता मंचीय वर्चस्व तथा चातुर्मास की समाप्ति के

बाद क्षेत्र में खड़े हो रहे विवाद समाज को बहुत कुछ सोचने और समझने के लिए विवश कर रहे हैं। समाज द्वारा गठित समिति को दरकिनार करना, प्रभावशाली तत्त्वों द्वारा स्वार्थ साधन हेतु व्यवस्था पर काबिज होना, आर्थिक अनियमितता एवं हिसाब में पारदर्शिता का अभाव आदि ऐसे प्रसंग हैं जो समाज के स्वास्थ्य और भविष्य के लिए कतरई शुभ संकेत नहीं कहे जा सकते।

कुछ तो जरूर है दाल में काला-अतिशय क्षेत्र खजुराहो के अध्यक्ष से प्राप्त अधिकृत जानकारी के अनुसार स्टेट बैंक खजुराहो से 75 लाख रुपयों का भुगतान मात्र दो चेकों से निम्न प्रकार किया गया-पहला चेक नं. 130833, दिनांक 23 अक्टूबर 2018, राशि 40 लाख रुपया। कांचीमान चैरिटेबल के नाम से एवं दूसरा 29 अक्टूबर 2018 को चेक नं. 130834, 35 लाख रुपये उसी कांचीमान चैरिटेबल के नाम भुगतान किए गए। क्षेत्र के इतिहास में पहली बार इतने बड़े भुगतान बिना किसी जानकारी के किए गए। एक अनजान फर्म को गुप्त तरीके से इतनी बड़ी रकम का भुगतान संशय पैदा करता है। जबकि न तो कोई समान आया, न कोई सामान का आदेश दिया गया और न किसी प्रकार की सेवाएं प्रदत्त की गईं। अध्यक्ष के फोन पर प्रदत्त की जाने वाली एस.एम.एस सुविधा को भी बंद कर दिया गया। कमेटी के 41 में से करीब 31 प्रबंध कारिणी सदस्यों को पूर्ण अंधकार में रखा गया। यह तो मात्र एक नमूना है। अगर अध्यक्ष जी की यह स्थिति है तो पूरे घटनाक्रम के बारे में आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है। ज्ञात हुआ है कि वहां थाना-कोर्ट-कचहरी सब चल रही है और गुटबंदी अपने चरम पर है।

भगवान् महावीर की 2618 वीं जयंती पर विशेष....

हमने जिंदगी भर कुछ न किया.....?

-राजेन्द्र जैन महावीर

किसी मशहूर कवि की पंक्तियाँ हैं-

हमने जिंदगी भर कुछ न किया, सिर्फ सोचते रहे।

धूल चेहरे पर जर्मीं थी, आईना पोछते रहे।

क्या इस तरह की हालत हमारी वर्तमान में हो रही है? जैन जगत् में आज देखा वहाँ से जो खबरें आ रही है वे चिंतनीय-निंदनीय व शर्मनाक है। जैन समाज का भारत देश में जो स्थान है व रहा है वह किसी से छुपा हुआ नहीं है। आज यह समाज जिस दौर से गजुर रहा है वह दौर निराशाजनक है। हम पहले दिगम्बर-श्वेताम्बर में बटे, वर्तमान में जितने मंदिर है, जितने आचार्य, मुनिराज, विद्वतजन है उनके नाम पर बटे है। पहले हम मुनियों-आचार्यों के नाम पर एक थे, आज सबके मुनि-आचार्य, आर्यिका अलग-अलग हैं। जिस नगर में जितने विद्वतजन है उतने ही गुट उनके समर्थक व विरोधी हैं। विरोधी ऐसे है कि राजनीतिक दल तो एक हो जाते हैं लेकिन ये भक्तजन कभी एक नहीं होते है। और बड़े मजे की बात यह है कि सब एकता के लिए हो रहा है। आयोजन शक्ति प्रदर्शन के केन्द्र बन गए हैं। प्रत्येक आयोजन की कमेटी अलग होती है। भोजन-टेन्ट-आवास-बेण्ड-भीड़ आयोजन की सफलता का पैमाना हो गया है।

मेरी यह सोच है कि आयोजन के बाद वह निकलकर आए कि आयोजन-प्रयोजन-प्रवचन से इतने लोगों ने जैनधर्म के सिद्धांतों को अंगीकार करने का निर्णय लिया है तो आयोजन की सार्थकता है, प्रभावना के नाम पर सब लोग जिन्हें जिस माध्यम से मौका मिलता है वे सब केवल और केवल अपनी ही भावनाएँ थोपने का कार्य करते नजर आ रहे है।

भगवान महावीर ने भी क्या इस तरह की प्रभावना की होगी?

प्रख्यात लेखक डॉ.जयकुमार जलज जी ने तो लिखा है कि-महावीर के जीवन में कोई हड़बड़ी नहीं है। उनका जीवन भागता हुआ नहीं, ठहरकर सोचता हुआ, शांत, तटस्थ और चीजों के बिना किसी पूर्वग्रह के समझने के लिए प्रस्तुत होता हुआ है। जीवन में कोई नाटकीयता नहीं, कोई तमाशा नहीं। वे लिखते हैं दूसरों के लिए उपादान बनने की कोशिश एक प्रकार की हिंसा है। भगवान महावीर किताबी आदमी नहीं है। वे अकेले तत्वज्ञान को मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं मानते, उनका ज्ञान अनिवार्यतः जीवन से जुड़ा हुआ है। वे मानते हैं कि अगर ज्ञान सम्यक है तो वह जीवन में उतरेगा ही, जैसे पानी अपने आप ढलान की तरफ चल देता है।

यही तक नहीं वे लिखते हैं कि अकेला ज्ञान मुखौटा है तो अकेला आचरण भी मुखौटा है और मुखौटा सदैव दुःख का कारण बनता है। मनुष्य का सबसे बड़ा दुःख ही यह है कि वह हर वक्त एक मुखौटे में रहता है, जो वह है नहीं दिखना चाहता है।

भगवान महावीर के बुनियादी चिंतन में लिखी एक-एक बात बताती है कि भगवान महावीर की मंशा क्या थी और हम कहाँ से कहाँ आ गए हैं। बड़ा दुःख होता है कि प्रत्येक आयोजन जो प्रभावना के नाम पर सम्पन्न हो रहा है वह समाज में दुर्भावना फैला रहा है। आखिर इसके लिए जिम्मेदार कौन है?

क्या हमारा धर्म विकृत हो गया या इसके अनुयायी भगवान महावीर के मन में अपनी बात डालकर इसे विकृत कर रहे हैं। बड़ी दुविधा की स्थिति है। हम तुलनात्मक रूप से देखे तो पाते हैं कि-

1. हमारा सामाजिक ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो गया है।
2. विगत 20-25 वर्षों में पंथवाद के नाम पर सिर फुटव्वल की स्थिति निर्मित हुई है।
3. प्रत्येक ग्राम-नगर में मंदिर निर्माण की बाढ़ आई हुई है।
4. तीर्थक्षेत्रों पर नवनिर्माण अत्याधुनिक सुविधाएँ व लक्जरी जीवन की सारी सुविधाएँ हैं जो जैन आगमानुकूल नहीं कहीं जा सकती है।
5. शिक्षा संस्थान बढ़ रहे हैं लेकिन वे अपने पंथ की कट्टरता में एक ऐसा वर्ग पैदा कर रहे हैं जो धर्म के नाम पर झगड़ सकता है शांत नहीं रह सकता है।
6. भगवान महावीर ने जो निर्वाण का पथ बताया उसे इस तरह से प्रस्तुत किया जा रहा है, कि निर्वाण नहीं पहले निर्माण करो, जैसे निर्माण के माध्यम से ही मोक्ष होगा।
7. मंदिरों-तीर्थों से पुजारी-मैनेजर गायब हैं, मिल नहीं रहे हैं, मिल रहे हैं तो अजैन हैं जिनकी निष्ठा तीर्थों-मंदिरों के प्रति नहीं पदाधिकारियों के प्रति ज्यादा है।
8. प्रत्येक तीर्थ पर अभिषेक-शांतिधारा की बोली और पुण्य कमाने की होड़ ने आमजनों की श्रद्धा को नुकसान पहुँचाया है।
9. मुनि-आर्यिका माताजी के विहारों में पैदल चलने वाले समाप्त हो गए हैं।
10. मुनि-आर्यिका संघों में चौका लगाने वाले अधिकांशजन किराये के लगाने पड़

रहे हैं।

11. बड़े-बड़े शहरों में एक-दो संत का निर्वाह भी मुश्किल हो रहा है।

12. धर्म के नाम पर, मंदिरों के नाम पर बंटते हम लोग जीवन्तजनों से वह व्यवहार कर रहे हैं जो क्षम्य नहीं है।

13. चारित्रिक शिथिलाचार की खबरें आम हो रही हैं। जिनकी खबरें नहीं छपी हैं उनके बारे में समाज को मालूम है लेकिन कोई बोलता नहीं है, पकड़े जाने पर बोलते हैं। पुराने किस्से चटखारे लेकर सुनाये जाते हैं।

14. वाणी का, परिग्रह का, आचरण का, चर्या का शिथिलाचार तो मानों क्षम्य जैसा हो गया है। इस पर रोक न होने से ही शिथिलाचार का लेवल बढ़ रहा है।

15. पुरस्कारों के नाम पर विद्वान-पत्रकार-लेखकों-वक्ताओं-शोधकर्ताओं को सम्मानित कर अपने अंडर में करने की प्रवृत्ति चरम पर है।

16. जो मोबाईल बच्चों को देने का निषेध करते हैं वहां स्मार्टफोन अनिवार्य अंग बनता जा रहा है।

17. अब विद्वत गोष्ठियाँ, सम्मेलन विद्वानों की योग्यता पर नहीं, अपने-अपने गुट व स्वयं की प्रशंसा सुनने के लिए होते हैं, साथ ही उनके ठेके दिये जाने लगे हैं।

18. लगभग हर संघ, मुनिराज-आर्यिकाजी की अपनी एक पत्रिका है, आम निष्पक्ष पत्र-पत्रिकाएँ प्रायः बंद होती जा रही हैं क्योंकि उनके पाठकों में निरन्तर कमी आ रही है।

19. प्रभावी साधु कैसा भी हो वह एकल विहारी हो, आर्यिका-ब्रह्मचारिणी दीदी के साथ हो उन्हें कोई संस्था-विद्वान-पदाधिकारी बोलने नहीं जाते, जो प्रभावी नहीं है उस पर सब अंगुली उठाते हैं, यह दोहरा मापदण्ड है।

20. सारा खेल अर्थ पर निर्भर हो गया है जिसके पास आर्थिक समृद्धि है चाहे वह संस्था हो, साधु हो, श्रावक हो, विद्वान हो, लेखक हो उसे सब छूट है क्योंकि वह अर्थ से सब मैनेज कर लेता है।

21. नवीन तीर्थों की स्थापना में ज्यादा जोर है प्राचीन तीर्थों पर कब्जे हो रहे हैं, पुजारी-मैनेजर मिल नहीं रहे हैं।

22. अहिंसा परमो धर्म की जय बोलने वाले हम लोग दूरस्थ अंचलो में स्थित

तीर्थों के पुजारी-मैनेजर को जो वेतन देते हैं उतना अध्यक्ष-महामंत्री के घर पर दूध का प्रतिमाह बिल आता है। शोषण की पराकाष्ठा तीर्थों पर देखी जा सकती है।

23. आयाजनों में बैण्ड-टेन्ट-मंच-माला-माईक-स्वप्रशंसा हेतु लाखों रूपये खर्च करने वाले हम लोगों का क्या उद्देश्य है यह समझ में ही नहीं आता है।

24. कहने को तो हम 24 तीर्थकरो की जय बोलते हैं लेकिन उनमें भी भेदभाव व अपनी आकांक्षा के लिए उन्हें किसी भी मनोकामना की पूर्ति के लिए बता देना, यह कार्य तेजी से बढ़ रहा है।

लिखने को तो बहुत कुछ है, भगवान महावीर की जयंती पर उनकी प्रशंसा ही लिखना चाहिये, लेकिन मैंने प्रयास किया है कि भगवान महावीर का जीवन वह नहीं था जैसा आजकल हो रहा है। किसी कवि ने दो लाईनों में सब कुछ स्पष्ट कर दिया है-

सत्य अहिंसा, (दया) प्रेम से, अपना बस इतना ही नाता है।

दीवालों पर लिख देते हैं, दीवाली पर पुत जाता है।।

विचारणीय है, भगवान महावीर के सिद्धान्त ही थे कि अहिंसा के दम पर महात्मा गांधी ने भारत आजाद कराया। विश्व में सबसे ज्यादा प्रांसगिकता है तो आज भगवान महावीर के सिद्धान्तों की। लेकिन आज बड़ा दुःख होता है कि हम भगवान महावीर को तो बहुत मानते हैं लेकिन उनकी बातों को बिल्कुल नहीं मानते हैं। आखिर कब तक यह चलेगा। हम हमेशा लड़ते ही रहते हैं। लड़ाई अहंकार की है। विचार करने की आवश्यकता है कि बच्चों को मेरी भावना का पाठ सिखाया जाय या समयसार की गाथाएँ रटाई जाए। आज समयसार तो कण्ठस्थ हो रहा है लेकिन मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे गायब हो रहा है। धार्मिक सहिष्णुता गायब हो रही है। तेरह-बीस, मुनि-मुमुक्षु की खाई ऐसी हो रही है कि विवाह संबंध भी अब इस कारण टूट व जुड़ रहे हैं। एक ऐसे समाज का निर्माण हो रहा है कि हमें ऐसा लड़का चाहिये जिसके घर चौका न लगता हो, अब बताईये चौका मतलब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की शुद्धि होती है, जहाँ चौका की बात ही न होती हो ऐसा घर क्या जैन का हो सकता है?

आयोजनों की अंधी दौड़ में उलझा जैन समाज महावीर जयंती पर प्रदर्शन करता

है, जुलूस में जगह-जगह ठंडाई से स्वागत और प्लास्टिक डिस्पोजल फेकें जाते हैं जिनमें लाखों चीटियाँ पैरो तले मरती है और हम जियो और जीने दो, अहिंसा परमो धर्म की जय बोलते हुए आगे बढ़ जाते हैं। बड़ा ही विचारणीय है। महावीर ने तो काँटो को भी नरमाई से छुआ। लोग बेदर्द है कि फूलों को भी मसल देते हैं।

भगवान महावीर या अन्य किसी भी महापुरुष की जयंती हम इसलिए मनाते है कि उन्होंने जो विचार दिये उन पर विचार हो, लेकिन मूर्तियों को पूजने व विचारों को मलमल की पोटली में रखकर आरती उतारने का कार्य तेजी से हो रहा है। विचार अब जुलूस की भव्यता, दो मीठे, दो नमकीन, भोजन की शानदार व्यवस्था, ड्रेस-अप, सजावट पर ही हो रहा है। अहिंसा-दया-करुणा-प्रेम-स्नेह का भाव गायब है इसलिए जिन चीजों को सामान्य तौर पर खाने को मना किया जाता है वे रेडिमेड वस्तुएँ, चॉकलेट, बिस्किट, आईस्क्रीम, कच्चे दूध की ठण्डाई, बाजार की मिठाई अब जुलूस की प्रभावना में बाँटी जा रही है, क्या सन्देश जा रहा है। जिस धर्म के व्यक्ति की यह प्रामाणिकता रही है कि उसके व्यक्तव्य को न्यायालय में इसलिए मान्य किया जाता था कि वह जैन है। आज हमने मात्र 50-100 वर्षों में अपनी क्या स्थिति बना ली है, इसके लिए सब जिम्मेदार है। आज जैनियों की संख्या बढ़ाने के लिए तो विचार हो रहा है लेकिन मिटती हुई साख को बचाने के लिए विचार कहाँ हो रहा है। भव्य आगवानी, भव्य आयोजन, भव्य भोजन, भव्य प्रदर्शन, भव्य पाण्डाल, भव्य ड्रेसअप में उलझे हम लोग अपने मनुष्य भव की भव्यता को भूलते जा रहे है और गाते रहते हैं, भव वन में जी भर घूम चूका, कण-कण को जी भर-भर देखा यदि विचार करें तो पाएँगे यह सब मृगतृष्णा है, जिसकी पूर्ति कभी नहीं होगी। भगवान महावीर की जयंती 2618 वर्ष बाद भी यदि मन रही है तो उनके विचारों की शाश्वतता के कारण अन्यथा कई आए और कई चले गए। आइये-विचारों को आदर्श बनाये। भव्य आयोजन नहीं, भव्य स्वयं को बनाये। भगवान महावीर ने हर किस्म के भेदभाव, आडम्बर और कर्मकाण्ड का विरोध किया है। आज क्या जरूरी है क्या गैर-जरूरी है इसमें फर्क करना जरूरी है।

कुल मिलाकर समाज का नेतृत्व दिशाहीन नजर आ रहा है। उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि वह कहाँ से शुरू करें। न तो उसे प्राचीन जैन तीर्थों की विशेष चिंता है

और न ही गरीब जनों के स्थितिकरण की। हर कोई संस्था के शीर्ष पद पर तो बैठना चाहता है, पर जमीनी स्तर पर कार्य करने में किसी की कोई दिलचस्पी नजर नहीं आती है। नेतृत्वहीनता चिंता का विषय है तथा जैन धर्म और समाज दोनों के लिए बहुत हानिकारक है।

पिछले वर्ष भी पंचकल्याणकों, प्रतिष्ठाओं और नये तीर्थों के निर्माण के प्रति हमारा मोह यथावत रहा। करोड़ों रुपए खर्च किये गये। जहाँ कोई पूजा-प्रक्षाल करने वाला नहीं है वहाँ पर भी नए निर्माण हो रहे हैं। यदि इस धन का कुछ प्रतिशत उन जैनों के लिए इस्तेमाल किया जाए जो गरीबी के कारण धर्म परिवर्तन कर रहे हैं तो कितना अच्छा हो। कम से कम उनका स्थितिकरण तो हो सकेगा।

दिंगम्बर जैन संतो की संख्या 1700 तक पहुंच गई, इसमें 130 तो आचार्य हैं। श्वेताम्बर संतो की संख्या तो 12000 से भी अधिक होगी। 10 प्रतिशत के लगभग संत एकल विहारी हैं। जितने अधिक संत, उतनी अधिक उनकी भावना कि मेरे नाम से भी कोई नया तीर्थ बने, कोई नया कार्य हो, मेरे नाम का सिक्का चले, मैं औरों से अलग दिखूँ। इन भावनाओं के चलते नई-नई प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल रहा है। जितने संत उतनी ही उनके नाम की आरती और पूजा। अपने को दूसरे से अलग दिखाने की होड़ में भगवान महावीर ने क्या कहा इस पर चर्चा कम, मैं सही दूसरा गलत इस पर चर्चा अधिक होती है। अपने को अलग दिखाने के चक्कर में कई संत अजीबोगरीब कार्य करते देखे गए हैं। कई संत अपने मार्ग से च्युत होते नजर आ रहे हैं। उसी का नतीजा रहा कि शीतल सागर, प्रतीक सागर, नयन सागर, अनुज सागर आदि प्रकरण समाने आए। अनेक विचित्र बातें भी देखने और सुनने में आईं। एक आचार्य भगवान की मूर्ति की गोदी में बैठे हैं तो दूसरे तलवारबाजी के करतब दिखा रहे हैं और पिस्तौल चला रहे हैं। एक दूसरे महाराज गुफा में बैठकर फल-फूल से पूजा कर रहे हैं तथा कुछ सिद्धि सी कर रहे हैं तो दूसरे अपनी मोटी मूछों पर गर्विता हो रहे हैं। वीतराग भगवान के साथ होली खेली जा रही है। मानो भक्त लोग कह रहे हैं कि हम तो रागी-द्वेषी और पापी हैं ही, वीतराग भगवान को भी हम रागी-द्वेषी बना कर ही दम लेंगे। कुछ संत किसी राजनीतिक पार्टी विशेष को वोट देने के लिए वकालत करते नजर आ रहे हैं, उनके द्वारा टी.वी. तक पर खुला प्रचार किया जा रहे

है। कई विद्वानों व पत्रकारों ने संतो में बढ़ते शिथिलाचार को लेकर चिंता व्यक्त की, एकलविहारी एवं शिथिल।

शिथिलाचारी साधुओं का बहिष्कार करने के निर्णय भी लिए गए। लेकिन हास्यापद यह रहा कि जो अधिक बोलते थे वे ही एकलविहारी मुनियों की गोदी में जाकर बैठने को उत्सुक दिखे।

पिछले वर्ष में व्हाट्सएप और फेसबुक का उपयोग कई गुना बढ़ा है। जैनों के भी अनेक व्हाट्सएप ग्रुप सक्रिय हुए हैं लेकिन अधिकतर ग्रुप दिशाहीन हो गए हैं। जिस उद्देश्य के लिए ग्रुप बना वह लोग भूल गये लेकिन देश की राजनीति उनमें हावी हो गई।

एक बात यह और हुई कि इन ग्रुपों में अजैन देवी-देवताओं को श्रद्धापूर्वक प्रचारित करा जाने लगा। जैनों का शायद ही कोई व्हाट्सएप ग्रुप ऐसा होगा जिसमें हिंदु त्योहारों को प्रमुखता से पोस्ट न किया गया हो। हिंदु देवी देवताओं की पूजा-आरती, उनके उपलक्ष में व्रत-उपवास तथा इनके महत्व से संबंधित अनेक पोस्ट आए दिन सामने आती रहती हैं।

हमारे जैन संत और विद्वान यह बताने में अक्षम रहा है कि जैन धर्म हिंदु धर्म का हिस्सा नहीं है, हिंदु देवी-देवताओं का पूजन व उनके नाम पर व्रत-उपवास करना सही नहीं है। बल्कि उल्टे संत लोग ही हिंदु त्योहारों को कुछ भिन्नता के साथ मनाते व मानने के लिए प्रेरित करते दिखाई दे रहे हैं। जब तक जैन तीर्थकरों, जैन त्याहारों और व्रत उपवासों के बजाय हम हिंदु देवी-देवताओं तथा उनके त्योहारों को महत्व देते रहेंगे तो जैन धर्म का ह्रास होना तो निश्चित ही है।

इस सब चर्चा से निष्कर्ष निकलता है कि गत वर्ष जैन धर्म के लिए बहुत अच्छा नहीं रहा। जिस प्रकार वर्तमान में स्थिति नजर आ रही है उससे लगता है कि आने वाले समय में भी इसमें कुछ खास सुधार होने वाला नहीं है। लेकिन इस सब के बीच एक अच्छी बात यह रही कि जैन समाज की आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर हुई है। इसके चलते अनेक लोग व्यक्तिगत तौर पर गरीब जैनों की मदद के लिए सामने आए हैं। एक सर्वे के अनुसार देश में लगभग 200 ऐसी संस्थाएं हैं जो गरीब जैनों को आर्थिक मदद पहुंचा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर श्वेतांबर संस्थाएं भी कार्यरत है

लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर दिगंबरों में ऐसी कोई समुचित पहल नहीं हो पायी है।

अमेरिका में कैलिफोर्निया के शोधकर्ताओं ने दिमाग के काम करने के तरीके का विश्लेषण किया

दिमाग को नई सूचनाएं उतनी ही पसंद, जितना पैसा: रिसर्च सूचना और धन के लिए दिमाग में एक जैसी प्रतिक्रिया होती है

कोई भी नई जानकारी मिलने पर हमारे दिमाग को ठीक वैसी ही खुशी होती है, जैसी हमें पैसा या पसंदीदा खाना मिलने पर होती है। यह दावा हाल में प्रकाशित एक रिसर्च में किया गया है। इसमें बताया गया है कि जिस तरह लोग कोई जरूरी सदेश नहीं आने पर मोबाइल फोन को बार-बार चेक करते रहते हैं, ठीक उसी तरह हमारा दिमाग सूचनाएं पाने के लिए अपने पैमाने बदलता रहता है। इंसान अमूमन पैसा पाने के लिए ऐसा करता है। दिलचस्प यह है कि शोधकर्ताओं ने अपनी रिसर्च के दौरान जुआ खिलवाकर इसका पता लगाया। सूचना मिलने पर दिमाग के काम करने के तौर-तरीकों का पता लगाने के लिए रिसर्चर्स ने दिमाग की स्कैनिंग कर उसका विश्लेषण किया। अमेरिकी जर्नल प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज ने इसे प्रकाशित किया है। इसमें शोधकर्ताओं ने बताया है कि हमारा मस्तिष्क सूचना या जानकारी को किस तरह से ग्रहण करता है और किस तरह से उसको उपयोगी होने या नहीं होने का आकलन करता है। इसी आधार पर सूचनाओं का उपयोग तय करता है। शोधकर्ता मिंग सू का कहना है कि हमारे दिमाग में सूचना और धन के लिए एक ही न्यूरल कोड होता है। यह बताता है कि हम इसका कितना और कैसे उपयोग करें। जिस तरह में हमें जंक फूड अच्छा लगता है, उसी तरह से कोई भी सूचना हमारे दिमाग को अच्छा महसूस कराती है, भले ही यह जानकारी हमारे किसी काम की न हो। एमआरआई स्कैन के विश्लेषण से शोधकर्ताओं को यह पता चला कि सूचना से दिमाग का केवल वही हिस्सा सक्रिय होता है, जहां से डोपामाइन का रिसाव होता है। डोपामाइन दिमाग में पैदा होने वाला वही रसायन है, जो भोजन करने, पैसा मिलने या ज्यादा दवाएं लेने को सक्रिय होता है। लोगों की जिज्ञासा की न्यूरोसाइंस के जरिए समझने के लिए शोधकर्ताओं ने लॉटरी के जरिए जुए का खेल

कराया। इसमें यह पता लगाया गया कि जीतने के लिए कौन से प्रतिभागी ने कितना रिस्क उठाकर सबसे ज्यादा जानकारी हासिल की। साथ ही इसके लिए वह कितनी रकम देने के लिए तैयार हुआ।

दिमाग में एक सेकंड में 1 लाख से ज्यादा रासायनिक प्रतिक्रिया होती है

रिसर्च में खुलासा हुआ कि इंसान के दिमाग में एक सेकंड में एक लाख से ज्यादा रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती हैं। इसके कारण उम्र के हिसाब से दिमाग परिपक्व होता जाता है। साथ ही नई-नई योग्यताएं हासिल करता है। इंसानी दिमाग हर उम्र में नई बातें सीखने और नई जानकारी पाने के लिए हमेशा तैयार होता है। नया सीखने के कारण दिमाग में झुर्रियों के जैसी बनावट होती रहती है।

कैसे हो उपलब्धि! ? (अनुभव सूक्तियाँ) **(सही साधना बिना साध्य न मिलता)**

(चाल:-1.क्या मिलिए...2.भातुकली...)

शान्ति चाहते किंतु न समता में रहते,

आत्मविशुद्धि आत्मसंयम न करते।

अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा भी न त्यजते,

संकल्प विकल्प संक्लेश न त्यजते॥ (1)

विकास (सफलता) चाहते किन्तु विकार न त्यजते,

ईर्ष्या द्वेष घृणा पक्षपात न त्यजते।

महान् लक्ष्य (न) उदारभाव न रखते,

फैशन-व्यसन व आडम्बर करते॥ (2)

स्वास्थ्य चाहते किन्तु शरीरिक श्रम न करते,

स्वास्थ्यकर पथ्य शुद्ध भोजन न करते।

तनाव द्वन्द्व रहित सरल सहज न होते,

प्रदूषण रिक्त स्थान में निवास न करते॥ (3)

धार्मिक दिखाते किन्तु पावन भाव न करते,

आत्मविश्वास ज्ञान आचरण न करते।
 समता शान्ति से आत्मविशुद्धि न करते,
 आत्मोपलब्धि हेतु साधना न करते॥ (4)
 संकीर्ण पंथ मत भेदभाव भी करते,
 ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व चाहते।
 आडम्बर ढोंग पाखण्ड ठगी भी करते,
 आत्मानुभव से आत्म विकास न करते॥ (5)
साक्षरी बनते किन्तु शिक्षा-संस्कृति न जानते,
 प्रायोगिक जीवन को न संस्कारित भी करते।
 उद्दण्ड उत्श्रंखल फैशनी-व्यसनी बनते,
 सदाचार उच्चविचार से रहित भी होते॥ (6)
आधुनिक दिखाते किन्तु विज्ञान न जानते,
 प्रगतिशील उदार सहिष्णु भी न होते।
 संकीर्ण कट्टरता परे सापेक्ष दृष्टि न रखते,
 नकलची परावलम्बी अन्धविश्वासी होते॥ (7)
परोपदेशी बनते किन्तु स्व उपदेशी न होते,
 धन जन नाम हेतु भाषण ही झाड़ते।
 आचरण अनुभवहीन वाचाल ही होते,
 टेप रिकार्ड सम अन्य को सुनाते॥ (8)
आत्मानुशासन बिन परशासक बनते,
 रावण कंस हिटलर सम तानाशाही होते।
 अन्य को दबाते स्वयं उद्दण्ड ही होते,
 हर क्षेत्र में ऐसे जीव अधिक भी होते॥ (9)
स्वयं से हर काम प्रारंभ होना विधेय,
 प्रज्वलित दीपक सम प्रकाश देना विधेय।
 आदर्श अनुकरण भी सदा विधेय।
 आत्मोपलब्धि ही 'कनक' का परम ध्येय॥ (10)

सबसे श्रेष्ठ सब से ज्येष्ठ/(सबसे क्लिष्ट) है आत्मविशुद्धि,
इस हेतु चाहिए महान् लक्ष्य सह समता शान्ति
इस हेतु न चाहिए धन जन मान प्रतिष्ठा,

अतः आत्मविशुद्धि सबसे सरल, क्लिष्ट॥ (11)

जैन धर्म सम्बन्धी वर्तमान की समस्याएँ व समाधान! यह कविता
“दिशाबोध अप्रैल 2019” से भी प्रेरित है।

पराश्रित बाह्य प्रभावना परे आत्म साधना करूँ!

आगम विरुद्ध, निन्दाकारक, धन, धन आश्रित आत्म साधना बाधक
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व हेतु बाह्य प्रभावना न करूँ!
(चालः-मन रे! तू काहे न धीर धरे...)

-आचार्य कनकनन्दी

कनक! (आत्मन्!) तू आत्मसाधना करो!...

इस हेतु त्यागो पूजा लाभ...समता शान्ति निस्पृहता धरो...(ध्रुव)...

अनादिकाल से अनन्त भव में...किया तूने अनन्त अनात्म काम...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व...भोगोपभोग व राग द्वेष मोह...

संकलेश द्वन्द्व से ले विद्रोह \$\$\$ कनक...(1)...

इस हेतु ही किया धर्म से ले व्यापार...राजनीति शिल्प से ले सेवादि...

अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार दुराचार...आक्रमण युद्ध से ले हत्यादि...

बाह्य दिखावा ढोंग पाखण्डादि \$\$\$ कनक...(2)...

किन्तु न किया आत्मोपलब्धि एक बार भी...यह एक काम ही तू अभी करो...

भले इस जन्म में न पूर्ण होगी आत्मोपलब्धि...तथापि इस हेतु ही साधना करो...

अन्य सभी संकल्प विकल्प त्यजो \$\$\$ कनक...(3)...

यथायोग्य सुद्रव्य क्षेत्र कालानुसार...ध्यान अध्ययन तप त्याग करो...

धन जन आदि पराश्रित प्रभावना त्यागो...स्व आश्रित प्रकृष्ट भावना करो...

रत्नत्रय तेज से प्रभावना करो \$\$\$ कनक...(4)...

बाह्य प्रभावना हेतु संकलेश न करो...इस हेतु धन जन आश्रित न बनो...

पण्डाल मञ्च मार्क होर्डिंग पत्रिका...विज्ञापन, टी.वी प्रसारण, निमंत्रण...

त्याग करो गाजा बाजा व भोजन SSS कनक...(5)...

उक्त कामों से तेरी साधना न होगी...न बढ़ेगी समता शान्ति निस्पृहता...

एकान्त मौन ध्यान अध्ययन चिन्तन...शोध बोध लेखन से ले प्रवचन...

न बढ़ेगी आत्मविशुद्धि से आत्मोन्नति SSS कनक...(6)...

गृहस्थ से ले पण्डित व पत्रकार भी...करेंगे तेरी निन्दा से ले बहिष्कार...

स्वार्थ साधने वाले मोही स्वार्थी भी...करेंगे पीछे से निन्दा अनादर...

तेरे हैं बहुत अनुभव व प्रमाण SSS कनक...(7)...

आगम में भी निषिद्ध ये सभी काम...अतः निर्माण हेतु त्यज बाह्य निर्माण...

तीर्थकर चक्री भी जब बनते श्रमण...उक्त अनात्म काम परे करते आत्म कल्याण...

उत्तम स्वात्म चिन्ता करो तू आत्मन् SSS कनक...(8)...

ग.पु. कॉलोनी, दि-21/6/2019, मध्याह्न 3.02

संदर्भ-

कुलजातीश्वरत्वादिमदविध्वस्तुबुद्धिभिः।

सद्यः संचीयते कर्म नीचैर्गतिनिबन्धनम्॥ (48) ज्ञानार्णव

कुल जाति, ऐश्वर्य, रूप, तप, बल, विद्या और धन इन आठ भेदों से जिनकी बुद्धि बिगड गई हैं अर्थात् मान करते हैं वे तत्काल नीच गति के कारण कर्म को संचय करते हैं। अर्थात् कोई ऐसा समझें कि मान करने से मैं ऊँचा कहलाऊँगा सो इस लोक में मानी पुरुष ऊँचे तो नहीं होते किन्तु नीच गति को प्राप्त होते हैं।

मानग्रन्थिर्मनस्युचैर्यावदास्ते दृढस्तदा।

तावद्विवेकमाणिक्यं प्राप्तमप्यपसर्पति॥ (49)

हे मुने! जब तक तेरे मन में मान की गाँठ अतिशय दृढ है तब तक तेरा विवेकरूपी रत्न प्राप्त हुआ भी चला जायगा, क्योंकि मानकषाय के समाने हेय उपादेय का ज्ञान नहीं रहता।

प्रोत्तुङ्गमानशैलाग्रवर्तिभिर्लुप्तबुद्धिभिः।

क्रियते मार्गमुल्लंघ्य पूज्यपूजाव्यतिक्रमः॥ (50)

जो पुरुष अति ऊँचे मानपर्वत के अग्र भाग में (चोटी पर) रहते हैं वे नष्टबुद्धि है; ऐसे मानी समीचीन मार्ग का उल्लंघन करके पूज्य पुरुषों की पुजा

(प्रतिष्ठा) का लोप कर देते हैं।

भावार्थ-मानी पुरुष पूज्य पुरुषों का भी अपमान करने में शङ्कित नहीं होते।

लुप्यते मानतः पुंसां विवेकामललोचनम्।

प्रच्यवन्ते ततः शीघ्रं शीलशैलाग्रसंक्रमात्॥ (51)

इस मान कषाय से पुरुषों के भेदज्ञानरूप निर्मल लोचन (नेत्र) लोप हो जाते हैं, जिससे शीघ्र ही शीलरूपी पर्वत के शिखर के संक्रम से (चलने से) डिग जाते हैं, अर्थात् शील से च्युत हो जाते हैं क्योंकि विवेक जब नहीं रहा तो शील कहाँ?

ज्ञानरत्नमपाकृत्य गृह्णात्यज्ञानपन्नगम्।

गुरुनपि जनो मानी विमानयति गर्वतः॥ (52)

मानी पुरुष गर्व से अपने गुरु को भी अपमानित करता है सो मानो ज्ञानरूपी रत्न को दूर करके अज्ञानरूपी सर्प को ग्रहण करता है।

करोत्युद्धतधीर्मानाद्विनयाचारलंघनम्।

विराध्याराध्यसन्तानं स्वेच्छाचारेण वर्तते॥ (53)

मान से उद्धतबुद्धि पुरुष गर्व से विनयाचार का उल्लंघन करता है और पूज्य गुरुओं की परिपाटी (पद्धति) को छोड़कर स्वेच्छासार से प्रवर्तने लगा जाता है।

मानमालम्ब्य मूढात्मा विधत्ते कर्म निन्दितम्।

कलङ्कयति चाशेषचरणं चन्द्रनिर्मलम्॥ (54)

इस मान का अवलम्बन कर मूढात्मा कर निन्दित कार्य को करता है तथा चन्द्रमा के समान निर्मल अपने समस्त सदाचरणों को कलंकित करता है।

गुणरिक्तेन किं तेन मानेनार्थः प्रसिद्धयति।

तन्मन्ये मानिनां मानं यल्लोकद्वयशुद्धिदम्॥ (55)

गुणरहित रीते मान से कौन से अर्थ की सिद्धि है? वास्तव में मानी पुरुषों का वही मान उचित कहा जा सकता है, जो इस लोक और परलोक की शुद्धि देनेवाला हो।

भावार्थ-यद्यपि मानकषाय दुर्गति का कारण हैं, तथापि मान दो प्रकार हैं, एक तो प्रशस्तमान और एक अप्रशस्त मान। जिस मान के वशीभूत होकर नीच कार्यों को छोड़ ऊँचे कार्यों में प्रवृत्ति हो वह तो प्रशंसनीय प्रशस्तमान है, और जिस मानसे नीच कार्यों में प्रवृत्ति हो और जो परको हानिकारक हो, वह अप्रशस्त मान है। कोई बड़ा

विद्वान वा उच्च व्रतधारी हो और कोई असदाचारी वा धनाढ्य पुरुष उस विद्वान या सदाचारी का आदरसत्कार न करें, मनमें अपने धन के घमंड से उसे हलका समझें तो उसके पास कदापि विद्वानों वा व्रतधारियों को नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उनके पास जाने से वा उनकी हॉमें हॉं मिलाने से उच्च-ज्ञान और आचरण (धर्म) का अपमान होता है। यह विधान वा उदाहरण गृहस्थों के लिये है, मुनियों के लिये नहीं है।

अपमानकरं कर्म येन दूरान्निषिध्यते।

स उच्चैश्चेतसां मानः परः स्वपरघातकः॥ (56)

जिससे अपमान करनेवाले कार्य दूरसे ही छोड़ दिय जाय वही उच्चशयवालों का प्रशस्त मान है इसके अतिरिक्त जो अन्य मान हैं, वे स्वपर के घातक अर्थात् अप्रशस्त हैं।

क्व मानो नाम संसारे जन्तुव्रजविडम्बके।

यत्र प्राणी नृपो भूत्वा विष्टामध्ये कृमिर्भवेत्॥ (57)

जीवमात्र की विडम्बना करनेवाले इस संसार में मान नाम का पदार्थ है ही क्या? क्योंकि जिस संसार में राजा भी मरकर तत्काल विष्टा में कृमि आदि कीट हो जाता है, और प्रत्यक्ष में भी देखा जाता है कि जो आज राजगद्दी पर विराजमान है यही कल राज्यरहित होकर रंक हो जाता है।

जन्मभूमिरविद्यानामकीर्तेर्वासमन्दिरम्।

पापपङ्कमहागर्तो निकृतिः कीर्तिता बुधैः॥ (58)

मायाकषाय अविद्या की भूमि है, अपयश का घर हैं और पापरूपी कर्दम का बड़ा भारी गड्ढा है, इस प्रकार विद्वानों ने माया का कीर्तन (कथन) किया है।

अर्गलेवापवर्गस्य पदवी श्वभ्रवेश्मनः।

शीलशालवने वह्निर्मयेयमवगम्यताम्॥ (59)

यह माया मोक्ष रोकने को अर्गला है क्योंकि जब तक मायाशल्य रहता है तब तक मोक्षमार्ग का आचरण नहीं आता और नरकरूपी घर में प्रवेश करने की पदवी (द्वार) है, तथा शीलरूपी शालवृक्ष के वनको दग्ध करने के लिये अग्निसमान है, क्योंकि मायावी की प्रकृति सदा दाहरूप रहा करती है।

कूटद्रव्यमिवासारं स्वप्रराज्यमिवाफलम्।

अनुष्ठानं मनुष्याणां मन्ये मायावलम्बिनाम्॥ (60)

आचार्य महाराज कहते हैं कि मैं मायावलम्बी पुरुषों के अनुष्ठान-आचरण को कूटद्रव्य (नकली द्रव्य) के समान असार समझता हूँ अथवा स्वप्न में राज्यप्राप्ति के समान निष्फल समझता हूँ, क्योंकि मायावान का आचरण सत्यार्थ नहीं होता किन्तु निष्फल होता है।

लोकद्वयहितं केचित्तपोभिः कर्तुमुद्यता

निकृत्या वर्तमानस्ते हन्त हीना न लज्जिताः॥ (61)

कोई पुरुष तप द्वारा उभय लोक में अपने हितसाधनार्थ उद्यमी तो हुए है, परन्तु खेद है कि वे मायाचारसहित रहते हैं सो बड़े नीच हैं और निर्लज्ज हैं। ऐसा नहीं विचारते कि हम तपस्वी होकर यदि मायाचार रक्खेंगे तो लोग हमें क्या कहेंगे?

मुक्तेरविप्लुतैश्चोक्ता गतिर्ऋज्वी जिनेश्वरैः।

तत्र मायाविनां स्थातु न स्वप्नेऽप्यस्ति योग्यता॥ (62)

वीतराग सर्वज्ञ भगवान् ने मुक्तिमार्ग की गति सरल कही है, उसमें मायावी जनों के स्थिर रहने की योग्यता स्वप्न में भी नहीं है।

व्रती निः शल्य एव स्यात्सशल्यो व्रतघातकः।

मायाशल्यं मतं साक्षात्सूरिभिर्भूरिभीतिदम्॥ (63)

व्रती जो निःशल्य ही होता है, शल्यसहित तो व्रत का घातक होता है और आचार्यों ने मायाको साक्षात् शल्य कहा है, क्योंकि माया अतिशय भयदायक है। **भावार्थ**-मायावी के अपने मायाचार के प्रकट होने का भय बना ही रहता है, अतएव उस (कपटी) का व्रत सत्यार्थ नहीं होता।

इहाकीर्तिं समादत्ते मृतो यात्येव दुर्गतिम्।

मायाप्रपञ्चदोषेण जनोऽयं जिह्विताशयः॥ (64)

इस मायाप्रपंच के दोष से यह कुटिलाशय मनुष्य इस लोक में तो अपयश को प्राप्त होता है और मृत्यु होने पर दुर्गति में ही जाता है।

छाद्यमानमपि प्रायः कुकर्म स्फुटति स्वयम्।

अलं मायाप्रपञ्चेन लोकद्वयविरोधिना॥ (65)

कुकर्म ढकते हुए भी प्रायः अपने आप ही प्रगट हो जाता है, इस कारण दोनों लोकों को बिगाडनेवाले इस मायाप्रपंच से अलं (बस) है। **भावार्थ**-मायाचार से निंद्य कार्य किया जाय और छिपाया जाय तो भी प्रगट हुए विना नहीं रहता, प्रगट होने पर वह उभयलोक को बिगाडता है, अतः इस मायाचार से अलग ही रहना चाहिये।

कृ मायाचरणं हीनं कृ सन्मार्गपरिग्रहः।

नावपवर्गपथि भ्रातः संचरन्तीह वञ्चका॥ (66)

मायारूप हीनाचरण तो कहाँ! और समीचीन मार्ग का ग्रहण करना कहाँ! इनमें बड़ी विषमता है इस कारण आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भाई! मायावी ठग इस मोक्षमार्ग में कदापि नहीं विचर सकते।

बकवृत्तिं समालम्ब्य वञ्चकैर्वञ्चितं जगत्।

कौटिल्यकुशलैः पापैः प्रसन्नं कश्मलाशयैः॥ (67)

कुटिलता में चतुर ऐसे मलिनचित्त पापी ठग बगले के ध्यानकीसी वृत्ति (क्रिया) का आलम्बन कर इस जगत को ठगते रहते हैं। **भावार्थ**-बगले की वृत्ति लोकप्रसिद्ध है। बगला जल में समस्त अंगों को संकोच कर एक पाँव से खड़ा रहकर ध्यानमग्न हो जाता है, यदि मछलियाँ उसे कमल-पुष्पवत् समझ उसके निकट आ जाती हैं तो तत्काल उन्हें उठा कर खा जाता है, इसी प्रकार मायावी की वृत्ति होती है।

नयन्ति विफलं जन्म प्रयासैर्मृत्युगोचरैः।

वराकाः प्राणिनोऽजस्त्रं लोभादप्राप्तवाञ्छिताः॥ (68)

पामर प्राणी निरन्तर लोभकषाय के वशीभूत होकर वाञ्छित फल को नहीं पाते हुए मृत्यु का सामना करने वाले अनेक उपायों को करके अपने जन्म को व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। **भावार्थ**-यह प्राणी लोभ से ऐसे उपाय करता है कि जिनसे मरण होना भी सम्भव है, तथापि अपने मनोवाञ्छित कार्य की सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और अपने जन्म को व्यर्थ ही खो बैठता है।

शाकेनापीच्छया जातु न भर्तुमदरं क्षमाः।

लोभात्तथाऽपि वाञ्छति नराश्चक्रेश्वरश्रियम्॥ (69)

अनेक मनुष्य यद्यपि अपनी इच्छा से शाक से भी पेट भरने को कभी समर्थ नहीं होते, तथापि लोभ के वश से चक्रवर्ती की सी सम्पदा को वांछते हैं। **भावार्थ-** लोभ ऐसा है कि जिस वस्तु की प्राप्ति होने योग्यता स्वप्न में भी असंभव हो उसकी भी वांछ करता है, और ऐसी निष्फल वांछ करा कर मनुष्य को दुर्गति का पात्र बनाता है।

स्वामिगुरुबन्धुवृद्धानबलाबालांश्च जीर्णदीनादीन्।

व्यापाद्य विगतशङ्को लोभार्तो वित्तमादत्ते।। (70)

इस लोभकषाय से पीडित हुआ पुरुष अपने मालिक, गुरु, बन्धु (हितैषी), वृद्ध, स्त्री, बालक तथा क्षीण, दुर्बल, अनाथ, दीनादिकों को भी निःशंकता से मारकर धन को ग्रहण करता है अर्थात् लोभ ऐसा अनर्थ कराता है।

ये केचित्सिद्धाते दोषाः क्षभ्रस्य साधकाः प्रोक्ताः।

प्रभवन्ति निर्विचारं ते लोभादेव जन्तूनाम्।। (71)

नरक को ले जानेवाले जो दोष सिद्धान्तशास्त्र में कहे गये हैं वे सब जीवों के निःशंकतया लोभ से ही प्रगट होते हैं। **भावार्थ-** 'लोभ पाप का मूल है' यह लोकोक्ति जगत्प्रसिद्ध है जो सर्वथा सत्य है क्योंकि जितने अयोग्य कार्य हैं वे इस लोभ से स्वयमेव बन जाते हैं।

चारों कषायों का त्याग करने का उपदेश।

शमाम्बुभिः क्रोधशिखी निवार्यताम् नियम्यतां मानमुदारमार्दवैः।

इयं च मायाऽऽर्जवतः प्रतिक्षणं निरीहतां चाश्रय लोभशान्तये।। (72)

हे आत्मन्! तू शान्तभावरूप जल से तो क्रोधरूपी अग्नि निवारण कर और उदार मार्दव अर्थात् कोमल परिणामों से मान (मानरूप हाथी) को नियन्त्रित (वश) कर तथा माया को निरन्तर आर्जव से दूर कर और लोभ की शांति के लिये निर्लोभता का आश्रय कर। इस प्रकार चारों कषायों को दूर करने का उपदेश है।

यत्र यत्र प्रसूयन्ते तव क्रोधादयो द्विषः।

तत्तत्प्रागेव मोक्तव्यं वस्तु तत्सूतिशान्तये।। (73)

हे आत्मन्! तेरे जिस जिस पदार्थ से क्रोधादिक शत्रु उत्पन्न होते हैं, वही वही वस्तु उन क्रोधादिकी शांति के लिये प्रथम से ही त्याग देनी चाहिये। इस प्रकार कषायों के बाह्य कारणों के त्याग का उपदेश है।

येन येन निवार्यन्ते क्रोधाद्याः परिपन्थिनः।

स्वीकार्यमप्रमत्तेन तत्तत्कर्म मनीषिणा॥ (74)

तथा जिस जिस कार्य के करने से क्रोधादिक शुत्रों का निवारण हो, बुद्धिमान को वह-वह कार्य निरालस्य हो स्वीकार करना चाहिये।

गुणाधिकतया मन्ये स योगी गुणिनां गुरुः।

तन्निमित्तेऽपि नाक्षिप्तं क्रोधाद्यैर्यस्य मानसं॥ (75)

जिस मुनि का मन क्रोधादिक कषायों के निमित्त मिलने पर भी क्रोधादिक से विक्षिप्त न हो अर्थात् जिसके क्रोधादिक उत्पन्न न हों वही गुणाधिकता से योगी व गुणीजनों का गुरु है ऐसा मैं मानता हूँ। यहाँ क्रोधादिक का कारण मिलने पर भी जिनके क्रोधादिक न हो उनकी प्रशंसा की गई है।

यदि क्रोधादयः क्षीणास्तदा किं खिद्यते वृथा।

तपोभिरथ तिष्ठन्ति तपस्तत्राप्यापार्थकम्॥ (76)

हे मुने! यदि तेरे क्रोधादिक कषाय क्षीण हो गये तो तप करके खेद करना व्यर्थ है, क्योंकि क्रोधादिक का जीतना ही तप है; और यदि क्रोधादिक तेरे तिष्ठते हैं तो भी तप करना व्यर्थ है क्योंकि कषायी का तप करना व्यर्थ ही होता है।

स्वसंवित्तिं समायाति यमिनां तत्त्वमुत्तमम्।

आसमन्ताच्छमं नीते कषायविषमज्वरे॥ (77)

संयमी मुनियों के कषायरूपी विषमज्वर के सर्व प्रकार से उपशमता को प्राप्त होने पर उत्तम तत्त्व (परमात्मा का स्वरूप) स्वसंवेदनता को प्राप्त होता है।

भावार्थ—कषायों के मिटने से ही आत्म-स्वरूप का अनुभव होता है।

समाज से विनम्र निवेदन

आज एक ओर बहुत बड़ा खतरा है, कुछ सफेद पोश,

परम पूज्यो की 24 घंटों की घेराबंदी किये रहते हैं,

इनकी घेरा बंदी किले जैसी होती है, परिंदा भी पर नहीं मार सकता।

इन सफेद पोशों का विलासितापूर्ण जीवन किसी राजा महाराजाओं से कम नहीं होता। इनके पास कोई आय नहीं, पर करोड़ों की चल-अचल संपत्ति कहाँ से आती

है, यह आयकर विभाग की जांच का विषय है।

परम पूज्यों की किलेबंदी के बाद अब आपको इनसे या इनकी टीम वालों से संपर्क करना पड़ेगा, तभी आप परम पूज्य के चरण स्पर्श, पाद-प्रक्षालन, चर्चा, आहार, या अन्य पुण्य लाभ ले सकते हैं।

यह सफेदपोश इतने प्रभावशाली होते हैं कि आम श्रावक की छोड़ो, पूज्यों की, कमेटी पदाधिकारियों आदि किसी की नहीं चलती। यह किसी को भी दंड दिला दे या दे दे, साधारण बात है। हाँ, इन्हें खुश कर लो सब करा देंगे। उपर्युक्त कामों के अलावा कमेटी में पदाधिकारी बनना है, निर्माण समिति में अन्य समिति में कुछ बनना है, ट्रस्टी बनना है, निर्वाचित समिति भंग कराना है, करोड़ों की बोली लाखों में लेना है, मंच पर अपना सम्मान झूठी प्रशंसा करवाना है, परम पूज्य के पास किसी के विरुद्ध झूठी जानकारी भिजवाना है, या अन्य कोई भी जटिल काम हो, यह गारंटी के साथ करा देंगे,

बस आप में सामर्थ्य...होनी चाहिए।

समाज गंभीरता से इस पर विचार करे, अन्यथा यह गंभीर खतरा पंथवाद, संतवाद, जातिवाद से भी भयंकर है, क्योंकि यह तीनों जाति, पंथ, संत के भेद यही करा रहे है। शांत विवाद रहित तीर्थ क्षेत्रों को कुछ असामाजिक तत्त्वों को साथ लेकर अशांति और संघर्षों की स्थिति निर्मित कर रहे है।

इन सफेदपोशों पर परमपूज्य और समाज को अतिशीघ्र ध्यान देना जरूरी है।

निवेदन एवं क्षमा सहित

-शिखरचंद जैन, एडमिन जैनत्व अहिंसा

दिशाबोध: मार्च-2019

कामी स्वार्थी की दृष्टि में सफलता या विकास

(यथार्थ सफलता हेतु त्यजनीय-ग्रहणीय-करणीय)

(चाल: 1.आत्मशक्ति...2.क्या मिलिए...)

हाय! रे कामीस्वार्थी जन! आर्थिक विकास ही तेरा प्रधान।

इस हेतु ही करो हे! सभी काम पढ़ाई से ले धार्मिक काम।। (धु.)

चारों पुरुषार्थ में से धर्म मोक्ष रहित, अर्थ काम में हो दत्तचित्त।

पढ़ाई बढ़ाई चमड़ी दमड़ी (या) नेम फेम गेन खाओ पीओ मजा में मस्त॥
 इसको ही मानते हो तुम सफलता, मानते हो जीवन की इसे उच्चता।
 इसे ही मानते हो महान् लक्ष्य, इस हेतु करते हो हर प्रयत्न॥ (1)
 इस हेतु करते हो अन्याय अत्याचार, शोषण मिलावट भ्रष्टाचार।
 धोखाधड़ी व ठगी बेइमानी, फैशन-व्यसन से ले बलात्कार॥
 भले बाहर में दिखाते हो सभ्य संस्कृत उदारवादी से आधुनिक।
 समाज सुधारक नेता अभिनेता खिलाड़ी स्वयंसेवी से ले धार्मिक तक॥ (2)
 तुम्हारा व्यवहार है बगुला सम, मुँह में राम नाम बगल में छुरी सम।
गोमुख व्याघ्र सम तुम धार्मिक, तुम्हारा व्यवहार मंथरा शकुनी सम॥
 इस हेतु तुझे न मिलती शान्ति, जिससे तेरे तन मन हो जाते रोगी।
नींद न आती न तृप्ति मिलती, तेरे मन में सदा अशान्ति रहती॥ (3)
 इसे जानकर पाश्चात्य जन, भौतिकता परे बन रहे हैं नैतिक जन।
 दयादान सेवा परोपकार, कर रहे हैं सादा जीवन उच्च विचार पूर्ण॥
आध्यात्मिक को भी (वे) मान रहे हैं वे प्रगतिशील (स्मार्ट) हो रहे हैं।
वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना रहे हैं भारतीय संस्कृति को पाल रहे हैं॥ (4)
 जीव संरक्षण व प्रकृति रक्षण दीन हीन रोगी पशु पक्षी मानव सेवा।
 तन मन धन समय श्रम से व्यक्ति से ले वैज्ञानिक सरकार प्रयत्नरत॥
 यह है जीवन्त अहिंसा धर्म जीवदया अभयदान व जीओ और जीने दो।
 संवेदनशीलता, करुणा, प्रेम, विश्वमैत्री, विश्वप्रेम, विश्वशान्ति यज्ञ॥ (5)
 तुम्हारे (हमारे) पूर्वज भी ऐसा ही थे, इनसे भी अधिक महान् थे।
 इसी से होगा तुम्हारा सर्वांगीण विकास, इस हेतु आह्वान करे 'कनक'॥ (6)

ग.पु.कॉ. 29-6-2019 रात्रि 9:38

संदर्भ-

जे णिय-दंसण-अहिमुहा सोक्खु अणंतु लहंति।

तिं विणु पुण्णु करंता वि दुक्खु अणंत सहंति॥ (59) (प.पृ.)

जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं, वे अनन्त सुख को पाते हैं और जो जीव सम्यक्त्व रहित हैं, वे पुण्य भी करते हैं तो भी पुण्य के फल से अल्प सुख पाकर

संसार में अनन्त दुःख पाते हैं।

पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।

मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अमह मा होउ।। (60)

पुण्य से घर में धन होता है और धन से अभिमान, मान से बुद्धिभ्रम होता है, बुद्धि के भ्रम होने से पाप होता है, इसलिये ऐसा पुण्य हमारे न होवे।

देवहं सत्थहं मुणिवरहं भत्तिए पुण्णु हवेइ।

कम्मक्खउ पुणु होइ णवि अज्जउ संति मणइ।। (61)

श्री वीतराग देव, द्वादशांग शास्त्र और दिगम्बर साधुओं की भक्ति करने से मुख्यता से पुण्य होता है, लेकिन तत्काल कर्मों का क्षय नहीं होता, ऐसा “शांति” “नाम” “आर्य” अथवा कपट रहित सन्त पुरुष कहते हैं।

विषय तृष्णा से दुःखीजीव विषयों को भोगता है

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।

इच्छंति अणुभवन्ति य आमरणं दुक्खसंतत्ता।। (75) प्र.सार

Moreover those beings with their thirst enhanced, pained with desires and burning with misery, hanker after the pleasures of senses and experience them till their death.

आगे पुण्यकर्म मिथ्यादृष्टि जीवों के लिए दुःख के कारण हैं, इस ही पूर्व के भाव को विशेष करके समर्थन करते हैं।

(पुण) तथा फिर (ते) वे अज्ञानी सर्व संसारी जीव (उदिण्णतण्हा) स्वाभाविक शुद्ध आत्मा में तृप्ति को न पाकर तृष्णा को उठाए हुए (तण्हाहिं दुहिदा) स्वसंवेदन से उत्पन्न जो पारमार्थिक सुख उसकी श्रद्धा के अभाव से अनेक प्रकार की तृष्णा से दुःखी होते हुए व (आमरणं दुक्खसंतत्ता) मरण पर्यंत दुःखों से संतापित रहते हुए (विषयसोक्खाणि) विषयों से रहित परमात्मा के सुख से विलक्षण विषय के सुखों को (इच्छंति) चाहते रहते हैं (अणुभवन्ति) और भोगते रहते हैं।

यहाँ यह अर्थ है कि जैसे तृष्णा की तीव्रता से प्रेरित होकर जोंक जन्तु खराब रुधिर की इच्छा करती है तथा उसको पीती है, इस तरह करती हुए जोंक मरण पर्यंत दुःखी रहती है अर्थात् खराब रुधिर पीते-पीते उसका मरण हो जाता है परन्तु उसकी

तृष्णा नहीं मिटती, तैसे अपने शुद्धआत्मा के अनुभव को न पाने वाले अर्थात् श्रद्धा न करने वाले जीव भी जैसे मृग तृषातुर होकर बार-बार सूखी नदी के मैदान में जल जानकर जाता है, परन्तु तृषा न बुझाकर दुःखी ही रहता है, इसी तरह विषयों को चाहते तथा अनुभव करते हुए मरण पर्यंत दुःखी रहते हैं। इससे सिद्ध हुआ है कि अज्ञानी जीवों में तृष्णा रूपी रोग को पैदा करने के कारण से पुण्यकर्म वास्तव में दुःख का ही कारण है।

समीक्षा:-जिस प्रकार शीत ज्वर से पीड़ित व्यक्ति ताप चाहता है और उष्ण ज्वर से पीड़ित व्यक्ति शीतलता चाहता है उसी प्रकार मोही विषयासक्त व्यक्ति तृष्णा/ इच्छा/कामना/आकुलता को अनुभव करता हुआ विषय सुख को आमरण चाहता है। इसलिए महात्मा बुद्ध ने कहा था “तृष्णा ही दुःख के लिए कारण है एवं तृष्णा का निरोध सुख का कारण है।” महात्मा बुद्ध ने धम्मपद में कहा भी है-

यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका।

सोका तस्स पवड्ढन्ति अभिवट्ठं व वीरणं।। (106)

यह विष रूपी नीच तृष्णा जिसे अपने वश में कर लेती है, उसके शोक वर्षा काल में वीरण (उशीर) की भाँति वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

यथापि मूले अनुपद्वे दल्हे छिन्नोपि रूक्खो पुनरेव रूहति।

एवम्पि तण्हानुसये अनूहत निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं।। (5)

जैसे दृढमूल के बिल्कुल नष्ट हो जाने से कटा हुआ वृक्ष फिर भी बढ़ जाता है, वैसे ही तृष्णा के समूल नष्ट न होने से यह दुःख बार-बार उत्पन्न होता रहता है।

तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो व बाधितो।

सञ्जजनसंसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय।। (9)

तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी, बंधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, संयोजनों में फँसे लोग पुनः पुनः चिरकाल तक दुःख पाते हैं।

न तं दलह् बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारूजं बब्बजंच।

सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।। (12)

यह जो लोहे, लकड़ी या रस्सी का बन्धन है, उसे बुद्धिमान् (जन) दृढ बंधन नहीं कहते, (वस्तुतः दृढ बन्धन वे हैं जो) मणि, कुण्डल, पुत्र, स्त्री में इच्छा

का होना है।

परन्तु जब जीव प्रबुद्ध हो जाता है स्वस्वरूप का व परस्वरूप का ज्ञान कर लेता है तब वह इन्द्रियजनित सुख को दुःख स्वरूप मानकर त्याग करता है। समाधि तंत्र में कहा भी है-

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारेः पतितो विषयेष्वहम्।

तान् प्रप्रद्याऽहमिति मां पुरा वेद न तत्त्वतः॥ (16)

जब तक इस जीव को अपने चैतन्य स्वरूप का यथार्थ परिज्ञान नहीं होता तभी तक इसे बाह्य इन्द्रियों के विषय सुन्दर और सुखदायी मालूम पड़ते हैं। जब चैतन्य और जड़ का भेदविज्ञान हो जाता है और अपने निराकुल चिदानन्दमयी सुधारस सुख का स्वाद आने लगता है तब ये बाह्य इन्द्रियों के विषय बड़े ही असुन्दर और काले विषधर के समान मालूम पड़ते हैं। कहा भी है-

“जायन्ते विरसारसा विघटते गोष्ठी कथा कौतुकं,

शीर्यन्ते विषयास्तथा विरमति प्रीतिः शरीरेऽपि च।

जोषं बागपि धारयंत्यविरतानंदात्मनः स्वात्मन-

श्चिंतायामपि यातुमिच्छतिमनो दौषेः समं पंचताम्॥”

आत्मा का अनुभव होने पर रस विरस हो जाता है, गोष्ठी कथा और कौतुकादि सब नष्ट हो जाते हैं, विषयों से सम्बन्ध छूट जाता है, शरीर से भी ममत्व नहीं रहता, वाणी भी मौन धारण कर लेती है और आत्मा सदा अपने शांत रस में लीन हो जाता है तथा मन के दोषों के साथ-साथ चिंता भी दूर हो जाती है।

इसी कारण यह जीव जिन भोगों को पहले मिथ्यात्व दशा में सुख का कारण समझकर भोगा करता था उन्हीं के लिए सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा होने पर पश्चाताप करने लगता है। यह सब भेद विज्ञान की महिमा है।

इन्द्रिय सुख विचित्र दुःखोत्पादक है

सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।

जं इन्दियेहिं लब्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा॥ (76)

Happiness derived through sense-organs is dependent,

amenable to disturbances, terminable, a cause of bondage and dangerous, and hence it is misery in disguise.

आगे फिर भी पुण्य से उत्पन्न जो इन्द्रिय सुख होता है उसको बहुत प्रकार से दुःख रूप प्रकाश करते हैं।

(जं) जो सांसारिक सुख (इंदिएहि लद्धं) पांचों इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त होता है (तं सोक्खं) वह सुख (सपरं) परद्रव्य की अपेक्षा से होता है, इसलिये पराधीन है, जब कि पारमार्थिक सुख परद्रव्य की अपेक्षा न रखने से आत्मा के अधीन यानि-स्वाधीन है। इन्द्रियसुख (बाधासहिदं) तीव्र क्षुधा तृषा आदि अनेक रोगों का सहकारी है, जबकि आत्मीक सुख सर्व बाधाओं से रहित होने से अव्याबाध है। इन्द्रिसुख (विच्छिण्णं) साता का विरोधी जो असाता वेदनीयकर्म उसके उदय सहित होने से नाशवंत तथा अन्तर सहित होने वाला है जबकि अतीन्द्रिय सुख असाता के उदय के न होने से निरन्तर सदा बिना अन्तर पड़े व विनाशी रहने वाला है जबकि इन्द्रिय सुख (बन्धकारणं) देखे, सुने, अनुभव किये हुए भोगों की इच्छा आदि को लेकर अनेक खोटे ध्यान के अधीन होने से भविष्य में नरक आदि के दुःखों को पैदा करने वाले कर्मबन्ध को बांधने वाला है अर्थात् कर्मबन्ध का कारण है, जबकि अतीन्द्रिय सुख सर्व अपध्यानों से शून्य होने के कारण से बंध का कारण नहीं है। तथा (विसमं) यह इन्द्रियसुख परम उपशम या शांतभाव से रहित तृप्तिकारी नहीं है अथवा हानि वृद्धिरूप होने से एक सा नहीं चलता किन्तु विषम है, जबकि अतीन्द्रिय सुख परम तृप्तिकारी और हानि वृद्धि से रहित है, (दुक्खमेवतहा) इसलिये यह इन्द्रिय सुख पांच विशेषण सहित होने से दुःखरूप ही है, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-इस गाथा में आचार्य श्री ने व्यवहार के एक दृष्टांत को देकर यह सिद्ध किया है कि जब तक कोई असमर्थ/दुर्बल होता है तब तक वह दूसरों का अवलम्बन की लेकर कार्य करता है परंतु जब वह पूर्ण समर्थ हो जाता है तब बाह्य अवलम्बन की आवश्यकता नहीं रहती है। जैसे उल्लू को रात के अंधकार में भी दिखाई देता है तो उसे देखने के लिये प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जिसकी दृष्टि-शक्ति अच्छी है उसे शास्त्र अध्ययन के लिये चश्मा का अवलम्बन नहीं लेना पड़ता है। समर्थ व्यक्तियों को चलने के लिये लाठी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जो जिस विषय में पूर्ण ज्ञानी है उसे उस विषय संबंधी शास्त्रों की आवश्यकता नहीं

पड़ती है। उसी प्रकार जो आत्मा स्वयं पूर्ण सुख-स्वरूप है उसे सुख के लिये बाह्य सुख की आवश्यकता नहीं पड़ती है। कुंदकुंद स्वामी ने आत्मा को सुखादि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड है ऐसा सिद्ध किया है।

देहादो वदिरित्तो, कम्मविरहिदो अणंत सुहणिलओ।

चोक्खो हवेदि अप्पा, इदि णिच्चं भावणं कुज्जा।। (46)

आत्मा देह से भिन्न है, कर्मों से रहित है, अनन्त सुख का धाम है और शुद्ध है। इस प्रकार सदा भावना करनी चाहिये।

आत्मा में ज्ञान, सुख, वीर्य, अस्तित्व, वस्तुत्व प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अव्याबाधत्वादि अनंतगुण स्वाभाविक गुण हैं, क्योंकि आत्मा एक द्रव्य होने से उसमें अनंत गुण होना स्वाभाविक है, क्योंकि द्रव्य गुणों का समूह होता है। पंचाध्यायी में इस सिद्धांत को स्वीकार किया है-

उच्यतेनन्तधर्माधिरूढोप्येकः सचेतनः।

अर्थजातं यतो यावत्स्यादनन्तगुणात्मकम्।। (944)

यह जीव यद्यपि अनंतगुणों का धारी है तथापि एक कहा जाता है जितना भी पदार्थ समूह है सभी अनंतगुणात्मक है।

अभिज्ञानं च तत्रापि ज्ञातव्यं तत्परीक्षकैः।

वक्ष्यमाणमपि साध्यं युक्तिस्वानुभवागमात्।। (945)

जीव अनंत गुणात्मक है इस विषय का विशेष परिज्ञान परीक्षकों को करना चाहिये यद्यपि जो हम सिद्ध करना चाहते हैं उसे आगे युक्ति, स्वानुभव और आगम प्रमाण से कहेंगे तथापि परीक्षकों को निर्णय कर लेना ही उचित है।

तद्यथायथं जीवस्य चारित्रं दर्शनम् सुखम्।

ज्ञानं सम्यक्त्वमित्येते स्युर्विशेषगुणाः स्फुटम्।। (946)

चारित्र, दर्शन, सुख ज्ञान और सम्यक्त्व ये जीव के विशेष गुण हैं।

वीर्यं सूक्ष्मोवगाहः स्यादव्याबाधश्चिदात्मकः।

स्यादगुरुलघुसज्ञं च स्युः सामान्यगुणा इमे।। (947)

वीर्य, सूक्ष्म, अवगाह, अव्याबाध और अगुरुलघु ये जीव के सामान्य गुण हैं।

सामान्या वा विशेषा वा गुणाः सिद्धाः निसर्गतः।

टंकोत्कीर्णा इवाजस्रं तिष्ठन्तः प्राकृताः स्वतः॥ (948)

जीव के सामान्यगुण अथवा विशेषगुण स्वभाव सिद्ध हैं। सभी गुण टाकी से उकेरे हुए पत्थर के समान निरंतर रहते हैं और स्वयं सिद्ध अनादिनिधन हैं।

“क्योंकि,” राल्स्टन ने कहा, “कई लोग आपसे कम उम्र में अनाथ हो जाते हैं। आपने आपनी माँ के साथ काफ़ी, लंबा समय गुज़ारा है और इसके अलावा वे अब भी आपके पास हैं। आप उन्हें दोबारा देख पायेंगी। वे अब भी आपके पास हैं और वे हमेशा आपके पास रहेंगी। शायद,” उसने कहा, “वे जहाँ पर हम दोनों के पास हैं-हम दोनों के पास, जब हम बातें कर रहे हैं।”

सुकियाँ थम गईं और आँसू सूख गये। राल्स्टन की दयालुता का पुत्री पर भी वही प्रभाव पड़ा जो कि उसकी माँ पर पड़ा था। इस बड़े स्टेशन पर जहाँ हजारों लोग पास से गुज़र रहे थे उन दोनों को उस विराट उपस्थिति का अनुभव हुआ जिसने इस अद्भुत पोर्टर को इस तरीके से प्रेम का संदेश फैलाने के लिये प्रेरित किया था।

टॉल्स्टॉय ने कहा, “जहाँ प्रेम है, वहीं ईश्वर है।” और हम इसमें यह जोड़ सकते हैं, कि जहाँ ईश्वर और प्रेम है, वहीं सुख भी है। तो सुखी रहने के लिये व्यवहारिक सिद्धांत यह है कि प्रेम का अभ्यास करें।

मेरा एक दोस्त एच.सी. मैटर्न वास्तव में सुखी इन्सान है जो अपने काम के सिलसिले में अपनी उतनी ही सुखी पत्नी मैरी के साथ देश भर में यात्रा करते हैं। मैटर्न का बिज़नेस कार्ड अद्भुत है। उसके पीछे की तरफ़ ऐसी फ़िलॉसफ़ी दी हुई है जिसने उन्हें और उनकी पत्नी को सुखी बनाया है और उन सैकड़ों लोगों को भी जो इतने भाग्यशाली थे कि उनके संपर्क में आये।

इस कार्ड में लिखा है: “सुख का रास्ता: नफ़रत को दिल से निकाल दें, चिंता को दिमाग से निकाल दें। सादगी से रहें। कम की उम्मीद रखें, ज़्यादा दो। अपने जीवन को प्रेम से भर दें। खुशी बाँटते चलें। खुद को भूल जायें, दूसरों के बारे में सोचें। दूसरा के साथ वैसा व्यवहार करें, जैसा आप अपने लिये चाहते हैं। इसे एक सप्ताह तक करके देखें और आप हैरान रह जायेंगे।”

इन शब्दों को पढ़ने के बाद शायद आप यह करें, “इसमें कुछ भी नया नहीं

है।” सच बात है, परंतु यह भी सच है कि अगर आपने अब तक इसे कभी आजमाया नहीं है तो इसमें कुछ तो नया है। जब आप इसका अभ्यास करेंगे, तो आप इसे सुखी और सफल जीवन का सबसे नया, सबसे ताजा और सबसे आश्चर्यजनक तरीका पायेंगे। इन सिद्धान्तों का महत्त्व ही ज़ाहिर है कि सुख के इन सिद्धान्तों को शक्ति देने और उन्हें असरदार बनाने के लिये मानसिक गुणों द्वारा समर्थन देना होगा। आध्यात्मिक शक्ति के बिना इस आध्यात्मिक सिद्धान्तों से भी आपको प्रभावी परिणाम मिलने की संभावना नहीं है। जब व्यक्ति अंदर से आध्यात्मिक परिवर्तन का अनुभव करता है तो सुख प्रदान करने वाले विचारों में सफलता अत्यधिक आसान हो जाती है। अगर आप आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रयोग करना शुरू करते हैं, चाहे शुरुआत में आप ऐसा अजीब तरीके से करें परंतु धीरे-धीरे अंदर से आप आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव करना शुरू करेंगे। मैं आपको आश्चस्त कर सकता हूँ कि यह आपको सुख का महानतम अनुभव देगा। जो आपको अब तक नहीं मिला होगा। यह आपके साथ तब तक बना रहेगा जब तक आप ईश्वर द्वारा बनायी गयी इस दुनिया में रहेंगे।

देश में अपनी यात्राओं में वास्तव में सुखी व्यक्तियों से बढ़ती हुई संख्या में मिल रहा हूँ। यह वे लोग हैं जो इस पुस्तक में बतायी गयी तकनीकों का अभ्यास कर रहे हैं, जिनका मैंने अपनी दूसरी पुस्तकों, चर्चाओं और लेखन में उल्लेख किया है और जो दूसरे लेखक और वक्ता भी ग्रहणशील व्यक्तियों को सिखा रहे हैं। यह आश्चर्यजनक है कि आध्यात्मिक परिवर्तन को सिखा रहे हैं। यह आश्चर्यजनक है कि आध्यात्मिक परिवर्तन के आंतरिक अनुभव द्वारा किस तरह लोगों को सुख का इंजेक्शन लगाया जा सकता है। हर जगह पर हर तरह के लोग इस अनुभव का लाभ उठा रहे हैं। वास्तव में, यह हमारे युग की सबसे लोकप्रिय घटना बन चुकी है और अगर यह विकसित होती है और फैलती है तो वह व्यक्ति जिसे आध्यात्मिक अनुभव नहीं हुआ है उसे जल्दी ही पुराने ज़माने का समझ लिया जायेगा तो समय से पीछे चल रहा है। अब आध्यात्मिक रूप से जीवन बिताने को स्मार्ट समझा जा रहा है। यह दक्कियानूसी है कि आप सुख का निर्माण करने वाले रूपांतरण के प्रति अज्ञानी हों जब इस समय हर जगह लोग इसका आनंद ले रहे हों।

हाल ही में एक शहर में लेक्चर ख़त्म करने के बाद एक लंबा-तगड़ा और

आकर्षक व्यक्ति मेरे पास आया। उसने मुझे कंधे पर इतनी जोर से हाथ मारा कि मैं लगभग गिर ही गया।

“डॉक्टर,” उसने गूँजती हुई आवाज़ में कहा, “गैंग के साथ चलने के बारे में आपका क्या विचार है? हम लोग स्मिथ के घर पर एक बड़ी पार्टी मना रहे हैं और हम चाहते हैं कि आप भी हमारे साथ चलें। यह बहुत ही शानदार पार्टी रहेगी और आपको इसमें चलना ही चाहिये।” उसने तेज़ रफ़्तार से मुझे इस तरह आमंत्रण दिया।

जाहिर है कि इससे ऐसा आभास नहीं हो रहा था कि यह पार्टी किसी उपदेशक के लिये सही तरह की पार्टी होगी और इसलिये मैं झिझका। मुझे डर था कि मैं वहाँ बैठे लोगों को असहज बना दूँगा इसलिये मैं बहाने बनाने लगा।

“अरे, भूल जाइये,” मेरे मित्र ने मुझसे कहा। “चिंता न करें, यह आपकी ही तरह की पार्टी है। आपको हैरानी होगी। हमारे साथ चलिये। आपको इसमें जीवन का आनंद आ जायेगा।”

इस पर मैं सहमत हो गया और मेरे जिंदादिल और बातूनी मित्र के साथ चल दिया। वह मेरे द्वारा देखे गये सबसे संक्रामक व्यक्तियों में से एक था। जल्दी ही हम एक बड़े घर में आ गये जो पेड़ों के बीच बना था और जिसके अगले द्वार पर एक चौड़ा मार्ग बना था। खुली खिड़कियों से आती आवाज़ों से स्पष्ट था कि पार्टी जोर-शोर से चल रही थी और मैं सोचने लगा कि मैं न जाने कहाँ जा रहा हूँ। मेरे मेज़बान ने जोर से चिल्लाते हुये मुझे कमरे में खींचा और हमें काफ़ी समय तक हाथ मिलाने की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ा और उसने मेरा परिचय प्रफुल्लित और खुशनुमा लोगों के एक बड़े समूह से कराया। वे बहुत ही सुखी और खुश लोग थे।

मैंने चारों तरफ़ देखा कि बार कहाँ है, परंतु वहाँ पर कोई बार नहीं था। वहाँ पर जो चीज़ें मिल रही थीं, वे थीं कॉफी, फलों का जूस, जिंजर एल, सैंडविच और आइसक्रीम और वे बहुत बड़ी तादाद में थीं।

मैंने अपने दोस्त से कहा, “यह लोग यहाँ आने से पहले रास्ते में कहीं पर रुक गये होंगे।”

उसे झटका लगा, फिर उसने कहा, “कहीं रुक गये होंगे?” नहीं, नहीं, आप

समझ नहीं रहे हैं। इन लोगों में जोश तो है, परंतु उस तरह का जोश नहीं है जो शराब से मिलता है। आपके सोचने के तरीके पर मुझे हैरानी है,” उसने कहा। “क्या आपको यह एहसास नहीं है कि इस भीड़ के इतने सुखी होने के कारण क्या है?” वे लोग आध्यात्मिक रूप से नये बन गये हैं। उन्हें कुछ मिला गया है। उन्हें अपने आप से मुक्ति मिल गयी है। उन्हें जीवित, महत्त्वपूर्ण और सच्चे यथार्थ के रूप में ईश्वर मिल गया है। हाँ” उसने कहा, “उसमें जोश तो है, परंतु उस तरह का जोश नहीं है जो किसी बोतल में मिलता है। उनका जोश उनके दिलों से निकला है।”

फिर मैंने देखा कि उसका क्या आशय था। यह दुखी चेहरे वाले नीरस लोगों की भीड़ नहीं थी। यह लोग उस शहर के लीडर्स थे-बिज़नेसमैन, वकील, डॉक्टर, शिक्षक, समाज के महत्त्वपूर्ण लोग और उनके अलावा बहुत से आम लोग भी ईश्वर के बारे में बातें कर रहे थे और वे ऐसा सबसे स्वाभाविक तरीके से कर रहे थे। वे एक-दूसरे परिवर्तनों के बारे में बता रहे थे जो उनके अंदर आध्यात्मिक शक्ति द्वारा घटित हुये थे।

जिन लोगों को यह भ्रम है कि अगर आप धार्मिक है तो आप हँस नहीं सकते या जोशीले नहीं हो सकते, उन्हें उस पार्टी में होना चाहिये था।

तो, मैं उस पार्टी से जब लौटा तो मेरे दिमाग में बाइबल की एक पंक्ति घुमड़ रही थी: “उसी में जीवन था; और वह जीवन लोगों की रोशनी बन गया।” (जॉन 1:4)। मैंने इस सुखी लोगों के चेहरों पर उसी रोशनी को देखा। उनके चेहरों पर बाहर उसी आंतरिक रोशनी की झलक थी और यह किसी जोशीले आध्यात्मिक स्रोत से आयी थी जिसे उन्होंने अपने अंदर बिठा लिया था। जीवन का अर्थ है जीवंतता और यह लोग स्पष्ट रूप से ईश्वर से अपनी जीवंतता प्राप्त कर रहे थे। उन्होंने वह शक्ति पा ली थी जो सुख का निर्माण करती है।

यह कोई अकेली घटना नहीं है। मैं यह कहना चाहूँगा कि आपके अपने समुदाय में, अगर आप अपने चारों तरफ़ उनकी खोज करें, तो आपको इस तरह के बहुत से लोग मिल सकते हैं। अगर आपको अपने शहर में ऐसे लोग न मिलें तो आप न्यूयॉर्क में मार्बल कॉलेजियेट चर्च में आ जायें और यहाँ वे आपको सैकड़ों की तदाद में मिलेंगे। परंतु आप भी इस पुस्तक को पढ़कर अपने अंदर इसी तरह की

भावना विकसित कर सकते हैं बशर्ते आप इसमें दिये गये आसान सिद्धांतों का अभ्यास करें।

जब आप यह पुस्तक पढ़े तो जो लिखा है उसमें विश्वास करें क्योंकि यह सच है। फिर इस पुस्तक में दिये गये व्यवहारिक सुझावों पर काम करना शुरू कर दें, और आपको भी वह आध्यात्मिक अनुभव होगा जो सुख होगा। मैं जानता हूँ कि ऐसा होता है क्योंकि मैंने जिन कई लोगों का उल्लेख किया है और जिनका मैं बाद में आने वाले अध्यायों में उल्लेख करूँगा, उन सभी ने इसी तरीके से अपना महत्वपूर्ण नया जीवन प्राप्त किया है। फिर जब आप अंदर से बदल जायें तो आप अपने दुख का नहीं, बल्कि सुख का निर्माण करेंगे और वह सुख इस क्वालिटी और चारित्र का होगा कि आपको यकीन ही नहीं होगा कि आप उसी दुनिया में रह रहे हैं। सच तो यह है कि यह वही दुनिया नहीं होगी क्योंकि आप वही नहीं रहे, और आप ही उस दुनिया को निर्धारित करते हैं जिसमें आप रहते हैं। तो जब आप बदल जाते हैं तो आपकी दुनिया भी बदल जाती है।

अगर सुख हमारे विचारों से निर्धारित होता है तो आवश्यक है कि ऐसे विचारों को दूर भगा दें जो निराश या हताश करते हों। ऐसा किया जा सकता है अगर पहले आप सिर्फ़ ऐसा करने का निश्चय कर ले; दूसरे, आप एक आसानी से अमल में आने वाली तकनीक का प्रयोग करें जिसका सुझाव मैंने एक बिज़नेसमैन को दिया था। मैं उससे लंच के दौरान मिला था और मैंने शायद ही कभी इतनी निराशा भरी बातें सुनी होंगी। उसकी चर्चा अत्यधिक निराशाजनक थी और अगर मैं तैयार नहीं होता तो इसने मुझे भी प्रभावित कर दिया होता। उसका हर शब्द निराशा से भरा हुआ था। उसकी बातों को सुनकर आप यही सोचते कि हर चीज़ बर्बादी की तरफ़ बढ़ रही है। ज़ाहिर है यह व्यक्ति थका हुआ था। एकत्रित होती समस्यायें उसके दिमाग़ में भरी हुई थीं और वे दुनिया से भागकर उसके मस्तिष्क में शरण ले चुकी थीं। उसकी कम ऊर्जा का कारण यही था कि वह इस दुनिया का सामना करने के बजाय इसे कोसने में लगा हुआ था। उसकी प्रमुख समस्या उसका निराशावादी चिंतन था। उसे प्रकाश और आस्था की दवा की ज़रूरत थी।

तो थोड़े साहस के साथ मैंने कहा, “अगर आप बेहतर अनुभव करना चाहते

हैं और दुःखी नहीं रहना चाहते हैं तो मैं ऐसा कुछ दे सकता हूँ जो आपको ठीक कर देगा।”

“आप क्या कर सकते हैं?” उसने व्यंग्य से कहा। “क्या आप कोई चमत्कारी व्यक्ति हैं?”

“नहीं,” मैंने जवाब दिया, “परंतु मैं आपको एक चमत्कारी व्यक्ति के संपर्क में ले आऊँगा जो आपके दुख को बाहर निकाल देगा और आपके जीवन को नई दिशा देगा। मैं पूरी गंभीरता से यह बात कह रहा हूँ,” चलते-चलते मैंने उससे यह कहा।

जाहिर है उसकी जिज्ञासा जाग गई थी क्योंकि उसने बाद में मुझसे संपर्क किया और मैंने उसे अपनी एक छोटी सी पुस्तक थॉट कन्डीशनर्स दे दी। इसमें स्वास्थ्य और सुख प्रदान करने वाले चालीस विचार दिये गये हैं। चूँकि यह पॉकेट साइज़ की बुकलेट है इसलिये मैंने सुझाव दिया कि वह इसे हमेशा अपने पास रखे ताकि आसानी से इसे कभी भी पढ़ा जा सके और मैंने उसे यह सुझाव भी दिया कि वह चालीस दिनों तक हर दिन अपने दिमाग में एक विचार को डालता रहे। मैंने कहा कि वह हर विचार को याद कर ले और इस तरह उसे अपनी चेतना में घुलने की अनुमति दे। इसके साथ ही वह यह कल्पना करे कि स्वस्थ विचार उसके मस्तिष्क में शांति और उपचार का प्रभाव डाल रहा है। मैंने उसे आश्चर्य किया कि अगर वह इस योजना पर अमल करेगा तो ये स्वस्थ विचार उसके बीमार विचारों को बाहर निकाल देंगे जो उसके सुख, उसकी ऊर्जा और रचनात्मक योग्यता को नष्ट कर रहे थे।

यह विचार उसे शुरुआत में तो अजीब सा लगा और उसके मन में शंकाये थीं, परंतु बाद में वह मेरे मार्गदर्शन के हिसाब से चला। लगभग तीन सप्ताह बाद उसने मुझे फ़ोन किया और वह चहक रहा था, “इसने तो जादू कर दिया। यह तो चमत्कार हो गया। मैं अब दुख के दलदल से बाहर निकल गया हूँ और मुझे विश्वास नहीं होता कि यह संभव था।”

वह अब भी “दुख के दलदल” से बाहर है और वह सचमुच सुखी व्यक्ति है। यह सुखद स्थिति इसलिये बनी क्योंकि वह अपने खुद के सुख का निर्माण करने की शक्ति में दक्ष हो गया। उसके बाद में यह टिप्पणी की कि उसकी पहली मानसिक

बाधा ईमानदारी से इस तथ्य का सामना करना था कि हालाँकि उसका दुख उसे दुखी बना रहा था, परंतु वह आत्म-दया और आत्म-दंड के विचारों का आदी को चुका था। वह जानता था कि वह बीमार विचार उसकी समस्या का कारण थे, परंतु वह उस प्रयास को करने से पीछे हट रहा था जो उसमें पर्याप्त परिवर्तन करने के लिये आवश्यक थे। परंतु जब बाद में उसने सुनियोजित ढंग से स्वस्थ आध्यात्मिक विचार अपने मस्तिष्क में डालना शुरू किये तो उसने पहले तो नया जीवन चाहा, फिर उसे इस रोमांचक तथ्य का एहसास हुआ कि उसे यह मिल सकता है, फिर उसे और भी आश्चर्यजनक तथ्य का पता चला कि उसे यह मिल रहा था। परिणाम यह हुआ कि आत्मसुधार की प्रक्रिया शुरू होने के लगभग तीन सप्ताह बाद नया सुख उसके आँगन में बरसने लगा। (नार्मन.वि.पील)

हाय! रे ढोंगी (क्रूर, संकीर्ण) धार्मिक

(चाल:-बस्ती-बस्ती पर्वत...)

हाय! रे ढोंगी/(क्रूर, संकीर्ण) धार्मिक जन! तेरे धर्म तो पाखण्ड सम।

गोमुख व्याघ्र सम बाह्य वृत्ति, अंतरंग में समता न शान्ति॥ (स्थायी)

आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र रिक्त, पावन भाव-व्यवहार से मुक्त।

स्व पर विश्वहित विरक्त, ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व युक्त॥ (1)

ईर्ष्या घृणा तृष्णा भेदभाव सहित, परनिंदा अपमान सहित।

परशोषण से ले आतंकवाद सह, दया दान सेवा परोपकार रहित॥ (2)

ध्यान अध्ययन शोध बोध, उदार व्यापक सहिष्णुता रिक्त।

दिखावा ढोंग प्रपंच मिथ्या-दबाव प्रलोभन भय सहित॥ (3)

संकल्प विकल्प संक्लेश अपेक्षा उपेक्षा प्रतीक्षा सहित।

भोगाकांक्षा निदानबंध सह, सत्ता सम्पत्ति व प्रसिद्धि सहित॥ (4)

नकल प्रतिस्पर्द्धा पक्षपात सह, गुणगुणी निंदा घृणा सहित।

आत्मा परमात्मा के भाव रहित, स्व शुद्ध आत्मा की श्रद्धा (प्रज्ञा) रिक्त॥ (5)

स्वयं को मानते हो देहस्वरूप, देह हेतु ही सदा चिन्ता रत।

धन जन नाम को मानते हो मेरा, इस हेतु ही भाव-व्यवहार सारा/(तेरा)॥ (6)

इससे परे करो आत्मविशुद्धि, जिससे कर्मनाश से पाओगे मुक्ति।

इस हेतु त्याग करो रागद्वेष मोह, इस हेतु आह्वान करें 'कनक सूरी' ॥ (7)

ग.पु.का.दि-29-6-2019 अपराह्न 6:31

“स्वहित की प्राथमिकता व प्रधानता से विश्वहित करूँ”

(स्वहित-घातक विश्वहित व बाह्य प्रभावना न करूँ)

(चाल:-1.आत्मशक्ति...2.भातुकली...3.क्या मिलिए...)

-आचार्य कनकनन्दी

स्वपर विश्वहित हेतु मैं बना हूँ निर्ग्रन्थ श्रमण।

पहले स्वहित (सही) करूँ इस के अनन्तर अन्यहित सम्पादन॥

जो दीपक स्वयं प्रकाशित होता उससे होते अन्य प्रकाशित।

जो फूल स्व सुगन्धीत होता उस से अन्य भी होते सुगन्धीत॥ (1)

जिसके पास जो होता वह अन्य को भी वह दे पाता।

यथा तीर्थंकर बुद्ध दुधारू गाय सूर्य फलदार वृक्ष से होता॥

स्वहित होता है आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र युक्त समताशान्ति।

आत्मविशुद्धि हेतु ज्ञान ध्यान निस्पृहतायुक्त मौन वृत्ति॥ (2)

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्याग लन्द फन्द द्वन्द्व वर्चस्व।

संकल्प विकल्प संक्लेश त्याग अपेक्षा उपेक्षा प्रतिक्षात्याग॥

अपना पराया भेदभाव रहित आकर्षण विकर्षण से रहित।

धन जन मान भीड़ प्रदर्शन माईक मंच पाण्डाल निमन्त्रण काई॥ (3)

सरल सहज भाव व्यवहार पर दबाव प्रलोभन भय रहित।

आरंभ परिग्रह वाद विवाद रहित आध्यात्मिक साधना सहित॥

लौकिक काम व गृहस्थाश्रम आश्रित काम (धर्म) मैं त्यागूँ नवकोटि से।

श्रावक योग्य किन्तु साधु अयोग्य कार्य न करूँ नवकोटि से॥ (4)

मन्दिर धर्मशाला मठ निर्माण पंचकल्याणक विधान तीर्थ निर्माण।

विवाह व्यापार कृषि व पशुपालन धनजन संग्रहादि काम॥

आत्मविशुद्धि हेतु प्रमुखता से ध्यान अध्ययन लेखन प्रवचन।

शोध बोध सहित उदार व्यापक स्वपरहित युक्त विश्व कल्याण॥ (5)

मैत्री प्रमोद कारूण्य माध्यस्थ युक्त दशधर्म पालन व अनुचिन्तन।
द्रव्यक्षेत्रकालभाव व शक्ति भक्ति युक्त बाह्य प्रभावना व तप त्याग।।
आगम अनुभव व विज्ञान आयुर्वेद मनोविज्ञान व कर्म सिद्धान्त।
अनेकान्त समन्वय युक्त स्वहित पूर्वक 'कनक' करे परहित।। (6)

ग.पु. का दिनांक-01.07.2019 प्रातः 7.40

संदर्भ-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।

एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।। (4) समयसार

टीका:-इस समस्त जीवलोक को, कामभोगसम्बन्धी कथा एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यन्त विसंवाद करानेवाली है (आत्मा का अत्यन्त अनिष्ट करनेवाली है) तथापि पहले अनन्त बार सुनने में आई है, अनन्त बार परिचय में आई है, और अनन्त बार अनुभव में भी आई है। वह जीवलोक, संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित है, निरन्तर, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनन्त परावर्तन के कारण भ्रमण को प्राप्त हुआ है, समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत जिसके पास बैल की भाँति भार वहन कराता है, जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग के दाह से अंतरंग में पीड़ा प्रगट हुई है, आकुलित हो होकर मृगजल की भाँति विषयग्राम को (इन्द्रियविषयों के समूह को) जिसने घेरा डाल रखा है, और वह परस्पर आर्चायत्व भी करता है (अर्थात् दूसरों से कहकर उसी प्रकार अंगीकार करवाता है)। इसलिये कामभोग की कथा तो सबके लिये सुलभ है। किन्तु निर्मल भेदज्ञान रूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही है, -जो कि सदा प्रगट रूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है, तथापि कषायचक्र (कषायसमूह) के साथ एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिये अत्यन्त तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (ढक रहा है) वह, अपने में अनात्मज्ञता होने से (स्वयं आत्मा को न जानने से) और अन्य आत्मा को जाननेवालों की संगति-सेवा न करने से, न तो पहले कभी सुना है, न परिचय में आया है और न कभी अनुभव में आया है, इसलिये भिन्न आत्मा-का एकत्व सुलभ नहीं है।

भावार्थ:इस लोक में समस्त जीव संसाररूपी चक्रपर चढ़कर पंच परावर्तनरूप

भ्रमण करते हैं। वहां उन्हें मोहकर्मोदयरूपी पिशाच के द्वारा जोता जाता है, इसलिये वे विषयों के तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होते हैं; और उस दाह का इलाज (उपाय) इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकर उनकी ओर दौड़ते हैं; तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं। इस प्रकार काम तथा भोग की कथा तो अनन्तबार सुनी, परिचय में प्राप्त की और उसी का अनुभव किया इसलिये वह सुलभ है। किन्तु सर्व परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्यचमत्कारस्वरूप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को अपने से कभी नहीं हुआ, और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है उनकी कभी सेवा नहीं की; इसलिये उसकी कथा न तो कभी सुनी, न परिचय किया और न अनुभव किया इसलिये उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं, दुर्लभ है।

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।

ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। (16)

टीका:-यह आत्मा जिस भाव से साध्य तथा साधन हो उस भाव से ही नित्य सेवन करने योग्य है, इस प्रकार स्वयं विचार करके दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन करते हैं कि 'साधु पुरुष को दर्शन ज्ञान चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।' किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही है क्योंकि वे अन्य वस्तु नहीं-किन्तु आत्मा की ही पर्याय हैं। जैसे किसी देवदत्त नामक पुरुष के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण, देवदत्त के स्वभाव का उल्लंघन न करने से (वे) देवदत्त ही है, अन्यवस्तु नहीं, इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से आत्मा ही है-अन्य वस्तु नहीं। इसलिये यह स्वयमेव सिद्ध होता है कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।

भावार्थ:-दर्शन, ज्ञान, चारित्र-तीनों आत्मा की ही पर्याय हैं, कोई भिन्न वस्तु नहीं है; इसलिये साधु पुरुषों को एक आत्मा का ही सेवन करना यह निश्चय है और व्यवहार से दूसरों को भी यही उपदेश करना चाहिए।

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रित्वादेकत्वतः स्वयम्।

मेचकोऽमेचकश्चापि सममात्मा प्रमाणतः।। (16)

भावार्थ:-प्रमाण दृष्टि में तीन काल स्वरूप वस्तु द्रव्यपर्याय रूप देखी जाती है, इसलिये आत्मा को भी एक ही साथ एक अनेकस्वरूप देखना चाहिए।

दर्शनज्ञानचारित्रैस्त्रिभिः परिणत्वतः।

एकोऽपि त्रिस्वभावत्वाद् व्यवहारेण मेचकः॥ (17)

भावार्थः—शुद्धद्रव्यार्थिक नय से आत्मा एक है; जब इस नय को प्रधान करके कहा जाता है तब पर्यायार्थिक नय गौण हो जाता है, इसलिए एक को तीनरूप परिणमित होता हुआ कहना सो व्यवहार हुआ, असत्यार्थ भी हुआ। इस प्रकार व्यवहारनय से आत्मा को दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणामों के कारण 'मेचक' कहा है।

परमार्थेन तु व्यक्तज्ञातृत्वज्योतिषैककः।

सर्वभावांतरध्वंसिस्वभावत्वामेचकः॥ (18)

भावार्थः—भेददृष्टि को गौण करके अभेददृष्टि से देखा जाय तो आत्मा एकाकार ही है, वही अमेचक है।

दृष्टान्त देकर इसी बात को स्पष्ट करते हैं:—जैसे खारापन लक्षण है ऐसा नमक पानी रूप होता हुआ दिखाई देता है और द्रवत्व (प्रवाहीपन) जिसका लक्षण है, ऐसा पानी नमकरूप होता दिखाई देता है, क्योंकि खारेपन और द्रवत्व का एक साथ रहने में अविरोध है, अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आती, इस प्रकार नित्य उपयोगलक्षणवाला जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखाई नहीं देता और नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भाँति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है; जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते। इसलिये तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो, (अपना चित्त उज्ज्वल करके सावधान हो, और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर।)

भावार्थः—यह अज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य को अपना मानता है; उसे उपदेश देकर सावधान किया है कि जड़ चेतनद्रव्य दोनों सर्वथा भिन्न भिन्न हैं, कभी भी किसी भी प्रकार एकरूप नहीं होते ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है; इसलिये हे अज्ञानी! तू परद्रव्य को एकरूप मानना छोड़ दे; व्यर्थ की मान्यता से बस कर।

अब इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:—

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहला सन्।

अनुभव भव मूर्त्तः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्त्तम्।

पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन

त्यजसि भगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्।। (23)

श्रुकार्थः (अयि) 'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है। आचार्यदेव कोमल संबोधन से कहते हैं कि हे भाई! तू (कथम् अपि) किसी प्रकार महा कष्ट से अथवा (मृत्वा) मरकर भी (तत्त्वकौतूहली सन्) तत्त्वों को कोतूहली होकर (मूर्तेः मुहूर्तम् पार्श्ववर्ती भव) इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी होकर (अनुभव) आत्मानुभव कर (अथ येन) कि जिससे (स्व विलसन्तं) अपने आत्मा के विलासरूप, (पृथक्) सर्व परद्रव्यों से भिन्न (समालोक्य) देखकर (मूर्त्या साकम्) इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ (एकत्वमोहम्) एकत्व के मोह को (भगिति त्यजसि) शीघ्र ही छोड़ देगा।

भावार्थः—यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे (उसमें लीन हो), परीषह के आने पर भी डिगे नहीं तो घातियाकर्म का नाश करके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, मोक्ष को प्राप्त हो आत्मानुभव की ऐसी महिमा है तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यक्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है; इसलिये श्री गुरु ने प्रधानता से यहीं उपदेश दिया है।

खुश रहना है तो अपनी राय जल्दी ना बनाएं

डॉ. उज्ज्वल पाटनी (जाने माने बिजनेस ट्रेनर)

एक लाइफ कोचिंग प्रोग्राम में तीन व्यक्तियों का उदाहरण देते हुए निम्न तीन व्यक्तियों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करने को कहा गया।

मिस्टर 'ए' की दोस्ती अनेक खराब राजनेताओं से थी। वे रात-दिन ज्योतिषियों के चक्कर में पड़े रहते थे। उनकी दो पत्नियां थीं। वे दिनभर स्मोक किया करते थे और दिन में दो-तीन बार शराब भी पीते थे।

मिस्टर 'बी' को दो बार नौकरी से निकाल दिया गया। वे देर तक सोते थे। अपने कॉलेज में नशा करते हुए कई बार पकड़े गए। वे शराब के सेवन के बिना एक भी रात सो नहीं पाते थे।

मिस्टर 'सी' एक युद्ध के हीरो थे। एक शुद्ध शाकाहारी व्यक्ति थे, जिन्होंने ना तो कभी सिगरेट को छुआ और ना शराब को। वे अपनी पत्नी के प्रति वफादार भी थे।

यह उदाहरण देकर सभी प्रतिभागियों से पूछा गया कि इन तीनों में से बेहतर

इंसान कौन है। सभी लोगों ने स्वाभाविक तौर पर तीसरे व्यक्ति को चुना।

जब उत्तर बताया गया तो सभी चौंक गए। मिस्टए 'ए' फ्रेंकलिन रूजवेल्ट मिस्टर 'बी' विंस्टन चर्चिल और मिस्टर 'सी' एडोल्फ हिटलर। अब जिन्हें सभी ने चुना, वो एडोल्फ हिटलर है, जिससे आधी दुनिया नफरत करती है और दूसरे वे दो हैं, जो कई लोगों के लिए रोल मॉडल की तरह हैं।

यह गलती इसलिए हुई क्योंकि लोगों ने महज एक-दो वाक्यों के आधार पर उनको चुना, मगर सिर्फ एक-दो वाक्यों से, एकाध घटना से किसी के बारे में समझ पाना मुश्किल होता है। हर किसी के व्यक्तित्व में कुछ अच्छे पहलू होते हैं, तो कुछ बुरे और कुछ न्यूट्रल पहलू भी होते हैं। अब ढेर सारी अच्छाई होने के बावजूद यदि आपने सिर्फ एक-दो बुराईवाला पहलू देख लियो तो आपकी वही राय बन गई। ढेर सारी बुराइयों के बाद भी अपने सिर्फ एक अच्छाई वाला व्यवहार देखकर किसी पर भरोसा कर लिया और बाद में दिल टूट गया।

सामान्य जीवन में हम सब यही गलती कर लेते हैं। अक्सर हम किसी के बारे में थोड़ा-सा जानते हैं और एक राय बना लेते हैं। किसी एक घटना के आधार पर किसी व्यक्ति के बारे में बहुत सकारात्मक या नकारात्मक सोच बैठते हैं, लेकिन क्या जीवन इतना सीधा और सरल है? क्या कोई एक घटना, क्या कोई एक हादसा, क्या कोई एक लाइन और क्या कोई एक व्यवहार किसी व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व को तय कर सकता है? शायद नहीं। यदि जीवन में खुशी और सफलता पानी है तो सबसे जरूरी यह है कि हम लोगों के बारे में जल्दी से राय कायम ना करें। राय कायम करने के लिए थोड़ा वक्त लें और बहुत जल्दी-जल्दी लोगों के बारे में प्रतिक्रिया देने से भी बचें। कोई जरूरी नहीं है कि आप हर चीज में अपनी प्रतिक्रिया दें ही।

यदि किसी विवाद में आपने तुरंत प्रतिक्रिया दे दी तो हो सकता है वह आपके लिए नुकसानदेह साबित हो जाए, क्योंकि बाद में आपको पता चले कि यही तथ्य कुछ और ही थे। हमेशा अपनी नकारात्मक प्रतिक्रिया को धैर्य से रोकें, तथ्यों का सही तरीके से आकलन करें, और फिर बात कहें। लोगों, परिस्थितियों और घटनाओं के बारे में बहुत जल्दी राय न बनाएं। तटस्थ रहना परिपक्वता का प्रमाण है। प्रतिक्रिया देने के पहले कई बार सोचें व समझें और यदि आप निश्चित ना हो तो शांत रहे। प्रतिक्रिया

नहीं देने के दुष्परिणाम बहुत कम है, लेकिन गलत प्रतिक्रिया देने के बहुत ज्यादा। एक औसत व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया को रोक नहीं पाता, उसके भीतर इतना संयम नहीं होता, वो 'टिट फॉर टेट' के सिद्धांत पर काम करता है। उसके विपरीत एक गरिमामय व्यक्ति अपनी प्रतिक्रियाओं का चुनाव स्वयं करता है और अपने चाहे गए वक्त पर देता है। वो बहुत जल्दी उत्तेजित और उद्वेलित नहीं होता और सही परिस्थितियां देखकर कार्य करने में यकीन रखता है।

आप देखेंगे कि तटस्थ रहने का भी अपना ही आनंद और खुशी है। उससे तनाव नहीं आता। उससे लोगों से हमारी उम्मीद नहीं बनती। उससे हम लोगों के बाहरी व्यक्तित्व से परे होकर उनके अन्तर्मन को समझ पाते हैं। कभी-कभी बाहर से पहली नजर में सही नजर नहीं आने वाले लोग बाद में बहुत कुछ अच्छे साथी सिद्ध होते हैं। तटस्थ रहने से आपके निर्णय बेहतर होंगे, बिना किसी पूर्वाग्रह के होंगे और आप बेहतर तरीके से जीवन जी पाएंगे।

सेहत बनी रहे बारिश की उमस में भी

गर्मी में झुलसने और तपने के बाद बारिश की बूँदे अच्छी तो लगती हैं, पर ये अपने साथ लाती हैं सेहत का ज्यादा ध्यान रखने की चेतावनी भी। इस मौसम की उमस और बीमारियों से बचने के लिए कुछ बातें ध्यान रखनी होंगी।

मानसून का मौसम जहां बारिश की ठंडी फुहारों संग उमंगे और खुशियां लाता है, वहीं साथ लाता है-पानी के वाष्प कणों और नमी से भरी हवाओं वाला उमस का मौसम। नमी से भरा यह मौसम कई बार असहनीय ही नहीं होता, बल्कि हमारे स्वास्थ्य खासकर त्वचा के लिए खतरनाक साबित होता है।

इस समय संक्रमण फैलाने वाले बैक्टीरिया, वायरस, फंगस और धूल के कण सक्रिय हो जाते हैं, जिनसे कोई भी व्यक्ति इसका शिकार हो सकता है। इस नमी का असर शरीर से निकलने वाले पसीने पर आसानी से देखा जा सकता है। गर्मी में पसीना वाष्पित होकर शरीर को ठंड रखता है, उसकी नमी बनाए रखता है। लेकिन उमस के मौसम में सूख न पाने के कारण यह पसीना शरीर को चिपचिपाहट

से भर देता है।

हमारी त्वचा के पोर बंद हो जाते हैं, जिससे अंदरूनी त्वचा सांस नहीं ले पाती और त्वचा संबंधी रोग पनपने लगते हैं। ध्यान न दिए जाने पर रैशेज, मुंहासे, घमौरिया, फोड़े-फुंसिया जैसे त्वचा संबंधी रोगों की चेपट में आ जाते हैं। इनसे उबरने के लिए उठाएं ये जरूरी कदम-

पर्सनल हाइजीन का रखें ध्यान

चिपचिपाहट भरे इस मौसम में व्यक्तिगत स्वच्छता का खास ख्याल रखना चाहिए। एंटीबैक्टीरियल या ग्लिसरीन युक्त साबुन से दिन में दो बार स्नान करें और अंडरगार्मेंट्स जरूर बदलें। बाल एक दिन छोड़कर जरूर धोएं। रूसी से बचने के लिए नहाने से एक घंटा पहले तेल को गर्म करके या नींबू मिला कर लगाएं। त्वचा संबंधी संक्रमण से बचाव के लिए जरूरी है कि प्रभावित क्षेत्र को सूख रखा जाए। एंटीबैक्टीरियल पाउडर, मेडीकेटिड क्रीम या लोशन का इस्तेमाल करें।

सूती और हल्के कपड़े बचाएंगे गर्मी से

इस मौसम में सिथेटिक, मोटे और टाईट फिटिंग के कपड़ों के बजाय हल्के रंग, पतले और सूती वस्त्र पहनें। इनसे एक तो आपको गर्मी कम महसूस होगी, दूसरी पसीने से गीले हुए कपड़े भी सूख जाएंगे।

खाने-पीने में बरतें थोड़ा एहतियत

डिहाइड्रेशन से बचने के लिए दिन में करीब 8-10 गिलास पानी जरूर पिएं। पानी फिल्टर या उबला हुआ हो। घर में तैयार जूस, नींबू पानी, लस्सी, सूप फायदेमंद होता है।

विषाक्त पदार्थों से बचने के और डिटॉक्सीफाई करने के लिए पानी में एक चम्मच शहद मिलाकर पिएं। एंटीबायोटिक्स गुणों से भरपूर तुलसी और अदरक की चाय लें। ये उमस की नमी के प्रभाव से पाचन-तंत्र को बचाकर इम्यून सिस्टम मजबूत बनाने में मदद करते हैं। गर्म, ताजा, कम मसाले और कम चिकनाई वाला हल्का खाना जाएं। बारिश के मौसम में पत्तेदार सब्जियां खाने से बचना चाहिए। भोजन में अदरक, अजवायन का प्रयोग करें।

यदि होता दान आगम अनुसार तो...!?

(दानी को सातिशय पुण्य लाभ, धर्म प्रभावना सही, समस्याएं नहीं)

(आहार-औषधि-अभय-ज्ञानदानादि व दयादत्ति)

(चाल:-1.क्या मिलिए...2.आत्मशक्ति...)

यदि होता दान आगम अनुसार तो सातिशय पुण्य भागी होता दानी।

धर्म प्रभावना भी होती प्रचुर, समस्यायें भी न होती भी कोई।।

सम्यग्दृष्टि दान करते हैं, श्रद्धा प्रज्ञा व गुण सहित।

भोगाकांक्षा निदान रहित व लोभमान माया क्रोध रहित।। (1)

शक्ति के अनुसार दबावप्रलोभ व भय रहित करते हैं दान।

दिखावा आडम्बर प्रचार-प्रसार रहित ख्याति पूजा वर्चस्व शून्य।।

न्याय से उपार्जित धन का एक चतुर्थांश (1/4) करे तो उत्तमदान।

एक षष्ठमांश दान है मध्यम एकदशमांश दान होता जघन्य।। (2)

आहार औषधि अभय उपकरण वसति का से ले ज्ञानदान।

दयादत्ति भी करते गरीब रोगी असहाय मनुष्य से तिर्यच के काम।।

धन के साथ ही तनमन वचन व समय श्रम से करते दान।

चतुर्विध संघ सहित विधान पंच कल्याणक मन्दिरादि निर्माण।। (3)

इससे बोली याचना चन्दाचिह्ना दबाव प्रलोभनादि की न होती समस्या।

आगम विरुद्ध व कलह विसंवाद उगाहि आदि की न होती समस्या।।

इससे विपरीत दानी को होते सातिशय पुण्य लाभ से स्वर्गमोक्ष लाभ।

चतुर्विध संघ की न होती समस्या धर्म प्रभावना होती अति विशेष।। (4)

इस कविता में संक्षेप में किया वर्णन अन्यान्य साहित्य में विशेष वर्णन विशेष जिज्ञासु करे उससे अध्ययन “कनकसूरी” का लक्ष्य परिनिर्माण।।

दाणं पूया मुक्खं सावयधम्मो ण सावया तेण विणा।

झाणाज्झयणं मुक्खं जइधम्मो तं विणा तहा सो वि।। (11) रयण.

पद्य- दान पूजा मुख्य श्रावक धर्म में, न श्रावक इसके बिना।

ध्यान-अध्ययन मुख्य मुनि धर्म, न श्रमण इसके बिना।।

‘अतिथि देवो भवः’ संस्कृति पूर्व व अभी (स्व-संस्कृति से विमुख होते जा रहे हैं भारतीय)

(चाल:-सुनो-सुनो ऐ दुनिया...)

सुनो! भारतीय तुम्हारी संस्कृति, कितनी महान् वाली।

‘अतिथि देवो भवः’ संस्कृति, स्वर्ग से गरिमा वाली।

परम अतिथि होते हैं साधु जो बिना निमंत्रण आते हैं।

तिथि भी न होती निश्चित, जो आत्म साधना करते हैं। (1)

उनका आना तो महान् सौभाग्य (है), जो स्वर्ग-मोक्ष के दाता है।

नवधा भक्ति सप्तगुण युक्त, उन्हें आहार देना श्रेष्ठ है।

इसके साथ ही औषधि उपकरण, वसतिका देना योग्य है।

श्रद्धा, भक्ति, आदर, बहुमान युक्त, सेवा-व्यवस्था सहित है। (2)

गृहस्थ आते जो निमंत्रण से, उन्हें अभ्यागत कहते हैं।

उनका भी आदर सत्कार से, व्यवस्था करने योग्य है।

स्वागत करना पैर धुलवाना, उच्चासन दे सुख: दुःख पूछना।

षट्सयुक्त भोजन देना, हित-मित-प्रिय वार्ता करना। (3)

शत्रु भी आने पर होता था उनका स्वागत तथाहि आदर-सत्कार।

युद्ध क्षेत्र तक में यह होता था, युद्ध विराम के अनन्तर।।

विदेशों से जब आते थे यात्री, उनका भी होता था सत्कार।

भोजन से लेकर आवास-व्यवस्था, ज्ञानदान भी देकर।। (4)

अभी तो हाय! तुम भारतीय, स्व-संस्कृति का कर रहे हो अनादर।

पंथ-मत-जाति भाषा के अंतर से, अतिथि (साधु) से भी दुर्व्यवहार।

योग्य-साधु को भी गलत मानते, दान-सेवा-व्यवसाय से दूर।। (5)

तो भी स्वयं को सभ्य-सांस्कृतिक व धार्मिक का देते हो पुरस्कार।

संकीर्ण स्वार्थी व कट्टर बनकर, कर रहे हो मिथ्याचार।।

धार्मिक कट्टरता व आधुनिकता से, बन रहे हो असभ्य बर्बर।

इसे त्यागकर स्व-संस्कृति पालो इस हेतु ‘कनक’ करे पुकार।। (6)

उत्तम दाता

भागद्वयी कुटुम्बार्थं संचयार्थो तृतीयकः।

स्वरायो यस्य धर्मार्थं तुर्यस्त्यागी स सत्तमः॥ (धर्मरत्नाकर)

जो पुरुष अपने अर्जित धन का कुटुम्ब पोषण के लिए दो भाग, संचय के लिए तीसरा भाग तथा धर्म के लिए चौथा भाग नियत करता है, वह उत्तम दाता माना जाता है।

मध्यम दाता

भागत्रयं तु पोष्यार्थं कोशार्थं तु द्वयी सदा।

षष्ठं दानाय यो युङ्क्ते स त्यागी मध्यमोऽधमात्॥

जो अपनी आय में से सदा कुटुम्ब पोषण के लिए तीन भाग, संचय के लिए दो भाग और शेष छठे भाग को दान के लिए नियत करता है वह दानी अधम की अपेक्षा मध्यम कहा गया है।

जघन्य दाता

स्वस्वस्य यस्तु षड्भागान् परिवाराय योजयेत्।

त्रीन् संचयेद्दशांशं च धर्मं त्यागी लघुश्च सः॥

जो दाता अपने धन के दस भागों में से छह भाग परिवार पोषण के लिए, तीन भाग संचय के लिए तथा शेष दसवें भाग को धर्म के लिए नियोजित करता है वह दाता जघन्य माना जाता है।

इतो हीनं दत्ते सति सुविभवे यस्तु पुरुषो,

मतं तद्यात्किञ्चित् खलु न गणितं धार्मिकनरैः।

इमान् भागास्त्यक्त्वा वितरितं बुधो यस्तु बहुधा,

महासत्त्वस्त्यागी भुवनविदितोऽसौ रविरिव।।

जो पुरुष अतिशय वैभव के होने पर भी इससे-एक दशांश से भी कम दान देता है-उसे धार्मिक जन दाता लोगों में कुछ भी नहीं गिनते हैं-उसे वे दाता नहीं समझते हैं। किन्तु जो विद्वान्, उपर्युक्त भागों को छोड़कर अनेक प्रकार से बहुत धन को देता है, वह दानी महात्मा लोक में सूर्य के समान प्रसिद्ध होता है।

काय शुद्धि

यथादेशं यथाकालं पवित्रावयवांशुकः।

यद्दते संयमात्यागी कार्यशुद्धिर्मता तु सा॥ (10)

देश और काल के अनुसार जिसके हाथ-पाँव आदि अवयव शुद्ध हैं, जिसने पवित्र वस्त्र को धारण किया है तथा जो अपने संयम को नहीं छोड़ता हुआ पात्र को दान देता है उसे काय शुद्धि समझना चाहिए।

एषणा शुद्धि

यत्स्वकल्प्यमवगम्यतेऽगदं नित्यकर्मपरिवर्धनोचित्तम्।

सात्म्यकं यदूतुयोग्यमाहृतं दातुरन्धस इयं विशुद्धता॥ (11)

जो अपने लिए कल्प्य हो पात्र के लिए ग्राह्य हो, स्वास्थ्यप्रद प्रतीत होता हो, नित्य कर्म-सामायिक व स्वाध्याय आदि के बढ़ाने में समर्थ हो, सात्म्य-प्रकृति के लिए अनुकूल हो और ऋतु के भी अनुकूल हो ऐसे आहार को जो प्रदान करना है यह दाता की अन्धोविशुद्धि-एषणा शुद्धि है।

दाता के 7 गुण

ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निः कपटतानसूयत्वम्।

अविषादित्वमुदित्वे निरहंकारित्वमिति हि दातृगुणाः॥ (12)

(1) दान देते समय इससे मुझे धन-धान्यादि की प्राप्ति हो ऐसी मन में ऐहिक फल की इच्छा नहीं रखना (2) क्षमा भाव को धारण करना (3) कपट भाव को मन में स्थान न देना (4) दूसरों के दातृत्वादि गुणों को देखकर द्वेष न करना (5) आहार देते समय मन में खिन्नता का अनुभव न होना (6) मन का प्रसन्न होना (7) मन में अभिमान का न होना। ये दाता के सात गुण हैं।

दान के योग्य आहार

द्वेषं तथा रागमसंयमं च मदं च दुःखं य भयादिकं च।

दत्ते न यद्द्वयमदः प्रदेयं स्वाध्यायवृद्धयै तपसां समृद्धयै॥ (12)

श्रावक मुनि को ऐसा आहार दे जिससे उनके मन में द्वेष, राग भाव, असंयम

गर्व दुःख और भयादिक उत्पन्न न हो तथा जिससे स्वाध्याय और तपों की वृद्धि हो।

योग्य पात्र

पात्रं त्रिभेदमुक्तं संयोगो मुक्तिकारणगुणानाम्।

सम्यग्दृष्टिर्विरताविरतस्तथाविरतः॥ (13)

जिसके मुक्ति के कारणभूत सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र गुणों का संयोग है उसे पात्र कहते हैं। उसके तीन भेद हैं-विरत सम्यग्दृष्टि, विरताविरत और अविरत।

बालग्लानतपः क्षीणवृद्धव्याधिसमन्वितान्।

मुनीनुपचेन्नित्यं यथा ते स्युस्तपः क्षमाः॥ (27) (धर्मरत्नाकर)

जो मुनि बाल, रोगी तप से कृश, वृद्ध तथा रोग से पीड़ित हैं, उनकी निरंतर सेवा-वैयावृत्य करना चाहिए, जिससे वे तपश्चरण के लिए समर्थ हो सकें।

तपोऽनुष्ठानसच्छास्त्रविशेषाध्ययनक्रमात्।

मानवःसंमतं पात्रं समयस्थोयऽप्यनेकधा॥ (33)

जो मनुष्य तपश्चरण और समीचीन शास्त्रविशेषों के अध्ययन के क्रम से आगम के आश्रित हैं वह पात्र माना गया है जो अनेक प्रकार का है।

गृहस्थो या यतिर्वापि जैनं समयमास्थितः।

यथाकालमनुप्राप्तः पूजनीयः सुदृष्टिभिः॥ (33-1)

जो जैन धर्म का धारक है वह चाहे गृहस्थ हो अथवा मुनि हो, समयानुसार उसके प्राप्त होने पर सम्यग्दृष्टियों को उसकी पूजा करनी चाहिए।

ज्योतिर्मनत्रनिमित्तज्ञः सुप्राज्ञः कार्यकर्मसु।

मान्यः समयिभिः सम्यक् परोक्षार्थसमर्थकः॥ (33-2)

जो ज्योतिः शास्त्र मंत्रशास्त्र और निमित्तशास्त्र का ज्ञाता है, करने योग्य कार्यों में अतिशय चतुर है तथा परोक्ष पदार्थों का समर्थक है उनके विषय में आस्था रखता है-इनका श्रावकों को भलीभाँति सम्मान करना चाहिए।

दीक्षायात्राप्रतिष्ठाद्याः क्रियास्तद्विरहे कुतः।

तदर्थं परपृच्छायां कथं च समयोन्नतिः॥ (33-3)

उपर्युक्त ज्योतिशास्त्र आदि के मर्मज्ञों आदि का सम्मान नहीं किया जायेगा तो प्रायः उनका अस्तित्व ही असंभव हो जायेगा और जब उनका अस्तित्व ही न रहेगा तब उनके बिना (जिन दीक्षा, तीर्थयात्रा और प्रतिष्ठा आदि जैसे) शुभ कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेंगे? यदि कदाचित् अन्य मतानुयायी ज्योतिषशास्त्रादि के ज्ञाताओं से उनके संबंध में पूछा जाये तो वैसी अवस्था में जैनधर्म की उन्नति कैसे हो सकती है? (अतएव जैनशासन भक्तों को उनका सम्मान करना ही चाहिए।)

मूलोत्तरगुणैः श्लाघ्यैस्तपोभिर्निष्ठितास्थितिः।

साधुः साधु भवेत्पूज्यः पुण्योपार्जनपण्डितैः॥ (33-4)

जो गृहस्थ पुण्य के उपार्जन में दक्ष है उसका संचय करना चाहते हैं उन्हें प्रशंसनीय मूलगुणों और उत्तरगुणों से सम्पन्न तथा अनशनादि तपों के द्वारा अपनी स्थिति को स्थिर करने वाले साधु की भलीभाँति पूजा करनी चाहिए।

ज्ञानकाण्डे क्रियाकाण्डे चातुर्वर्ण्यपुरस्सरः।

सुरिर्देव इवाराध्यः संसाराब्धितरण्डकः॥ (35-5)

जो आचार्य ज्ञानकाण्ड और क्रियाकाण्ड में दक्ष होकर चातुर्वर्ण्य संघ का मुनि, आर्यिका, श्रावक समूह का अग्रणी होता हुआ संसार समुद्र से पार उतारने के लिए दृढ़ नौका के समान है उसकी देव के समान आराधना करनी चाहिए।

लोकवित्त्वकवित्वाद्यैर्वादिवागिनमत्वकौशलैः।

मार्गप्रभावनोद्युक्ताः सन्त पूज्या विशेषतः॥ (36-6)

जो सत्पुरुष लोकव्यवहार में निपुण होकर प्रतिभापूर्ण कविता आदि के द्वारा तथा वाद-शास्त्रार्थ एवं प्रशस्त वक्तृत्व में प्राप्त कुशलता के द्वारा मोक्षमार्ग की प्रभावना में प्रयत्नशील रहते हैं; उनकी विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए।

प्रकारान्तर से दाता के सात गुण

श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा शक्तिः।

यत्रैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति॥ (18-1)

श्रद्धा, संतोष, भक्ति, विज्ञान, लोभ से रहितता, क्षमा और शक्ति ये सात गुण जिस दाता में हैं, उस दाता की प्रशंसा की जाती है।

आस्तिक्य गुण

आत्मा परोपकरणप्रमुखैर्गुणौघैर्यत्पात्रदेयविषयैरधिवासनः स्यात्।

आस्तिक्यमप्रतिहतं च तदन्योगैर्दानादिसेवापरायणमानवस्य॥ (19)

सत्पात्रदान आदि के आराधन में तत्पर रहने वाले श्रावक का आत्मा पात्र और देय द्रव्य विषयक जिन परोपकार आदि गुणों के समूहों में सुसंस्कृत होता है उनके अतिरिक्त अन्य गुणों के संबंध में उनके निर्बाधा आस्तिक्य गुण रहता है।

श्रद्धा गुण

सद्वैद्यमप्रतिहतं शुभनामगोत्रे तीर्थप्रवृत्तिचरितोचितधर्म एव।

स्वर्गापर्वसुखसिद्धिरपीति बुद्धिः श्रद्धाभ्यधायि कविकल्पविमुक्तिचिते॥ (20)

जिसका अंतः करण दुष्ट विकल्पों से रहित हो चुका है उसके तीर्थ प्रवृत्ति व चारित्र के योग्य धर्म के होने पर निर्बाध सातावेदनीय तथा शुभ नाम व गोत्र कर्मों का बंध एवं स्वर्ग व अंत मुक्ति सुख की भी प्राप्ति होती है, इस प्रकार की जो दाता की बुद्धि रहती है उसे श्रद्धा गुण कहा गया है।

संतोष गुण

व्याकोशवारिजविकासिविलोचने यत् पीयूषपानबहुलोद्धृषिताङ्गकं च।

आराध्यसद्गुणभरग्रहणानतिर्यत् सा तुष्टिरित्यकश्चि पुण्यसुतोषपात्रम्॥ (21)

प्रफुल्ल कमल के समान दोनों नेत्र, अमृत पान की अधिकता से रोमांच युक्त शरीर तथा आराधन के योग्य समीचीन गुणों के भार से नम्रता-सत्पात्र के लिए आदर सूचक नमस्कार होता है, यह तुष्टि नाम का गुण है। यह गुण पुण्य और संतोष का स्थान है।

भक्ति गुण

लीये किमत्र नु पिबामि विलोचनाभ्या

मुतोषये कथमथो शिरसा वहामि।

आनन्त्यतो गुणगणस्य कथं स्तुवेऽहं

चित्ते वितृप्तिरिति भक्तिरवादि पूज्ये॥ (21-1)

क्या मैं इस आराध्य, पवित्र पाठ के विषय में लीन हो जाऊँ अथवा क्या अपनी आँखों से इसे पीता रहूँ-देखता ही रहूँ? मैं इसे किस प्रकार से संतुष्ट करूँ अथवा मैं इसे शिर पे धारण करता हूँ। इस आराध्य में अनंत गुणों का समूह होने से इसकी मैं कैसे स्तुति कर सकता हूँ? इस तरह पूज्य पात्र के विषय में जो चित्त में विशेष तृप्ति होती है, उसे भक्ति कहते हैं।

विज्ञान गुण

यद्दीयते किमपि कालबलं विवच्य पात्रस्य च प्रकृतिमहप्यवगम्य देशम्।
रत्नत्रयस्य परिवृद्धिकरं च कल्प्यं विज्ञानमेतदनुज्जुरनिन्द्यबोधाः॥ (22)

काल के सामर्थ्य पात्र की प्रकृति तथा देश के जलवायु का विचार कर रत्नत्रय की वृद्धि कराने वाला जो कुछ योग्य (निर्दोष होने से ग्राह्य) आहार पात्र को दिया जाता है उसके-उस प्रकार के ज्ञान को निर्दोष ज्ञान वाले (गणधरादि) विज्ञान गुण कहते हैं।

निर्लोभता गुण

यत्केवलीसंस्तवमन्त्रविद्याममत्वबुद्ध्यादिफलानपेक्ष्यम्।
वितीर्यते शासनवर्धनार्थमलुब्धतां तां परिपूर्णयन्ति॥ (23)

‘आप केवली हैं, ऐसी स्तुति, मंत्र विद्या और धनादिक में ममत्व बुद्धि, इत्यादि फलों की मन में अपेक्षा न करके केवल जिनशासन बढ़ाने के लिए जो पात्र को दान दिया जाता है उसको अलुब्धता गुण कहते हैं। इसे दाता पूर्ण करते हैं।’

क्षमा गुण

पात्रे क्रोशति शिक्षार्थमज्ञानाद्वापि हृष्टवत्।
चाटूक्तिगर्भशान्तोक्तिर्या क्षमा सा प्रशस्यते॥ (24)

पात्र यदि शिक्षा देने के लिए अथवा अज्ञान से कुछ भी कटु शब्द बोलता है किंवा अविवेकी के समान कटु शब्द बोलने लगे तो आनंद से नम्रतापूर्वक जो शांति युक्त भाषण किया जाता है इसका नाम क्षमा है। उसकी सब ही प्रशंसा करते हैं।

शक्ति गुण

तूर्याशो वा षडंशो वा दशांशो वा निजार्थतः।
दीयते या तु सा शक्तिर्वर्या मध्याकनीयस॥ (25)

अपने धन में से दैनिक आय में से चतुर्थ, छठे अथवा दसवें भाग का जो सत्पात्र दानादि में सुदपयोग किया जाता है उसका नाम यथाक्रम से उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य शक्ति जानना चाहिए।

सत्त्व गुण

आत्मकष्टेऽपि यत्तृप्तममृतैरिवमन्यते।

पात्रोपकारतो दानं दातुः सत्त्वं तदुच्यते॥ (26)

पात्रदान से स्वयं को कष्ट होने पर भी उससे जो पात्र का उपकार होता है उससे दाता अपने को जो अमृत से तृप्त हुए के समान समझता है उसे सत्त्व गुण कहा जाता है।

अयोग्य आहार

विवर्णकं नो विरसं न विद्धमसात्मकं न प्रसृतं प्रदेयम्।

गदावहं हर्म्यवतामकल्प्यं स्वयं मुनिभ्यश्च विशेषतस्तत्॥ (27)

अतिशय पुराना होने से जिसका वर्ण विकृत हो गया है, रस परिवर्तित हो गया है, जो घुन गया है, असात्मक है दुःख को उत्पन्न करने वाला है, प्रसृत (विस्तृत) है तथा जिसके भक्षण से रोग उत्पन्न होने वाला है, ऐसा अन्न जब गृहस्थों के लिए योग्य नहीं है तब मुनियों के लिए तो वह सर्वथा ही योग्य नहीं है, ऐसा समझना चाहिए।

उच्छिष्टं नीचलोकार्हमन्योद्दिष्टं विगर्हितम्।

न देयं दुर्जनस्पृष्टं देवक्षादिकल्पितम्॥ (27-1)

जो अन्न जूठा हो, नीच लोगों के योग्य हो, अन्य के उद्देश्य से बनाया गया हो, निन्द्य हो, दुष्टजनों से स्पृष्ट हो तथा देव यक्षादि के लिए संकल्पित हो, ऐसे अन्न को मुनियों के लिए नहीं देना चाहिए।

ग्रामान्तरात्समीनीतं मन्त्रानीतमुपायनम्।

न देयमापणक्रीत विरुद्धं चायथर्तुकम्॥ (27-2)

जो अन्नादि अन्य ग्राम से लाया गया हो, मंत्र के द्वारा लाया गया हो, भेंट किया गया हो, बाजार से खरीदकर लाया गया हो, प्रकृति के विरुद्ध हो और ऋतु के प्रतिकूल हो, ऐसे अन्नादि को मुनियों के लिए देना योग्य नहीं है।

दधिसर्पिः पयोभक्ष्यप्रायं पर्युषितं मतम्।

गन्धवर्णरसभ्रष्टमन्यत्सर्वं विनिन्दितम्॥ (27-3)

दही, घी, दूध से बनाया हुआ पदार्थ पर्युषित-दूसरे दिन में भी प्रायः योग्य माना गया है। इससे भिन्न भक्ष्य पदार्थ गंध, वर्ण और रस में चलित भी हो गया हो वह सब निंद्य-पात्रदान के लिए अयोग्य माना गया है।

दाता का व्यक्तित्व

शाठ्यं च गर्वं च जलप्लुतत्वमवज्ञतां वाक्पुरुषत्वमन्यत्।

असंयमं वर्जयताद्विशेषादभक्तिक्षणेऽक्षुण्णतया मुनीनाम्॥ (28)

कपट, गर्व, चंचलपना, तिरस्कार, कठोर भाषण, असंयम तथा अन्य अयोग्य प्रवृत्ति, इन सबका सदा ही त्याग करना चाहिए। विशेषतया मुनियों के भोजन के समय में तो उनको पूर्णतया श्रावक को छोड़ देना चाहिए।

पात्र का आत्मगौरव

असंमताभक्तकदर्यमर्त्यकारुण्यदैन्यातिशयानवितानाम्।

एषां निवासेषु हि साधुवर्गः परानुकम्पाहितधीर्न भुङ्क्ते॥ (29)

दूसरों की दया में दत्तचित्त साधु समूह असंयत-जातीय बंधुओं के द्वारा बहिष्कृत भक्ति से रहित कृपण मनुष्य तथा दया व दीनता की अधिकता को प्रकट करने वाले मनुष्यों के निवास स्थान में भोजन नहीं किया जाता है।

नाहरन्ति महासत्त्वाश्चित्तेनाप्यनुकम्पनः।

किं तु ते दैन्यकारुण्यसंकल्पोज्झितवृत्तयः॥ (29-1)

दयालु, पराक्रमी, साधु पूर्वोक्त मनुष्यों के घर पर मन से भी आहार नहीं करते हैं (आहार ग्रहण करना तो दूर रहा, किन्तु वे उसका विचार भी नहीं करते हैं) फिर भी उनकी प्रवृत्ति दीनता, दया और संकल्प से रहित होती है।

दान स्वयं करे

स्वामिधर्मसमुपासनस्थितौ पुत्रजन्मनि सचेतनो भवन्।

द्वैकार्यवशतोऽन्यदा सदा संदिशेत्कथमिवापरं जनम्॥ (30)

मनुष्य सचेतन-बुद्धिमान होकर स्वामिसेवा, धर्मा राधना और पुत्रोत्पत्ति में दैव और कार्य की परवशता को छोड़कर अन्य समय में सदा इतर मनुष्य को कैसे सदेश दे सकता है? (अर्थात् कोई भी बुद्धिमान मनुष्य ऐसा नहीं करेगा।)

आत्मवित्तपरित्यागात्परैर्धर्मविधापने।

निःसंदेहमवामोति परभोगाय तत्फलम्॥ (30-1)

अपने धन के व्यय से दूसरों से धर्म कराने पर मनुष्य निश्चित ही दूसरों के भोग के लिए उसके फल को प्राप्त करता है (धर्मरत्नाकर-उद्दिष्टान्तप्रतिमाप्रपञ्चनम्)

**एद्वागच्छ समाश्रयासनमिदं प्रीतोऽस्मि ते दर्शनात्-
का वार्ता परिदुर्बलोऽसि च कथं कस्माच्चिरं दृश्यसे।**

एवं ये गृहमागतं प्रणयिनं संभाषयन्त्यादरात्।

तेषा वेश्मसु निश्चलेन मनसा गंतव्यमेव ध्रुवम्॥ (524)

प्रसन्न करके कार्य आदिक प्रकाशित किया जाय। राजा ने कहा सेठ जी ! अतिथि के आने पर आसनादि का देना गृहस्थों के लिए उचित है।

आइये-आइये, आसन पर बैठिये, आपके दर्शन से मुझे प्रसन्नता है क्या समाचार है? दुर्बल क्यों हो रहे हो? और बहुत समय बाद दिख रहे हो...इस प्रकार घर पर आये हुए स्नेही जनों से जो आदरपूर्वक संभाषण करते हैं उनके घर निश्चल चित्त से अवश्य ही जाना चाहिए।

दद्यात् सौम्यां दृशं वाचमक्षुण्णां च तथासनम्।

शक्त्या भोजन-ताम्बूले शत्रावपि गृहागते॥ (525) (स.कौ.)

घर पर आये हुए शत्रु के लिए भी स्नेह पूर्ण दृष्टि, परिपूर्ण वचन, आसन और शक्ति के अनुसार भोजन तथा पान देना चाहिए।

सांसारिक सुख भी सुपात्र दान के बिना नहीं

मादु पिदु पुत्त मित्तं कलत्त धण धण्ण वत्थु वाहण विभवं।

संसार सार सोक्खं सव्वं जाणउ सुपत्त दाणफलं॥ (19) रयण.

अन्वयार्थ-(मादु पिदु) माता-पिता (पुत्त मित्त) पुत्र-मित्र (कलत्त) स्त्री (धणधण्ण) गाय आदि धन धान्य आदि (वाहणं) गाड़ी मोटर आदि (विभवं)

वैभव (संसार सार सोक्खं) संसार के समस्त सुख सार को (सव्वं जाणउ) यह सब जान लेना कि (सुपत्तदाणफलं) सुपात्र दान का फल है।

पद्यभावानुवाद

माता पिता व पुत्र मित्र पत्नि धन धान्य वस्तु वाहन विभव।
संसार के सार सुख सब जान लो सुपात्र दान फल॥ (1)

समीक्षा शिक्षा

यथा बीज से अंकुर से वृक्ष व पत्र फूल-फल आते हैं।
फल तो अंतिम परिणाम है किन्तु पत्रादि भी उत्पन्न होते हैं॥ (2)

सुशिष्य की सद्गुरु प्रति कृतज्ञता व व्यथा ज्ञापन

वीतरागी गुरु का सदुपयोग व दुरूपयोग

(वैराग्य चाहना सदुपयोग तो वित्त (धन) चाहना दुरूपयोग)

-आचार्य कनकनन्दी

“मैं” को मुझे से मिलाने वाले, तुम हो सद्गुरु उपकारी अन्तरात्मा।
मैं नहीं हूँ तन मन तथा वचन, मैं हूँ जीवात्मा बनूँगा परमात्मा॥
मैं मानता था स्वयं को शरीरमय, धनजन कुटुम्ब को माना था मेरा।
मैं को शरीरमय मानना है ‘अहंकार’, धनजनादि को मेरा मानना “ममकार”॥ (1)
दोनों का स्वरूप होता मिथ्यात्व, इस से उत्पन्न होते राग द्वेष।
इन से उत्पन्न होते आकर्षण-विकर्षण, जिससे होता संसार में परिभ्रमण॥
आप के आध्यात्मिक उपदेश से, मेरे स्वभाव-विभाव का हुआ ज्ञान।
श्रद्धा-प्रज्ञा से मुझे हो रहा अनुभव, मेरा संसार समुद्र रहा अंजुली प्रमाण॥ (2)
आत्मशक्ति मेरी हो रही है जागृति, करना चाह रहा हूँ आत्मउन्नति।
आपसद्गुरु मुझे दे रहे हो उद्बोधन, परिनिर्माण हेतु बनो तू श्रमण॥
चारित्रमोहनीय मेरे कर्मादय से, श्रमण बनने हेतु नहीं हूँ समर्थ।
तब आपने दिया मुझे श्रावक कर्म, श्रावक धर्म नहीं पूर्ण उत्कृष्ट धर्म॥ (3)
दया दान सेवा परोपकार करणीय, अन्याय अत्याचार शोषण वर्जनीय।
आत्मविशुद्धि हेतु स्वाध्याय चिन्तन, संसार शरीर भोग से विरक्त मन॥

अन्तरंग बहिरंग परिग्रहों से विरक्त, श्रमण बनकर ध्यान अध्ययन रक्त।
 ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि विरक्त, समता शान्ति निस्पृहता सहित॥ (4)
 इससे ही होगी मेरी आत्मविशुद्धि, गुणस्थान आरोहण से मिलेगी मुक्ति।
 अक्षय अनन्त सुख मिलेगा मुझे, संसार भ्रमण से मुझे मिलेगी मुक्ति॥
 अतः आप ही मेरे महोपकारी, तीनकाल में तव सम न कोई उपकारी।
 मोही कुज्ञानी स्वार्थी न जाने आपको, जन्मान्ध न जाने सूर्य की प्रकाशकारी॥ (5)
 मोही तो आपसे चाहते सत्ता सम्पत्ति, संसार वर्द्धक ख्याति पूजा प्रसिद्धि।
 यंत्र मंत्र तंत्र टोना टोटका आदि, विवाह व्यापार परिग्रह की प्राप्ति॥
 धार्मिक कार्य से धनजन चाहते, विधान पंचकल्याण चातुर्मास से।
 मन्दिर मूर्ति धर्मशाला निर्माण हेतु, आपके माध्यम से धनार्जन करते॥ (6)
 बोली हेतु बैठा रखते आपको घंटो, प्रवचन हेतु कहते करो मिनटों।
 मान सम्मान नाच गाना जुलूस, घंटो अपव्यय होता भोजन हेतु॥
 इससे (दुःखी) हो रहा है मेरा अन्तरात्मा, वीतरागी सन्त की हो रही दुर्दशा।
 वीतरागी संत से भक्त चाहते वित्त, उपेक्षित हो रहे हैं निस्पृह सन्त ॥ (7)
 मिथ्यात्व (अवस्था) में मेरी थी ऐसी ही दशा, आप की कृपा से दूर ये दशा।
 अतः आप हो मेरे उद्धारकर्ता, 'सूरी कनक' से वर्णित मेरी ये गाथा॥ (8)

आगम विरूद्ध बोलियों का बोलबाला

कहाँ जा रहा है हमारा समाज?

हमारा समाज कहाँ जा रहा है। क्या हर चीज का मोल हम पैसे से करेंगे।

जैन समाज पूरे विश्व में अपनी अमिट छाप छोड़े हुये हैं। आज जैनधर्म सर्वश्रेष्ठ धर्म माना जाता है। अब हमारा यह समाज कहाँ जा रहा है। आज हर चीज में पैसा पैसा और पैसा यानी बोलियाँ बोलियाँ और बोलियाँ, हाथी पर बैठने की बोली, घोड़े पर बैठने की बोली, बगी पर बैठने की बोली, पहला झंडा पकड़ने बोली, आखरी झंडा पकड़ने बोली, कौन बनेगा इंद्र उसकी बोली, कौन बनेगा कुबेर उसकी भी बोली, कौन बनेगा तीर्थंकर के पिताजी उसकी बोली, कौन बनेगा माता उसकी बोली, आज हमारे जैन समाज में बोलियों के सिवाय कोई काम नहीं रह गया है। आज किसी भी संत के पाद प्रक्षालन करने हो वह भी बोली के माध्यम से हो रहे हैं।

सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि चातुर्मास में एक फोटो पर पर्दा लगा दिया जाता है और रोज 2100, 5100 या 11000 रुपए लेकर उस पर्दे को वापस खोल दिया जाता है और ऐसा पूरे चातुर्मास में किया जाता है। कहाँ जा रहे हैं हम? क्या भगवान् को या अपने गुरुओं को पैसा कमाने का माध्यम बना लिया है? तीर्थंकर के तस्वीर से पर्दा हटाने के भी पैसे, मतलब भगवान् की फोटो से एक कपड़ा हटाने के पैसे लिए जा रहे हैं और फिर रात को कपड़ा ढक दिया जाता है। ऐसा जैन समाज के अलावा किसी समाज में देखने को नहीं मिलता। मुझे पता है मैं बहुत कड़वा लिख रहा हूँ परंतु यह सच्चाई है। आज कहीं भी आप जाईए हर जगह जैन समाज की बदनामी हो रही है। आज सबसे बुरी चीज तो यह लगती है जब किसी संत की समाधि होती है उसको कंधा लगाने से लेकर अंतिम क्रियाकर्म तक की बोली लग गई है यानि कि जिस संत ने हर चीज का त्याग कर दिया, जिस संत ने कभी भी पैसे को बीच में नहीं लाए, उनके समाधि के बाद भी उनकी पैसे से बोलियाँ लगाई जा रही हैं।

आज चातुर्मास में कलश स्थापना की बोलियाँ लगती हैं और जिसकी जितनी ज्यादा बोली, उसको उतना ही पावरफुल माना जाता है। यह क्या है, हमारा समाज की क्या सोच हो गयी है? समाज के बड़े-बड़े ठेकेदारों में क्या इसमें बदलाव नहीं आता।

आज 1 कलश की बोली लगती है जिसका सबको पता है एक कलश मतलब 1 लाख होना तो यह चाहिए कि 11 कलश में से 6 कलश की बोली लगाओ और पाँच बिल्कुल निः शुल्क उनको दो जो बिल्कुल समर्पित है, जो बहुत धार्मिक हैं या जो प्रतिमा धारी है आज जो बेचारा गरीब है या जिसके पास पैसे कम हैं और बहुत धार्मिक है, वह कुछ भी नहीं कर सकता। वह केवल मात्र एक कलश की बोली भी नहीं ले सकता।

आज धर्म का बोलबाला नहीं रहा, आज भक्ति का बोलबाला नहीं रहा, आज श्रद्धा का बोलबाला नहीं रहा आज केवल पैसे का बोलबाला है। शायद ही ऐसी कोई विधि होगी जिसकी बोली नहीं लगती है। आज रोज कोई न कोई बोली लगाकर पैसे कमाए जा रहा हैं और उन पैसों का इस्तेमाल गलत तरीके से हो रहा है।

आज समाज को जागरूक होना पड़ेगा और इन सब दिखावे और ढकोसलेपन को

बंद करना होगा।

ऐसी परिपाटी को बंद करना होगा जबकि कुछ वर्ष पूर्व ऐसा कुछ भी नहीं था, केवल धर्म और धार्मिक व्यक्ति की पताका लहराती थी।

साभार-समन्वय वाणी

संदर्भ-

गुरु तत्त्व की मुख्यता

तत्त्वेषु सर्वेषु गुरुः प्रधानं, हितार्थधर्मा हि तदुक्तिसाध्याः।

श्रयंस्तमेवेत्यपरीक्ष्य मूढ! धर्मप्रयासान् कुरुषे वृथैव।। (1)

सर्व तत्त्वों में गुरु मुख्य है, आत्महित निमित्त जो जो धर्म करने के है वे वे उनके कहने से साध्य है। हे मूर्ख! यदि उनकी परीक्षा किये बिना तू उसका आश्रय लेगा तो तेरे धर्म सम्बन्धी किये हुए सब प्रयास (धर्म के कार्यों में की जानेवाली मेहनत व्यर्थ होंगे।)

सदोष गुरु के बताये हुए धर्म भी सदोष होते

भवी न धर्मैरविधिप्रयुक्तैर्गमी शिवं येषु गुरुर्न शुद्धः।

रोगी हि कल्यो न रसायनैस्तैर्येषां प्रयोक्ता भिषगेव मूढः।। (2)

जहाँ धर्म के बतानेवाले गुरु शुद्ध नहीं होते हैं वहाँ विधि रहित धर्म करने से प्राणी मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता है; जिस रसायण को खिलानेवाला वैद्य मूर्ख हो उसे खाने से व्याधिग्रस्त प्राणी निरोगी नहीं हो सकता है।

स्वयं डूबे और दूसरों को डूबानेवाला कुगुरु

समाश्रितस्तारकबुद्धितो यो, यस्यास्त्यहो मज्जयिता स एव।

ओघं तरीता विषमं कथं स?, तथैव जन्तुः कुगुरोर्भवाब्धिम्।। (3)

यह पुरुष तारने में समर्थ है ऐसे विचार से जिसका आश्रय लिया जाय उस आश्रय लेनेवाले को जब आश्रय देनेवाला ही डूबनेवाला बन जाय तो फिर यह विषम (अथवा चपल) प्रवाह को वह प्राणी किस प्रकार तैर सकता है? इसी प्रकार कुगुरु इस प्राणी को संसार समुद्र से किस प्रकार तार सकता है?

शुद्ध देव और धर्म की उपासना करने का उपदेश

गजाश्रपोतोक्षरथान् यथेष्ट, पदाप्तये भद्र निजान् परान् वा।

भजन्ति विज्ञाः सुगुणान् भजैवं, शिवाय शुद्धान् गुरुदेवधर्मान्॥ (4)

हे भद्र! जिस प्रकार बुद्धिमान प्राणी इच्छित स्थान पर पहुंचने के लिए अपने तथा दूसरों के हाथी, घोड़े, सवारिये, बैल और रथ अच्छे देखकर रख लेते हैं उसी प्रकार मोक्ष प्राप्ति निमित्त तू भी शुद्ध देव-गुरु-धर्म की उपासना कर।

कुगुरु के उपदेश से किया हुआ धर्म भी निष्फल

फलाद् वृथाः स्युः कुगुरुपदेशतः, कृता हि धर्मार्थमपीह सूद्यमाः।

तदृष्टिरागं परिमुच्य भद्र! हे, गुरुं विशुद्धं भज चेद्धितार्थ्यसि॥ (5)

संसारयात्रा में कुगुरु के उपदेश से धर्म के लिए किये हुए बड़े बड़े प्रयास भी फल के रूप में देखा जाय तो व्यर्थ जान पड़ते हैं, इसलिये हे भाई! यदि तू हित की अभिलाषा रखता हो तो दृष्टिराग को छोड़कर अत्यन्त शुद्ध गुरु की उपासना कर।

वीर को विनति शासन में लुटेरों का बल

न्यस्ता मुक्तिपथस्य वाहकतया श्रीवीर! ये प्राक्त्वया,

लुंटाकास्त्वदृतेऽभवन् बहुतरास्त्वच्छासने ते कलौ॥

बिभ्राणा यतिनाम तत्तनुधियां मुष्णान्ति पुण्यश्रियः,

पुत्कुर्मः किमराजके ह्यपि तलारक्षा न किं दस्यवः॥ (6)

हे वीर परमात्मा! मोक्षमार्ग को बतलानेवाले के रूप में (सार्थवाह के रूप में) जिनको तूने पहले नियुक्त किये थे (स्थापित किये थे,) वे कलिकाल में तेरी अनुपस्थिति में तेरे शासन में बड़े लुटेरे बन बैठे हैं। वे यति का नाम धारण करके अल्प बुद्धिवाले प्राणियों की पुण्यलक्ष्मी को चुरा लेते हैं। अब हम तुम से क्या पुकार करें? स्वामी रहित राज्य में क्या कोटवाल भी चोर नहीं हो सकते हैं?

अशुद्ध देव-गुरु-धर्म-भविष्य में चिन्ता

माद्यस्यशुद्धैर्गुरुदेवधर्मैर्धिग्! दृष्टिरागेण गुणानपेक्षः।

अमुत्र शोचिष्यसि तत्फले तु, कुपथ्यभोजीव महामयार्तः॥ (7)

दृष्टिराग से गुण की अपेक्षा बिना तू अशुद्ध देव, गुरु, धर्म के प्रति जो हर्ष प्रगट करता है उसके लिये तुझे धिक्कार है। जिस प्रकार कुपथ्य भोजन करनेवाले अत्यन्त पीडा से पीडित होकर दुःखी होते हैं उसी प्रकार भविष्य भव में तू उन कुदेव-धर्म-गुरु सेवन के फल को पाकर चिन्ता करेगा।

अशुद्ध गुरु मोक्ष प्राप्ति नहीं कर सकता

नाम्रं सुसिक्तोऽपि ददाति निम्बकः, पुष्टा रसैर्वन्ध्यगवी पयो न च।

दुःस्थो नृपो नैव सुसेवितः श्रियं, धर्म शिव वा कुगुरुर्न संश्रितः॥ (8)

अच्छी तरह से सिंचा हुआ निंब कभी आम पैदा नहीं कर सकता है; (शेरडी, घी, तेल आदि) रसों को खिलाकर पुष्ट की हुई वंध्या गाय दूध नहीं दे सकती है; (राज्यभ्रष्टता जैसे) खराब संयोगोंवाले राजा की खूब सेवा की जाय तो भी वह धन देकर प्रसन्न नहीं कर सकता है; इसी प्रकार कुगुरु का आश्रय लेने से वह शुद्ध कर्म तथा मोक्ष दिला नहीं सकता है।

तात्त्विक हित करनेवाली वस्तु

कुलं न जातिः पितरौ गणो वा, विद्या च बन्धुः स्वगुरुर्धनं वा।

हिताय जन्तोर्न परं च किञ्चित्, किन्त्वादृताः सद्गुरुदेवधर्माः॥ (9)

कुल, जाति, मा बाप, महाजन, विद्या, सगेसम्बन्धी, कुल गुरु अथवा धन के दूसरी कोई भी वस्तु इस प्राणी के हित के लिये नहीं होती है, परन्तु आदर किये (आराधन किये) शुद्ध देव, गुरु और धर्म ही हित करनेवाले हैं।

धर्म में लगानेवाले ही सच्चे माता-पिता

माता पिता स्वः सुगुरुश्च तत्त्वात्प्रबोध्य यो योजति शुद्धधर्मं।

न तत्समोऽरिः क्षिपते भवाब्धौ, यो धर्मविघ्नादिकृतेश्च जीवम्॥ (10)

जो धर्म का बोध कराकर शुद्ध कर्म में लगावे वे ही तत्त्व से सच्चे माता-पिता हैं, वे ही सचमुच हमारे हितस्वी हैं और उन्हीं को सुगुरु समझें। जो इस जीव को सुकृत्य अथवा धर्म के विषय में अन्तराय करके संसारसमुद्र में फैंक देते हैं उनके समान कोई वैरी नहीं है।

संपित के कारण

दाक्षिण्यलज्जे गुरुदेवपूजा, पित्रादिभक्तिः सुकृताभिलाषः।

परोपकारव्यवहारशुद्धी, नृणामीहामुत्र च संपदे स्युः॥ (11)

दाक्षिण्य, लज्जापन, गुरु और देवपूजा, माता पिता आदि बडों की भक्ति, उत्तम कार्य करने की अभिलाषा, परोपकार और व्यवहारशुद्धि मनुष्य को इस भव तथा परभव में संपत्ति प्रदान करते हैं।

विपत्ति के कारण

जिनेष्वभक्तिर्यमिनामवज्ञा, कर्मस्वनौचित्यधर्मसङ्गः।

पित्राद्युपेक्षा परवञ्चनं च, सृजन्ति पुंसां विपदः समन्तात्॥ (12)

जिनेश्वर भगवान् की ओर अभक्ति (आशातना), साधुओं की अवगणना, व्यापारादि में अनुचित प्रवृत्ति, अधर्मी का संग माता पिता आदि की सेवा करने में उपेक्षा (अवहेलना) और परवंचन-दूसरों को ठगना ये सर्व प्राणी के लिये चारों ओर से विपदाये उत्पन्न करते हैं।

परभव में सुख मिलने निमित्त पुण्यधन

भक्त्यैव नार्चसि जिनं सुगुरोश्च धर्मं, नाकर्णयस्यविरतं विरतीर्न धत्से।

सार्थनिर्स्थमपि च प्रचिनाष्यघानि, मूल्येन केन तदमुत्र समीहसेशम्?॥ (13)

हे भाई! तू भक्ति से श्री जिनेश्वर भगवान् की पूजा नहीं करता है; वैसी ही उत्तम गुरु महाराज की भी सेवा नहीं करता है; सदैव धर्म का श्रवण नहीं करता है; विरति (पाप से पीछे हठना-व्रत पचक्खाण करना) को तो धारण भी नहीं करता है; अपितु प्रयोजन अथवा बिन प्रयोजन से ही पाप की पुष्टि करता है तो फिर तू किस किमत से भविष्य भव में सुख प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है?

सुगुरु सिंह, कुगुरु सियार

चतुष्पदैः सिंह इव स्वजात्यैर्मिलन्निमांस्तारयतीह कश्चित्।

सहैव तैर्मजाति कोऽपि दुर्गे, शृगालवच्चेत्यमिलन् वरं सः॥(14)

जिस प्रकार सिंह अपने जाति के प्राणियों को साथ में लेकर था उसी प्रकार कोई (सुगुरु) अपने जाति भाई (भव्य पंचेन्द्रिय) को साथ में लेकर इस संसारसमुद्र से तराते हैं और जिस प्रकार शियाल अपने जाति भाइयों के साथ डूब मरा उसी प्रकार कोई (कुगुरु) अपने साथ सबको नरकादि अनंत सागर में डूबा देते हैं। अतएव ऐसे शिलाय जैसे पुरुष तो न मिले तो भी अच्छा है।

गुरु का योग होने पर भी प्रमाद को करे वह निर्भागी

पूर्ण तटा के तृषितः सदैव, भृतेऽपि गेहे क्षुधितः स मूढः।

कल्पद्रुमे सत्यपि ही दरिद्रो, गुर्वादियोगेऽपि हि यः प्रमादी॥ (15)

गुरु महाराज आदि का बराबर संयोग होने पर भी जो प्राणी प्रमाद करता है वह पानी से भरे हुए तालाब के होने पर प्यासा है, (धन-धान्य से) घर भरपूर है फिर भी मूर्ख तो भूखा है और अपने पास कल्पवृक्ष है फिर भी वह तो दरिद्र ही है।

देव गुरु धर्म पर अन्तरंग प्रीति बिना जन्म असार है

न धर्मचिन्ता गुरुदेवभक्तिर्येषां न वैराग्यलवोऽपि चित्ते।

तेषां प्रसूक्लेशफलः पशूनामिवोद्भवः स्यादुदरम्भरीणाम्॥ (16)

जिस प्राणी को धर्म सम्बन्धी चिन्ता, गुरु और देव की ओर भक्ति और वैराग्य का अशंकात्र भी चित्त में न हो ऐसे पेटभराओं का जन्म पशुतुल्य है, उत्पन्न करनेवाली माता को क्लेश देनेवाला ही है।

देव-संघादि कार्य में द्रव्यव्यय

न देवकार्ये न च सङ्घकार्ये, येषां धनं नश्वरमाशु तेषाम्।

तदर्जनाद्यैर्वृजिनैर्भवाञ्छौ, पतिष्यतां किं त्ववलम्बनं स्यात्?॥ (17)

धन-पैसे एकदम नाशवंत है। जिनके पास पैसे हो वे यदि उनको देवकार्य में अथवा संघकार्य में खर्च न करे तो उनको सदैव द्रव्य प्राप्त करने निमित्त किये हुए पापों से संसारसमुद्र में पडने पर किनका आधार होगा? (आध्यात्म कल्पद्रुम, श्वे-जैन)

मुनिराज का भावनामय स्वरूप

ते तीर्णा भववारिधिं मुनिवरास्तेभ्यो नमस्कुर्महे,
येषां नो विषयेषु गृध्यति मनोनोवा कषायैः प्लुतम्।
रागद्वेषविमुक् प्रशान्तकलुषं साम्याप्तशर्माद्वयं,
नित्यं खेलति चाप्तसंयमगुणाक्रीडे भजद्भावनाः॥ (1)

जिन महात्माओं का मन इन्द्रियों के विषयों में आसक्त नहीं होता, कषायों से व्याप्त नहीं होता, जो (मन) राग-द्वेष से मुक्त रहता है, जिन्होंने पापकार्यों को शान्त कर दिया है, जिनको समतारूपी अद्वैत सुख प्राप्त हुआ है, और जो भावना करते करते संयमगुणरूपी उद्यान में सदैव क्रीड़ा करते हैं-ऐसा जिनका मन हो गया है वे महामुनीश्वर संसार से तैर गये हैं उनको हम नमस्कार करते हैं।

साधु के वेश मात्र से मोक्ष नहीं मिलता है

स्वाध्यायमाधित्ससि नो प्रमादैः, शुद्धा न गुप्तीः समितीश्च धत्से।
तपो द्विधा नार्जसि देहमोहा, दल्पेऽहि हेतौ दधसे कषायान्॥ (2)
परिषहान्नो सहसे न चोप, सर्गात्र शीलाङ्गधरोऽपि चासि।
तन्मोक्ष्यमाणोऽपि भवाब्धिपारं मुने! कथं यास्वसि वेषमात्रात्॥ (3)

हे मुनि! तू विकथादि प्रमाद करके स्वाध्याय (सज्जाय ध्यान) करने की इच्छा नहीं करता है, विषयादि प्रमाद से समिति तथा गुप्ति धारण नहीं करता है, शरीर पर के ममत्व के कारण दोनों प्रकार के तप नहीं करता है, नहिवत् (नजेवा) कारण से कषाय करता है, परिषह तथा उपसर्गों को सहन नहीं करता है, (अठारह हजार) शीलांग धारण नहीं करता है फिर भी तू मोक्ष प्राप्ति की अभिलाषा रखता है, परन्तु है मुनि! केवल वेशमात्र से संसारसमुद्र का पार कैसे पा सकेगा?

वेशमात्र से कुछ नहीं मिल सकता

आजीविकार्थमिह यद्यतिवेषमेष, धत्से चरित्रममलं न तु कष्टभीरुः।
तद्वेत्सि किं न न बिभेति जगज्जिघृक्षुमृत्युः कुतोऽपि नरकश्च न वेषमात्रात्॥ (4)

तू आजीविका के लिये ही संसार में यति का वेश धारण करता है, परन्तु कष्ट से

डरकर शुद्ध चारित्र नहीं रखता है, किन्तु तुझे इस बात का ध्यान नहीं है कि समस्त जगत् को ग्रहण करने की अभिलाषा रखनेवाली मृत्यु और नरक कभी किसी प्राणी के वेशमात्र से नहीं डरते हैं।

केवल वेश धारण करनेवाले को तो उल्टे दोष प्राप्त होते हैं

वेषेण माद्यसि यतेश्वरणं विनात्मन्! पूजां च वाञ्छसि जनाद्बहुधोपधिं च।
मुग्धप्रतारणभवेनरकेऽसि गन्ता, न्यायं बिभर्षि तदजागलकर्तरीयम्॥ (5)

हे आत्मन्! तू व्यवहार (चारित्र) बिना ही एक मात्र यति के वेश से ही गर्वित (अभिमानी) रहता है और फिर लोगों द्वारा पूजाना चाहता है इससे यह प्रतीत होता है कि तू भोले विश्वास रखनेवाले प्राणियों को धोखा देने के कारण अवश्य नरक में जायेगा। सचमुच तू 'अजागलकर्तरीन्याय' धारण करता है।

बाह्य वेश धारण करने का फल

जानेऽस्ति संयमततपोभिरमीभिरात्म-

त्रस्य प्रतिग्रहभरस्य न निष्क्रयोऽपि।

किं दुर्गतौ निपततः शरणं तवास्ते,

सौख्यञ्च दास्यति परत्र किमित्यवेहि॥ (6)

मेरे विचारानुसार हे आत्मन्! इस प्रकार के संयम तथा तप से तो (गृहस्थ के पास से लिये हुए, भोजन आदि) वस्तुओं का पूरा किराया भी नहीं मिल सकता है, तो दुर्गति में गिरते समय तुझे किसका शरण होगा? और परलोक में कौन सुख देगा? इसका तू विचार कर।

वर्तन रहित लोकरंजन, बोधिवृक्ष की कुल्हाड़ी

किं लोकसत्कृतिनमस्करणार्चनाद्यै,

रे मुग्ध! तुष्यसि विनापी विशुद्धयोगान्।

कृन्तन् भवान्धुपतने तव यत्प्रमादो,

बोधिद्रुमाश्रयमिमानी करोति पर्शुन्॥ (7)

तेरे त्रिकरण योग विशुद्ध नहीं है फिर भी मनुष्य तेरा आदर सत्कार करते हैं,

तुझे नमस्कार करते हैं अथवा तेरी पूजा सेवा करते हैं, तब हे मूढ! तू क्यों संतोष मानता है? संसारसमुद्र में गिरते हुए तुझे एकमात्र बोधिवृक्ष का आधार है उस वृक्ष को काटने के लिये नमस्कारादि से होनेवाला सन्तोषादि प्रमाद इसके (लोकसत्कार आदि) लिये कुल्हाडारूप होता है।

लोकसत्कार का हेतु, गुण बिना गति

गुणांस्तवाश्रित्य नमन्त्यमी जना, ददत्युपध्यालयभैक्ष्यशिष्यकान्।

बिना गुणान् वेषमृषेर्बिर्भिर्षि चेत्, ततष्ठकानां तव भाविनी गतिः॥ (8)

ये पुरुष तेरे गुणों को देखकर तेरे सामने झुकते हैं और उपाधि, उपाश्रय, आहार और शिष्य तुझे देते हैं। अतएव यदि तू बिना गुण के ही ऋषि (यति) का वेश धारण करता हो तो तेरी दशा ठग के सदृश होगी।

यतिपनका सुख और कर्त्तव्य

नाजीविकाप्रणयिनीतनयादिचिन्ता,

नो राजभीश्च भगवत्समयं च वेत्सि।

शुद्धे तथापि चरणे यतसे न भिक्षो,

तत्ते परिग्रहभरो नरकार्थमेव॥ (9)

तुझे आजीविका, स्त्री, पुत्र आदि की चिन्ता नहीं है, राज्य का भय नहीं है और भगवान् के सिद्धान्तों को तू जानता है अथवा सिद्धान्त की पुस्तकें तेरे पास हैं, उस पर भी हे यति! यदि तू शुद्ध चरित्र के लिये प्रयत्न न करेगा तो फिर तेरे पास की सब वस्तुओं का भार (परिग्रह) नरक के लिये ही है।

ज्ञानी भी प्रमाद के वशीभूत हो जाता

शास्त्रज्ञोऽपि धृतव्रतोऽपि गृहिणी-पुत्रादिबन्धोज्झितोऽप्यङ्गी

यद्यतते प्रमादवशगो न प्रेत्यसौख्यश्रिये।

तन्मोहद्विषतस्त्रिलोकजयिनः काचित्परा दुष्टता,

बद्धायुष्कतया स वा नरपशुर्नूनं गमी दुर्गतौ॥ (10)

शास्त्र को जाननेवाला हो, व्रत को ग्रहण किये हुए हो, तथा स्त्री, पुत्र आदि के

बन्धनों से मुक्त हो, फिर भी यदि कोई प्राणी प्रमाद के वशीभूत होकर परलौकिक सुखरूप लक्ष्मी के लिये कुछ भी यत्न नहीं करता है तो जानना चाहिये कि या तो इसमें तीनों लोकों की जीतनेवाले मोह नामक शत्रु की कोई अकथनीय दुष्टता कारणभूत होनी चाहिये अथवा नरपशु आगामी भव के आयुष्य का बन्ध हो जाने के कारण अवश्य दुर्गति में जानेवाला है।

यति के सावद्य आचरण

उच्चरयस्यनुदिनं न करोमि सर्वं, सावद्यमित्यसकृदेतदथो करोषि।

नित्यं मृषोक्तिजिनवञ्जनभास्तिात्तत्, सावद्यतो नस्कमेव विभावयेते।। (11)

तू सदैव दिन और रात्रि में नौ बार 'करोमि भते' का पाठ करते समय कहता है कि मैं सर्वथा सावद्य काम न करूँ किन्तु फिर बारम्बार वह ही कार्य किया करता है। ये सावद्य कर्म करके तू असत्य भाषण करनेवाला होने से प्रभु को भी धोखा देता है और मेरी तो यह धारणा है कि उस पाप के भार से भारी होनेपर तेरा तो नरकगामी होना जरूरी है।

यति के सावद्य आचरण में परवचन का दोष

वेषोपदेशाद्युपधिप्रतारिता, ददत्यभीष्टानृजवोऽधुना जनाः।

भुङ्क्ष्वच शेषे च सुखं विचेष्टसे, भवान्तरे ज्ञास्यसि तत्फलं पुनः?।। (12)

वेष, उपदेश और कपट से भ्रमाये हुए भद्रक पुरुष अभी तक तुझे वाञ्छित वस्तुयें देते हैं, तू सुख से खाता है, सोता है और भ्रमण किया करता है, परन्तु भविष्य भव में इनके द्वारा होनेवाले फल की अच्छी तरह से तुझे समझ मालूम पड़ेगी।

संयम के लिये यत्न न करनेवाले को हितबोध

आजीविकादिविधार्त्तिभृशानिशात्ताः,

कृच्छ्रेण केऽपि महतैव सृजन्ति धर्मान्।

तेभ्योऽपि निर्दय! जिघृक्षसि सर्वमिष्टं,

नो संयमे च यतसे भविता कथं ही?।। (13)

आजीविका चलाने आदि अनेक पीडाओं से रातदिन बहुत परेशान होते हुए अनेकों गृहस्थी महामुश्किल से धर्मकार्य कर सकते हैं उनके पास से भी हे दयाहीन

यति! तू तेरी सर्व इष्ट वस्तु प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है और संयम के लिये प्रयत्न नहीं करता है, तो फिर तेरी क्या दशा होगी?

निर्गुण मुनि की भक्ति से

आराधितो वा गुणवान् स्वयं तरन्,

भवाब्धिमस्मानपि तारयिष्यति।

श्रयन्ति वे त्वामिति भूरिभक्तिभिः,

फलं तवैषां च किमस्ति निर्गुण! ॥ (14)

इस गुणवान् पुरुष की आराधना करने से जैसे वह स्वयं भवसमुद्र से तैरता है वैसे ही अपने को भी तिरा देगा ऐसा समझकर कितने ही प्राणी भक्तिभाव से तेरा आश्रय लेते हैं। इससे हे निर्गुण! तुझे और उन्हें क्या लाभ है?

निर्गुण मुनि को उल्टा पाप बंध होता

स्वयं प्रमादैर्निपतन् भवाम्बुधौ,

कथं स्वभक्तानपि तारयिष्यसि।

प्रतारयन् स्वार्थमृजून शिवार्थिनः,

स्वतोऽन्यतश्चैव विलुप्यसेऽहसा॥ (15)

जब तू स्वयं प्रमाद के कारण संसारसमुद्र में डूबता जाता है तो फिर तू अपने भक्तों को किस प्रकार तैरा सकता है? बेचारे मोक्षार्थी सरल जीवों को तू अपने स्वार्थवश ठग कर अपने और दूसरों के द्वारा पापों से तू स्वयं ले पाता है।

निर्गुण को होनेवाला ऋण तथा उसका परिणाम

गृह्णासि शय्याहृतिपुस्तकोपधीन्,

सदा परेभ्यस्तपसस्त्वयं स्थितिः।

तत्ते प्रमादाद्भरितात्प्रतिग्रहै-

र्ऋणार्णमग्रस्य परत्र का गतिः?॥ (16)

तू दूसरों से निवासस्थान (उपाश्रय), आहार, पुस्तक और उपधि ग्रहण करता है। इसके अधिकारी तो तपस्वी लोग (शुद्ध चारित्रवाले) हैं (अर्थात् इनके ग्रहण

करने के पात्र तो तपस्वी लोग हैं) तू उन वस्तुओं को ग्रहणकर फिर से प्रमाद के वशीभूत हो जाता है और बहुत कर्जदार हो जाता है तो फिर परभव में तरी क्या गति होगी?

किस गुण के लिये तू ख्याति की अभिलाषा करता

न कापि सिद्धिर्न च तेऽतिशायि, मुने! कियायोगतपः श्रुतादि।

तथाप्यहङ्कारकदर्थितस्त्वं, ख्यातीच्छया ताम्यसि धिङ्मुधा किम्॥ (17)

हे मुनि! तेरे पास न तो कोई सिद्धि है, न ऊंची प्रकार की कोई क्रिया, योग, तपस्या या ज्ञान; फिर भी अहंकार से कदर्थना प्राप्त कर प्रसिद्धि प्राप्त करने की अभिलाषा से हे अधम! तू क्यों व्यर्थ परिताप करता है?

निर्गुणी होने पर स्तुति की अभिलाषा रखे

हीनोऽप्यरे भाग्यगुणैर्मुधात्मन्!, वाञ्छंस्तवार्चाद्यनवापूर्वश्च।

ईर्ष्यन परेभ्यो लभसेऽतितापमिहापि याता कुगतिं परत्र॥ (18)

हे आत्मा! तू निष्पुण्यक है फिर भी पूजा-स्तुति की अभिलाषा रखता है और उसके प्राप्त न होने पर दूसरों से द्वेष करता है (जिससे) यहां भी अत्यन्त दुःखों को सहन करता है और परभव में कुगति को प्राप्त करता है।

गुण बिना स्तुति की इच्छा करनेवाले का ऋण

गुणैर्विहीनोऽपि जनानतिस्तुतिप्रतिग्रहान् यन्मुदितः प्रतीच्छसि।

लुलायगोऽश्चोट्रखरादिजन्मभिर्विना ततस्ते भविता न निष्क्रियः॥ (19)

तू गुणहीन है फिर भी लोगों से वन्दन, स्तुति, आहारपानी के ग्रहण आदि को खुश होकर प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है, परन्तु याद रखना कि पाडे, गाय, घोडे, ऊंट या गधे आदि का जन्म लिये बिना तेरा उस कर्ज से छुटकारा पाना असम्भव है।

गुण बिना वन्दन पूजन का फल

गुणेषु नोद्यच्छसि चेन्मुने! ततः, प्रगीयसे यैरपि वन्द्यसेऽर्च्यसे।

जुगुप्सितां प्रेत्य गतिं गतोऽपि तै, हींसिध्यसे चाभिभविष्यसेऽपि वा॥ (20)

हे मुनि! यदि तू गुण प्राप्त करने का यत्न न करेगा तो वे ही पुरुष जो तेरे गुणों की स्तुति करते हैं, तुझे वन्दना करते हैं और पूजा करते हैं जब तू कुगति को प्राप्त होगा तो तेरी हंसी-उडायेंगे-तेरा पराभव करेंगे।

गुण बिना वंदन पूजन-हितनाशक

दानमाननुतिवन्दनापरैर्मोदसे निकृतिरञ्जितैर्जनैः।

त्र त्ववैषि सुकृतस्य चेल्लवः, कोऽपि सोऽपि तव लुंठ्यते हि तैः॥ (21)

तेरी कपटजाल से प्रसन्न होकर मनुष्य तुझे दान देते हैं, नमस्कार करते हैं या वन्दना करते हैं उस समय तू प्रसन्न होता है, परन्तु तू यह नहीं जानता है कि तेरा पास जो एक लेशमात्र सुकृत्य है उसे भी वे लूटकर ले जाते हैं।

स्तवन का रहस्य-गुणार्जन

भवेद् गुणी मुग्धकृतैर्न हि स्तवैर्न ख्यातिदानार्चनवन्दनादिभिः।

विना गुणोन्नो भवदुःखसंक्षयस्ततो गुणानर्जय किं स्तवादिभिः?॥ (22)

भोले जीवों से स्तुति किये जाने पर कोई पुरुष गुणवान नहीं हो सकता है, इसी प्रकार प्रतिष्ठा पाने से तथा दान, अर्चन और पूजन किये जाने से कोई पुरुष गुणवान नहीं हो सकता है, और बिन गुण के संसार के दुःखों का अन्त नहीं हो सकता है, अतएव हे भाई! गुण उपार्जन कर। इस स्तुति आदि से क्या लाभ है?

भवान्तर का विचार-लोकरंजन पर प्रभाव

अध्येषि शास्त्रं सदसद्विचित्रालापादिभिस्ताम्यसि वा समायैः।

येषां जानानामिह रञ्जनाय, भवान्तरे ते क्व मुने! क्व च त्वम्॥ (23)

जिन मनुष्यों का मनरंजन करने के लिये तू अच्छे और बुरे अनेक प्रकार के शास्त्रों का स्वाध्याय करता है और मायापूर्वक विचित्र प्रकार के भाषणों से (कंठशोषादि) खेद सहन करता है वे भवान्तर में कहां जायेंगे और तू कहां जायेगा?

धर्म के निमित्त से रखा हुआ परिग्रह

परिग्रहात्स्वीकृतधर्मसाधना-

भिधानसात्रात्किमु मूढ! तुष्यसि।

न वेत्सि हेम्राप्यतिभारिता तरी,

निमज्जयत्यङ्गिनमम्बुधौ द्रुतम्॥ (24)

हे मूढ! धर्म के साधन को उपकरणादि का नाम देकर स्वीकार किये हुए परिग्रहों से तू क्यों कर प्रसन्न होता है? क्या तू नहीं जानता है कि यदि जहाज में सोने का भार भी भरा हो तो भी वह तो उसमें बैठनेवाले प्राणियों को समुद्र में ही डूबोता है?

धर्मोपकरण पर मूर्च्छा रखना भी परिग्रह

येऽहं कषायकलिकर्मनिबन्धभाजनं,

स्युः पुस्तकादिभिरपीहितधर्मसाधनैः।

तेषां रसायनवरैरपि सर्पदामयै-

रार्त्तात्मनां गदहृतेः सुखकृत्तु किं भवेत्?॥ (25)

जिसके द्वारा धर्म साधन की अभिलाषा हो ऐसे पुस्तकादि के द्वारा भी यदि जो प्राणी पाप, कषाय, कंकास और कर्मबन्ध करते हैं तो फिर उनके सुख का क्या प्राप्ति साधन हो सकता है? जिस प्राणी की व्याधि उत्तम प्रकार के रसायन प्रयोग से भी यदि अधिक बढ़ने लगे तो फिर वह व्याधि किस साधन से मिट सकती है?

धर्मोपकरण का भार वहन कराने के दोष

संयमोपकरणच्छलात्परान् भारयन् यदसि पुस्तकादिभिः।

गोखरोष्ट्रमहिषादिरूपभृत् तच्चिरं त्वमपि भारयिष्यसे॥ (28)

संयम उपकरण के बहाने से दूसरों पर तू पुस्तक आदि वस्तुओं का भार डालता है, परन्तु वे गाय, गधा, ऊंट, पाडा आदि के रूप में तेरे पास से अनन्तकाल पर्यन्त भार वहन करायेगे।

चारित्र के कष्ट-नारकीतिर्यच के कष्ट

यदत्र कष्टं चरणस्य पालने, परत्र तिर्यङ्नरकेषु यत्पुनः।

तयोर्मिथः सप्रतिपक्षता स्थिता, विशेषदृष्टयान्यतरं जहीहि तत्॥ (32)

चारित्र के पालन करने में इस भव में जो कष्ट उठाने पडते हैं और परभव में नारकी और तिर्यच गति में जो कष्ट उठाने पडते हैं इन दोनों में परस्पर रूप से

प्रतिपक्षपन है, अतएव सोच-विचारकर दोनों में से एक को छोड़ दें।

प्रमादजन्य सुख-मुक्ति का सुख

शमत्र यद्विन्दुरिव प्रमादजं, परत्र यच्चाब्धिरिव द्युमुक्तिजम्।

तयोर्मिथः सप्रतिपक्षता स्थिता, विशेषदृष्टयान्यतरद् गृहाण तत्॥ (33)

इस भव में प्रमाद से जो सुख होता है वह एक बिन्दु तुल्य है, और परभव में देवलोक और मोक्ष सम्बन्धी जो सुख होता है वह समुद्र के सदृश हैं, इन दोनों सुखों में परस्पर प्रतिपक्षीपना है, अतएव विवेक का प्रयोग कर दोनों में से एक को तू ग्रहण कर ले।

चारित्रनियंत्रण का दुःख

नियन्त्रणा या चरणेऽत्र तिर्यक् स्त्रीगर्भकुम्भीनरकेषु या च।

तयोर्मिथः सप्रतिपक्षभवाद्-विशेषदृष्टयान्यतरां गृहाणं॥ (34)

चारित्र पालने में तुझे इस भव में नियंत्रणा उठानी पडती है और परभव में भी तिर्यच गति में, स्त्री के गर्भ में अथवा नारकी के कुंभीपाक में नियंत्रणा (कष्ट, पराधीनपन) सहन करनी होती है। इन दोनों प्रकार की नियंत्रणा में परस्पर विरोध है, अतएव विवेकपूर्वक दोनों में से किसी एक को ग्रहण कर।

सुखसाध्य धर्मकर्तव्य-प्रकारान्तर

महातपोध्यानपरिहृषहादि, च सत्त्वसाध्यं यदि धर्तुमीशः।

तद्भावताः किं समितीश्च गुप्तीर्थत्से शिवार्थिन्न मनः प्रसाध्याः॥ (39)

उग्र तपस्या, ध्यान, परीषह आदि सत्त्व से साधे जा सकते हैं, इनको साधने में यदि तू असमर्थ हो तो भी भावना, समिति और गुप्ति जो मन से ही साधे जा सकते हैं उनको हे मोक्षार्थी! तू क्यों नहीं धारण करता?

भावना-संयमस्थान-उसका आश्रय

अनित्यताद्या भज भावनाः सदा, यतस्व दुःसाध्यगुणेऽपि संयमे।

जिघत्सया ते त्वस्ते ह्ययं यमः, श्रयन् प्रमादान्न भवाद्विभेषि किम्?॥ (40)

अनित्यपन आदि सब भावानाओं को निरन्तर रख, जो संयम के (मूल तथा

उत्तर) गुण कठिनता से साधे जा सकते हैं उनके लिये यत्न कर, यह यम (काल) तुझे हडप कर जाने की शीघ्रता करता है, तो फिर प्रमाद का आश्रय लेते हुए तू क्यों संसारभ्रमण से नहीं डरता है?

योगरुंधन की आवश्यकता

हतं मनस्ते कुविकल्पजालैर्वचोप्यवद्यैश्च वपुः प्रमादैः।

लब्धीश्च सिद्धिश्च तथापि वाञ्छन्, मनोरथैरेव हा हा हतोऽसि।। (41)

तेरा मन खराब संकल्पविकल्प से छेदा हुआ है, तेरे वचन असत्य और कठोर भाषा से सने हुए हैं, और तेरा शरीर प्रमाद से भ्रष्ट हुआ है, उस पर भी तू लब्धि और सिद्धि की वाञ्छा करता है। सचमुच! तू (मिथ्या) मनोरथ से खेदा हुआ है।

मनो योग पर अंकुश-मनोगुप्ति

मनोवशस्ते सुखदुः खसङ्गप्तो, मनोमिलेद्यैस्तु तदात्मकं भवेत्।

प्रमादचौरैरिति वार्यतां मिलच्छीलाङ्गमित्रैरनुषञ्जयानिशम्।। (42)

तुझे सुख-दुःख की प्राप्ति होना तेरे मन के वश में है। मन जिसके साथ मिलता है उसके साथ एकाकार-एकमेक हो जाता है, अतएव प्रमादरूप चोर के मिलने से तेरे मन को रोककर रख और शीलांगरूप मित्रों के साथ उसे निरन्तर जोड़।

मत्सरत्याग

ध्रुवः प्रमादेर्भववारिधौ मुनेः!, तप प्रपातः परमत्सरः पुनः।

गलेनिबद्धोरुशिलोपमोऽस्ति चेत्, कथं तदोन्मज्जनमप्यवाप्स्यसि।। (43)

हे मुनि! तू जो प्रमाद करता है उसके कारण संसारसमुद्र में गिरना तो तेरा निश्चय ही है, परन्तु फिर भी दूसरों पर मत्सर करता है यह गर्दन में लटकाई हुई एक बड़ी शिला के सदृश है, तो फिर तू इसमें से किस प्रकार उपर उठ सकता है?

यतिस्वरूप-भावदर्शन

यो दानमानस्तुतिवन्दनाभि, न मोदतेऽन्यैर्न तु दुर्मानायते।

अलाभलाभादि परीषहान् सहन्, यतिः स तत्त्वादपरो विडम्बकः।। (45)

जो प्राणी दान, मान, सत्कार, स्तुति और नमस्कार से प्रसन्न न होता हो और

इनके विपरीत से (असत्कार, निंदा आदि से) अप्रसन्न न होता हो और अलाभ आदि परीषहों को सहन करता है वह परमार्थ से यति है, शेष अन्य तो वेशविडंबक है।

यति को गृहस्थ की चिन्ता न करनी चाहिये

दधद् गृहस्थेषु ममत्वबुद्धिं, तदीयतप्त्या परितप्यमानः।

अनिवृत्तान्तः करणः सदा स्वैस्तेषां च पापैर्भ्रमिता भवेऽसि।। (46)

गृहस्थ पर ममत्वबुद्धि रखने से और उनके सुख दुःख की चिन्ता से दुःखी होने से तेरा अन्तःकरण सर्वदा व्याकुल रहेगा और तेरे तथा उनके पाप से तू संसार में भटकता रहेगा।

गृहस्थ चिन्ता के फल

त्यक्त्वा गृहं स्वं परगेहचिन्ता-तप्तस्य को नाम गुणस्तवर्षे!।

आजीविकास्ते यतिवेषतोऽत्र, सुदुर्गतिः प्रेत्य तु दुर्निवारा।। (47)

स्वगृह का त्याग कर अन्य के गृह की चिन्ता के परिताप को सहन करनेवाले हे ऋषि! तुझे क्या लाभ होनेवाला है? (बहुत कर तो) यति के वेश से इस भव में तेरी आजीविका (सुख से) चलेगी परन्तु परभव में अत्यन्त कष्टदायक दुर्गति को न रोक सकेगा।

प्रकट प्रशस्त सावद्य कर्मों का फल

कथं महत्वाव ममत्वतो वा, सावद्यामच्छस्यपि सङ्गलोके।

न हेममय्यप्युदरे हि शस्त्री, क्षिप्ता क्षणोतिऽप्यसून् किम्?।। (49)

महत्त्वता के लिये अथवा ममत्वपन से संघलोको में भी सावद्य की अभिलाषा रखता है परन्तु क्या सोने की छुरी को भी पेट में मारी जाय तो वह एक क्षण भर में प्राण का नाश नहीं कर सकती है?

निष्पुण्यक की चेष्टा, उद्धत वर्तन-अधम फल

रङ्गः कोऽपि जनाभिभूतिपदवीं त्यक्तवा प्रसादाद् गुरो-

र्वेषं प्राप्य यतेः कथंचन किच्छास्त्रं पदं कोऽपि च।

मौखर्यादिवशीकृतर्जुजनतादानर्चनैर्गर्वभाग्-

आत्मानं गणेशत्रेन्द्रमिव धिग्गन्ता द्रुतं दुर्गतौ॥ (50)

कोई गरीब-रंक पुरुष लोगों के अपमान योग्य स्थान को छोड़कर गुरु महाराज की कृपा से मुनि का वेश धारण करता है, कुछ शास्त्र का अभ्यास करता है और किसी पदवी को उपार्जन करता है, तब अपने वाचालपन से भद्रक लोगों को वशीभूत करके वे रागी लोग जो दान पूजा करते हैं उससे स्वयं अभिमान करता है और अपने आपको बादशाह समझता है ऐसों को बारम्बार धिक्कार है! ये शीघ्र ही दुर्गति में जानेवाले हैं। (अनन्ते द्रव्यलिंगी भी ऐसा दशा में व्यवहार करने से निष्फल हुए हैं।)

चारित्रप्राप्ति-प्रमादत्याग

प्राप्यापि चारित्रमिदं दुरापं, स्वदोषजैर्यद्विषयप्रमादैः।

भवाम्बुधौ धिक् पतितोऽसि भिक्षोः!, हतोऽसि दुःखैस्तदनन्तकालम्॥ (51)

अत्यन्त कष्ट से भी कठिनता से प्राप्त होनेवाले चारित्र को ग्रहण कर अपने दोष से उत्पन्न किये विषय और प्रमाद के कारण हे भिक्षु! तू संसारसमुद्र में गिरता जाता है जिसके परिणाम में तुझे अनन्तकाल तक दुःख भोगना पड़ेगा।

बोधिबीजप्राप्ति-आत्महित साधन

कथमपि समवाप्य बोधिरत्नं,

यंगसमिलादिनिदर्शनाद्गुणम्।

कुरु कुरु रिपवश्यतामगच्छन्,

किमपि हितं लभसे यतोऽर्थितं शम्?॥ (52)

युगसमिला आदि सुप्रसिद्ध दृष्टान्तों द्वारा महान् कठिनता से प्राप्त होनेवाले बोधिरत्न (समकित) को प्राप्त कर लेने पर शत्रुओं के वशीभूत न होकर कुछ आत्महित कर, कि जिससे मनोवाञ्छित सुख की प्राप्ति हो।

शत्रुओं के नाम

द्विषस्त्वमे ते विषयप्रमादा, असंवृता मानसदेहवाचः।

असंयमा सप्तदशापि हास्यादयश्च बिभ्यच्चर नित्यमेभ्यः॥ (53)

तेरे शत्रु-विषय, प्रमाद, बिना अकुंश प्रवर्तनेवाला मन, शरीर और वचन,

सत्तर असंयम के स्थान और हास्यादि छः हैं। इनसे तू निरन्तर सचेत होकर (भय करके) चलना।

सामग्री-उनका उपयोग

गुरूनवाप्याप्यपहाय गेहमधीत्य शास्त्राण्यपि तत्त्ववाञ्छि।

निर्वाहचिन्तादिभराद्यभावेऽप्यृषे न किं प्रेत्य हिताय यत्नः?॥(54)

हे यति! महान् गुरु की प्राप्ति हुई है, घरबार को छोड़ा, तत्त्व प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थों का अभ्यास किया और निर्वाह करने आदि चिन्ताओं का भार हट गया, फिर भी परभव के हित के लिये यत्न क्यों नहीं करता है?

संयम की विराधना न करना

विराधितैः संयमसर्वयोगैः, पतिष्यतस्ते भवदुःखराशौः।

शास्त्राणि शिष्योपधिपुस्तकाद्या, भक्ताश्च लोकाः शरणाय नालम्॥ (55)

संयम के सर्व योगों की विराधना करने से तू भव भव दुःख के ढेर में पड़ेगा तब शास्त्र, शिष्य, उपधि, पुस्तक और भक्त लोग आदि कोई भी तुझे शरण देने में समर्थ न होंगे।

संयम से सुख-प्रमाद से उसका नाश

यस्य क्षणोऽपि सुरधामसुखानि पल्य-

कोटीर्नृणां द्विनवतीं ह्यधिकां ददाति।

किं हारयस्यधम! संयमजीवितं तत्,

हा हा प्रमत्त! पुनरस्य कुतस्तवाप्तिः?॥ (56)

जिस (संयम) का एक क्षण (मुहूर्त) भी बानवे क्रोड पल्योपम से अधिक समय तक देवलोक के सुख को देता है, ऐसे संयम जीवन को हे अधम! तू क्यों हार जाता है? हे प्रमादी! तुझे फिर से इस संयम की प्राप्ति कैसे होगी?

संयम का फल ऐहिक आमुष्मिक

नाम्नापि यस्येति जनेऽसि पूज्यः;

शुद्धात्ततो नेष्टसुखानि कानि।

तत्संयमेऽस्मिन् यतसे मुमुक्षो-

ऽनुभूयमानोरुफलेऽपि किं न?॥ (57) (आध्या.कल्प.)

संयम के नाममात्र से भी जो तू लोकों में पूज्य है तो यदि वह सचमुच शुद्ध हो तो कौनसा इष्ट फल तुझे न मिल सके? जिसे संयम के महान् फल प्रत्यक्ष अनुभव में आये हैं उस संयम के लिये हे यति! तू यत्न क्यों नहीं करता है?

शिष्य आ.कनकनन्दी के लिए आ.कुन्थुसागर के विचार

भारत गौरव गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी गुरुदेव के प्रियाग्र शिष्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के बारे में कुन्थुसागर जी गुरुदेव के विचार।

मुनि श्री सुयशगुप्त जी और मुनि श्री चन्द्रगुप्त जी की पावन निश्रा में तमिलनाडू एवं कर्नाटक की पावन यात्रा करके जब हम महाराष्ट्र की धरा पर श्री क्षेत्र कुन्थुगिरि पर पहुंचे तो आचार्य श्री कुन्थुसागर जी का सानिध्य प्राप्त कर मन बहुत आनन्दित हो गया।

प्रतिदिन सन्ध्याकाल को गुरुदेव हमें अपने गुरुदेव श्री महावीरकीर्ति जी गुरुदेव के संस्मरण सुनाते थे इसी क्रम में एक दिन उन्होंने अपने विशाल संघ जो 1981 से बनना प्रारम्भ हुआ था उसके भी विशेष घटनाक्रम सुनाये। एक दिन गुरुदेव ने अपने प्रिय एवं ज्येष्ठ शिष्य मुनि श्री कनकनन्दी जी के बारे में बताया की कनकनन्दी जी हमारे संघ के रत्न है वे दीक्षा के प्रारम्भ से निस्पृह साधना अनवरत रूप से अब तक कर रहे हैं। जब हमारे संघ में संस्कृत का अध्ययन कराने को प्रभाकर जी को बुलाया तक कनकनन्दी जी घण्टें उनसे संस्कृत पठते थे और उनके जाने के बाद वह स्वयं अभ्यास करते थे, आहार को छोड़कर अन्य समय वे कक्ष से बाहर नहीं आते थे। उन्होंने अपनी हर क्रिया में संस्कृत को जोड़ लिया था उनके आहार में, विहार में सोने में उठने में, बैठने में इस प्रकार का कठिन परिश्रम करके उन्होंने संस्कृत सिखा है। वे कभी भी किसी से भी संसार की बातें नहीं करते थे अपने में रहते थे। उन्होंने स्वयं को अध्ययन के मार्ग पर तो लगाया ही साथ में मेरे पूरे संघ को पढाया वो सबको कड़क अनुशासन में रखते थे। उनकी इस शिक्षा की वजह से मेरे संघ के सभी साधु धुरन्धर बने। उस समय हमारे संघ से सभी अन्य मत वाले थर-

थर कांपते थे। मेरे विशाल संघ को सवारने में कनकनन्दी जी का बहुत बड़ा योगदान है। आज भी वे निस्पृह साधक बन कर रह रहे हैं छोटे-छोटे गाँवों में रह कर यहाँ तक ही एक ही घर में भी साधना करके और चातुर्मास करके अपनी निस्पृहता का परिचय दे रहे हैं। मुझे गर्व है अपने उस वैज्ञानिक शिष्य पर। यह सब तो आचार्य श्री कुन्थुसागर जी गुरुदेव अपने शिष्य आचार्य श्री कनकनन्दी जी बार में बताते हैं...

पर अब मैं आर्थिका सुनीतिमती भी अपने अनुभवों से अपने लाडले और प्यारे गुरुदेव श्री कनकनन्दी जी के विषय में कुछ बताना चाहती हूँ

मैंने गुरुदेव का जीवन बहुत करीब से देखा है वे अधिकतर मौन साधना में लीन रहते हैं जब कभी उनकी वाणी झरती है तब Only for study यानी की केवल स्वाध्याय के लिये। जबसे मैं गुरुदेव को जानती हूँ तबसे मैंने आज तक नहीं देखा नहीं सुना की गुरुदेव ने किसी भी व्यक्ति से यह पूछा हो की तुम्हारे बच्चे कितने हैं, तुम्हारी पत्नी का क्या नाम है या फिर तुम्हारे परिवार में कौन-कौन हैं। इस प्रकार की संसार की पंचायत नहीं गुरुदेव करते हैं ना ही संघ के साधुओं को करने देते हैं। संसारी की पंचायत वो व्यक्ति करता है जिसको संसार में रुचि हो परन्तु मेरे ब्राइट Bright गुरुदेव को तो संसार की पंचायत में नहीं अपितु पंच परमेष्ठी में रुचि है। मेरे ब्रिलिएंट Brillant गुरुदेव तो सतत अपनी आत्मा की ही पंचायत में इतने लीन रहते हैं की उन्हें तो कभी-कभी ये भी ध्यान नहीं रहता है की मेरा नाम है, मेरा शरीर है या ही मैं कर्मों से युक्त हूँ।

वो स्वयं से या अन्य लोगों से हमेशा यही प्रश्न पूछते हैं मेरे में क्या गुण है या क्या कमी है और कौन-कौन से गुण प्राप्त करने हैं। संसार की बातें करना तो उनकी अपनी आत्मा का अपमान सा लगता है। संसार की बातों से रहित आत्मवार्ता करने वाले Dearest गुरुदेव आपकी जय हो।

ओ मेरे Sunlight (सनलाईट) गुरुदेव आपसे धरती थोड़ी दुःखी हो रही क्योंकि आप के इतने शुद्धापयोग के भावों से तो अतिशीघ्र धरतीमाता को आपके विरह का दुःख सहना पडेगा अतः आप है ना गुरुदेव एक काम कीजिये अपनी आत्मा को विश्राम देकर थोडा अपने मुझ जैसे चिल्ले-पिल्लें से बात कर लिया कीजिये मुझको पता है आपको यह सब इष्ट नहीं पर क्या होगा अगर थोड़ा समय निकाल कर हम छोटे बालकों का उद्धार

करेंगे तो, आपका एक आशीर्वाद भी कई जन्म के पाप नष्ट कर देगा Plz गुरुदेव हमसे बात करना मत छोड़िये Plz ना गुरुदेव-मैं हाथ जोड़ कर बैठी हूँ।

विनती सुन लीजिये गुरुदेव। रो रही हूँ मैं गुरुदेव आप मेरे लिये एक बहुत बड़े महापुरुष हैं इसलिये मैं जो मन में आये वो लिखती जा रही हूँ क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास है आप मेरी गलतियों को सही करके अर्थ ग्रहण करेंगे और मेरी-चूकों को अचूक उपाय द्वारा सही कर देंगे।

ओ मेरे Right गुरुदेव आपके गुणों का स्मरण करके हृदय आह्लादित हो जाता है, आपकी याद में आँखे नम हो जाती हैं, आपका नाम लेकर आनन्द मिल जाता है, आपके दर्शन से कर्मबन्ध ढीले हो जाते हैं। लोग आपसे आकर्षित हो जाते हैं पर आप किसी से भी आकर्षित नहीं होते। लोग आपके दीवाने होते जा रहे हैं पर आप किसी व्यक्ति विशेष के नहीं अपितु स्वयं के दीवाने हैं। लोग आपका नाम लेते जा रहे हैं और आप अपने शरीर का नाम भूलने का अभ्यास सतत किये जा रहे हैं। लोग आपको शहरों में नगरों में आने का आग्रह कर रहे हैं आप है की गाँव भी नहीं वनवास धारणा करना चाहते हैं इस प्रकार सब उल्टे-पूल्टे काम आप किये जा रहे हैं। अब करे क्या आपको सामान्य लोगों की समझ में ना आने वाले तथा जो आपके लिये कल्याणकारी वही सारे कार्य पसन्द आते हैं क्या बोलू आपको गुरुदेव समझ भी नहीं आ रहा...सोच रही हूँ मैं...

हा हा समझ आया आप जो भी कर रहे हैं जैसा भी कर हैं वो सब किसी की समझ में आये या ना आये पर फिर भी आप सबको बहुत-बहुत अच्छे लगते हो इसका अर्थ यही है की आप सब कुछ अच्छा कर रहे हैं...

Love you so much गुरुदेव

Miss you so much गुरुदेव

इतने भाव आ रहे है गुरुदेव आपके लिये लिखती ही जाऊँ मेरा हृदय आपकी भक्ति से ओतप्रोत हुआ जा रहा है ऐसे लगता है की आपकी गुणमाला का एक ग्रन्थ लिख दूँ...क्या जादू कर दिया है गुरुदेव आपने...आपकी जय हो...आपके श्री चरणों में त्रयभक्ति योगों से नमन...वन्दन... नांदणी मठ

14.7.2019...10:35 प्रातः

बिना बोली पृथ्वी का अद्वितीय निस्पृह निराडम्बर वर्षायोग

वाग्वर अञ्चल के आध्यात्मिक धाम ग्राम नन्दौड़ में अभूतपूर्व वर्षायोग की शृंखला में प.पू. अलौकिक निस्पृही सन्तप्रवर आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव श्रीसंघ का तृतीय चातुर्मास कलश स्थापन बिना आडम्बर, बिना, बोली, बिना अपेक्षा उपेक्षा व प्रतीक्षा किए सम्पन्न हुआ। कलिकाल श्रेयांस स्व.प्रवीणचन्द्र शाह की महान् भक्ति भावना योजनानुसार श्रीमती नन्दादेवी सपरिवार व ऊर्जावान् सहयोगी श्रीयुत ऋषभकुमार जैन सपरिवार द्वारा यह चातुर्मास भी निस्पृह निराडम्बर ज्ञान-गुण-भावविशुद्धि-भक्ति व समर्पण का अद्वितीय अनुष्ठान है जो कि वर्तमान में धर्म क्षेत्र में चल रहे धन-जन-भीड़-प्रदर्शन-वर्चस्ववादिता पन्थवाद धन आधारित धर्म की विकृति व विषमताओं से परे सरल सहज स्वप्रेरित भावना भक्ति से युक्त आगमोक्त ज्ञान गुण प्रभावनाकारी नवाचारक निर्द्वन्द्व रचनात्मक बहुआयामी अद्वितीय चातुर्मास हो रहा है।

अपूर्वकरण अपूर्वार्थ युत स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुवर ने ग्राम की चौपाल में आयोजित धर्म सभा को सम्बोधित करते हुए भारतवर्ष की गौरवशाली प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति की वैश्विक महत्ता का बोध कराते हुए वर्तमान भारत की दुर्दशा के कारणों का बखान किया भारतीय अभी भी भाषा, राजनीति, शिक्षा, न्याय, संविधान आदि दृष्टि से परतन्त्र ही है। गुरुदेव ने वर्तमान में धर्म क्षेत्र में व्याप्त विकृतियों की पराकाष्ठा से दुःखी होकर कहा कि मैं धर्म युद्ध लड़ रहा हूँ जिसमें जिनवाणी सारथी, मैं अर्जुन व आप प्रगतिशील जन मेरी सेना हो। इस सन्दर्भ में आचार्य श्री ने आगम आज्ञा की प्ररूपणा करते हुए बताया-

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थ विप्लवे।

अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूप प्रकाशने॥ (ज्ञानार्णव)

इस विषय में गुरुदेव ने स्वमत परमत आदि का उल्लेख करते हुए कहा कि पञ्चम काल में लोग धर्म पाँच कारणों से पालन करते हैं-1.भय, 2.दाक्षिण्य, 3.कीर्ति, 4.लज्जा, 5.आशा, किन्तु इतनी विपरीत परिस्थितियों में भी जो धर्म पालन करते हैं वे धन्य हैं। इस अवसर पर गुरुदेव सृजित कृतिद्वय 1.तप-त्याग-शील गीता. 102, ग्रंथांक 315 व 2. आत्मा-अनात्म गीता.धारा 103, ग्रंथांक 316 का

विमोचन हुआ। गुरुदेव के शिष्य भक्तों ने स्वाध्याय के अनुभव व स्वरचित कविताओं के माध्यम से प्रभावशाली अभिव्यक्ति प्रस्तुत की। -श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

कलिकाल में जैन धर्मावलम्बियों में विकृतियाँ (आगम सम्मत जैन धर्म V/S भौतिकतामय जैनधर्म)

(चाल:-1.आत्मशक्ति!...2.क्या मिलिए...)

जैनधर्म है महान् धर्म...विश्व हितङ्कर (शाश्वत) आत्मिक धर्म...
अन्त्योदयी से सर्वोदयी धर्म...अनेकान्तमय शाश्वत धर्म...(ध्रुव)
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र धर्म...उत्तम क्षमादि दशधा धर्म...
उदार पावन स्वतन्त्र धर्म...अष्टमद सप्तभय रहित धर्म...
निःशंकित निःकांक्षित अमूढदृष्टि...उपगूहन स्थितिकरण अंग युक्त...
निर्विचिकित्सा व वात्सल्य युक्त...प्रभावना अंग सह सम्यक्त्व...(1)...
आत्महित हेतु है समस्त धर्म...ईर्ष्या तृष्णा व निदान रिक्त...
श्रावक व साधु धर्म सहित...देवशास्त्र गुरु श्रद्धा सहित...
दान पूजा मुख्य श्रावक धर्म...ध्यान अध्ययन मुख्य श्रमण धर्म...
न्याय उपार्जित धन दान योग्य...शक्ति अनुसार नवकोटि से देय...(2)...
आय के एक चतुर्थांश उत्तम दान...षष्टांश मध्यम दशांश जघन्य...
तन मन समय व श्रम से देय...नवधा भक्ति सप्तगुण सहित...
आहार औषधि अभय ज्ञान...उपकरण वसतिका दयादत्ति दान...
विधान पञ्चकल्याणक तीर्थयात्रा...मूर्ति मन्दिर निर्माण आदि पूजा...(3)...
ये सभी है आगमोक्त विधान...बोली याचना/(चन्दा) शास्त्र में नहीं वर्णन...
बोली आदि में नहीं पावन भाव...दबाव भय निदान भाव...
बोली का धन भी न देते शीघ्र...यह है निर्माल्य खाने का पाप...
धार्मिक सम्पत्ति को हड़प लेना...ये सभी है निर्माल्य खाना...(4)...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्याग...वर्चस्व आकांक्षा-निदान त्याग...
निस्पृह समता शान्ति सहित...होता धर्म वीतराग भाव सहित...
अभी धर्म करते उक्त भाव रहित...अधिकतर श्रावक व साधु तक...
बाह्य दिखावा हेतु करते धर्म...कट्टर सङ्कीर्ण पन्थ मत युक्त...(5)...

मोक्षपथ रहित पन्थवाद सहित...अनेकान्त रिक्त एकान्त सहित...
 वीतराग रहित वित्तराग सहित...निस्पृहता रहित आडम्बर सहित...
 आत्मदर्शन रिक्त प्रदर्शन युक्त...आत्मचिन्तन रिक्त परचिन्ता युक्त...
 प्रवचन रहित परवचन युक्त...सास बहू कथा मनोरञ्जन युक्त...(6)...
 धार्मिक कार्यक्रमों से न लेते ज्ञान...भोजन दिखावा में लगे मन...
 ताम झाम भीड़ व धन आय/(लाभ)...गाजा बाजा पाण्डाल का मजा...
 आत्म निर्माण रिक्त भौतिक निर्माण...संस्कार सदाचार न्यून...
 फैशन व्यसन दम्भ युक्त धर्म...दान दया सेवा परोपकार हीन...(7)...
 मैत्री प्रमोद कारुण्य साम्य रिक्त...वैर विरोध निन्दा फूट युक्त...
 कथनी करनी में नहीं साम्य...आत्मविशुद्धि रिक्त पाले धर्म...
 भाव अहिंसा बिन द्रव्य अहिंसा...संकल्प हिंसा युक्त काम अहिंसा...
 धार्मिक बिना जताते धार्मिक...दोष दूर हेतु काव्य रचा 'कनक'...(8)...

भयं दाक्षिण्य कीर्ति च लज्जया आशा तथैव च।

पञ्चभिः पञ्चमकाले जैनोधर्मः प्रवर्तते।। (प्राचीन श्लोक)

पञ्चम काल में लोग जैनधर्म को (1) लोकभय (2) अन्य का मन दुःखित न होने के लिए (3) कीर्ति (4) लज्जा (5) आशा (इच्छा, कामना, निदान, लोभ) से पालन करते हैं।

संदर्भ-

पञ्चमकाल में विशुद्धि की हीनता (काल प्रभाव)

सम्मविसोही तवगुणचारित्तं सण्णाण दाणं परिहीणं।

भरहे दुस्समकाले मणुयाणं जायदे णियदं।। (38) रयण.

अन्वयार्थ- (भरहे दुस्समकाले) इस भरत क्षेत्र के दुषमा काल में (मणुयाणं) मनुष्यों के (णियदं) निश्चयकर (सम्मविसोही) सम्यक् दर्शन की विशुद्धि (तवगुणचारित्तं) तप मूलगुण व चारित्र (सण्णाण) सम्यग्ज्ञान (दाणं) दान में (परिहीणं) हीनता (जायदे) होती है।

पद्य- भरत क्षेत्र में दुषमा काल में मनुष्यों में होते नीच गुण।

सम्यक्त्व विशुद्धि तप-गुण चारित्र सुज्ञान दान परिहीन।। (1)

संदर्भ-

(13) बछड़ों से वहन किये हुए रथ को देखने से बहुधा करके लोग तारुण्य अवस्था में संयम ग्रहण करेंगे किन्तु शक्ति के घट जाने से वृद्धा अवस्था में धारण नहीं कर सकेंगे।

(14) ऊँट पर चढ़े हुए राजपुत्र को देखने से ज्ञात होता है कि राजा लोग निर्मल धर्म को छोड़कर हिंसा मार्ग स्वीकार करेंगे।

रजसाऽच्छादित सद्व्रतराशेरी क्षणतो मृशम्।

करिष्यन्ति नपाः स्तेयां निर्ग्रन्थमुनयो मिथः॥ (47)

(15) धूलि से आच्छादित रत्नराशि को देखने से निर्ग्रन्थ मुनि भी परस्पर से निन्दा करने लगेंगे।

(16) काले हाथियों का युद्ध देखने से मेघ मनोभिलाषित नहीं बरसेंगे।

भद्रबाहु स्वामी के मुख से स्वप्न के विचित्र फल को सुनकर चन्द्रगुप्त मौर्य ने विशाल भारत का शासन छोड़कर भद्रबाहु स्वामी से निर्ग्रन्थ दिगम्बरी दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करके स्वर्ग सिधारे।

चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा देखे हुए स्वप्नों का जो फल भद्रबाहु स्वामी ने भविष्यवाणी रूप से जो घोषणा की थी वह घोषणा आज सत्य साबित हो रही है। चन्द्रगुप्त मौर्य का स्वप्न ही नहीं रहा किन्तु वास्तविक रूप में परिणमन होते हुए अनुभव में आ रहा है। तीसरे स्वप्न में चन्द्रमण्डल को बहुत छिद्र युक्त देखने का फल कलिकाल में जिनमत में अनेक मत, सम्प्रदाय पंथ प्रादुर्भाव होने का निर्णय भद्रबाहु स्वामी ने किया था। उसका वास्तविक रूप आज अहिंसा परायण साम्यवादी अनेकांत एवं स्याद्वाद के पुजारी जैनियों में अनेक मतभेद होते जा रहे हैं, जो धर्म समस्त विवादों का विनाशक एवं समता, एकता का विधाता था आज उसी धर्म में छोटी-छोटी बातों को लेकर तनाव, विवाद, मन-मुटाव, मुकदमा, शीतयुद्ध चल रहा है। इसमें केवल साधारण जैन ही भाग नहीं ले रहे किन्तु विशिष्ट श्रावक नेता, कर्णधार पंडित, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, मुनि, आर्यिका, उपाध्याय, आचार्य आदि भी सक्रिय भाग ले रहे हैं। पहले दीपक के नीचे अंधकार रहता था, किन्तु वैज्ञानिक युग में बल्ब, ट्यूब आदि के नीचे अंधकार है, इसी प्रकार पहले मिथ्या कुधर्म में विवाद आदि होता था परन्तु आज

जैन धर्म में भी अधिक विवाद हो रहा है, यह सब कर्म दोष से संकुचित स्वार्थान्ध मनोभाव से कलियुग के प्रभाव से हो रहा है। कलियुग की दयनीय परिस्थिति का चित्रण करते हुए चित्रकों ने यथार्थ ने कहा है-

सीदन्ति संतो विलसत्यसंतः पुत्रा प्रियन्ते जनकश्चिरायुः।

परेषु मैत्री स्वजनेषु वैरं पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि।।

हे विश्व के लोगों! कलिकाल के आश्चर्यपूर्ण कौतुक को देखिये! इस कलिकाल में सज्जन लोग दुःखित होते हैं तथा दुर्जन लोग प्रभाव को प्राप्त होते हैं, पुत्र का मरण होता है तथा पिता दीर्घजीवी होता है। दूसरों से मित्रता करते हैं तथा स्वजन से वैरभाव रखते हैं।

अनृते पटुता चौरै चित्तं सतामपमानता। (पुत्राः पितृद्वेषिणः)

मतिरविनये धर्मं शां गुरुष्वपि वंचना।।

ललित मधुर वाक् प्रत्यक्षे परोक्ष विभाषिणी।

कलियुग महाराजस्यैताः स्फुरन्ति विभूतयः।।

झूठ बोलने में चतुर, दक्ष, चोरी में दत्त चित्त, सज्जनों का अपमान, पुत्र पिता से द्वेष करने वाला, अविनीत मति, धर्म में शठता (मायाचारी) गुरु की भी वंचना, प्रत्यक्ष में ललित मधुर वचन बोलना एवं परोक्ष में विपरीत भाषण करना यह सब कलियुग महाराज के वैभव का विस्तार है।

धर्मः प्रज्वलितस्तपः प्रचिलितं, सत्यं च दूरे गतं।

पृथ्वी मन्दफला नृपोऽति कुटिलो, लौल्यं गता ब्राह्मणाः।।

लोकोः स्त्रीषुरताः स्त्रीयोऽति चपलाः शास्त्रागमे विप्लवः।

साधुः सीदति दुर्जनः प्रभवति प्रायः प्रविष्टे कलौ।।

कलिकाल के प्रवेश से धर्म एवं प्रज्ज्वलित तप चलायमान हो जाते हैं, सत्य दूर भाग जाता है, पृथ्वी कम फल देने वाली हो जाती है, राजा अत्यन्त कुटिल तथा ब्राह्मण अत्यन्त लोलुपी हो जाते हैं, लोग स्त्री में आसक्त रहते हैं, स्त्री अत्यन्त चंचल हो जाती है, शास्त्र-आगम में अनेक विप्लव होते हैं, साधु दुःख पाते हैं, दुर्जन लोग प्रभाव को प्राप्त करते हैं।

निर्वीर्यो पृथिवी, निरोषधिरसो, नीचा महत्वं गताः।
 भूपाला निज कर्म धर्म रहिता, विप्राः कुमार्गे रताः॥
 भार्या भर्तृ विरोधिनी पररता, पुत्राः पितृद्वेषिणो।
 हा कष्टं खलु वर्तते कलियुगे धन्या नराः सज्जनाः॥

दुःख की बात है कि कलियुग में पृथ्वी वीर्यहीन (सारहीन) हो जाती है, रस, प्राण-शक्ति को देने वाली औषधि से रहित पृथ्वी हो जाती है, नीच लोग महत्व को प्राप्त हो जाते हैं, राजा लोग स्व-कर्तव्य एवं धर्म से रहित हो जाते हैं, ब्राह्मण लोग कुमार्ग में गमन करते हैं, स्त्री (भार्या) पति विरोधिनी होकर पर पुरुष में रत होती है, पुत्र पिता के द्वेषी हो जाते हैं। इसी प्रकार भयंकर कलियुग में जो नर धर्म, नीति, नियम को पालन करते हैं, वे धन्य हैं।

कलिकाल में धर्म करने वाले धन्य

धन्या भारतवर्ष संभवजना योऽद्यापि काले कलौ।

निस्तीर्थेश्वर केवले निरवद्यो भ्रश्यन्मनः पर्यये।

त्रुट्यच्छ्रोत्र विशेष संपदि भव दौर्गत्य दुःखापदि।

श्री जैनेन्द्रवचोनुरागवशतः कुर्वित धर्मोद्यमम्॥

वर्तमान घोर पंचम कलिकाल में तीर्थंकर, केवली, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानियों का अभाव है, योग्य श्रोताओं का भी अभाव है, विशेष वैभव से रहित, दरिद्रता आदि संकट से सहित कलियुग के मनुष्य हैं। इसी प्रकार विपरीत कलियुग में भी जिनेन्द्रदेव के वचनानुसार धर्म में उद्यत होते हैं वे अत्यन्त अभिनंदनीय, अभिवंदनीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं।

प्राचीन काल में अर्थात् चतुर्थ काल में धर्म साधन के अनुकूल परिस्थिति थी। इसलिये उस समय में धर्म का आचरण करना सरल साध्य था, परन्तु वर्तमान पंचम काल में विपरीत परिस्थिति में धर्म आचरण कष्ट साध्य है। जैसे अनुकूल जल के स्रोत में नौका को खेकर ले जाना सरल सहज है, परन्तु प्रतिकूल स्रोत में नौका को खेकर ले जाना श्रम साध्य है। जो प्रतिकूल स्रोत में एवं तूफान के समय में नौका को खेकर अपने गंतव्य स्थान में बढ़ते हैं, वह जैसे धन्यवाद के पात्र हैं उसी प्रकार

उपर्युक्त कलिकाल में जो धर्म का श्रद्धापूर्वक, विवेकपूर्वक पालन करते हैं वे धन्य हैं। कलिकाल में अधिकांश लोग श्रद्धा, विवेक एवं आत्मकल्याण की बुद्धि से रहित होकर धर्माचरण अहंकार की पुष्टि, ख्याति, लाभ, कीर्ति के लिये करते हैं। पूर्वाचार्यों ने कहा भी है-

भयं दाक्षिण्य कीर्ति च लज्ज्या आशा तथैव च।

पचभिः पंचमेकाले जैनो धर्मः प्रवर्तते।।

पंचम काल में लोग जैन धर्म को (1) लोकभय (2) अन्य का मन दुखित न होने के लिये (3) कीर्ति (4) लज्जा (5) आशा से पालन करेंगे।

श्रद्धा, विवेक आत्म विशुद्धि से रहित होकर कुछ संकुचित स्वार्थनिष्ठ मनोभाव से धर्माचरण के कारण जब उस संकुचित स्वार्थ निष्ठभाव को धक्का लगता है, तब वे धर्म से उस प्रकार टूट पड़ते हैं जिस प्रकार रत्न के समान प्रतिभाषित काँच थोड़े से धक्के के कारण टूटकर नीचे गिर पड़ता है, परन्तु यथार्थ धर्मात्मा होता है वह सामान्य प्रतिकूल अवस्था से प्रतिघातित होकर धर्म च्युत नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि जो छोटी-छोटी बातों को लेकर धर्म में कलह उत्पन्न करके धर्म, समाज, राष्ट्र देश में फूट डालकर आतंकवाद मचा देते हैं वे यथार्थ से धर्मात्मा नहीं हैं।

सुजणो वि होइ लहुओ दुज्जणसंमेलणाए दोसेण।

माला वि मोल्लगरुया होदि लहू मडयसंसिद्धा।। (347)

दुर्जनों की गोष्ठी के दोष से सज्जन भी अपना बड़प्पन खो देता है। फूलों की कीमती माला भी मुर्दे पर डालने से अपना मूल्य खो देती है।

दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण।

णाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव।। (348)

दुर्जन के संसर्ग से लोग संयमी के भी सदोष होने की शंका करते हैं। जैसे मद्यालय में बैठकर दूध पीने वाले बाह्याण के भी मद्यपायी होने की शंका करते हैं।

परदोसगहणलिच्छो परिवादरदो जणो खु उस्सुणं।

दोसस्थाणसं परिहरह परिवादरहो जणो खु उस्सुणं।

दोसस्थाणं परिहरह तेण जणजंपणोगोसं।। (349)

लोग दूसरों के दोषों को पकड़ने के इच्छुक होते हैं और परोक्ष में दूसरों के दोषों को कहने में रस लेते हैं। इसलिए जो दोषों का स्थान है उनसे अत्यन्त दूर रहो क्योंकि ऐसा न करने से लोगों को अपवाद करने का अवसर मिल जाता है।

अदिसंजदो वि दुज्जणकरण दोसेण पाउणइ दोसं।

जह घूकए नोसे हंसो या हओ अपावो वि।। (350)

महान् संयमी भी दुर्जन के द्वारा किए गए दोष से अनर्थ का भागी होता है। जैसे उल्लू के द्वारा किए गए दोष के लिए निर्दोष हंस भी मारा गया।

दुज्जण संसग्गीए वि भविदो सुयणमज्झयारम्मि।

ण रगदि रगदि य दुज्जणमज्झे वेरग्गमवहाय।। (351)

दुर्जनों की संगति से प्रभावित मनुष्यों को सज्जनों का सत्संग रुचिकर नहीं लगता। यह वैराग्य को त्यागकर दुर्जनों में ही रमता है। मन की पवित्रता और कर्मों की पवित्रता आदमी की संगति की पवित्रता पर निर्भर है। पवित्र हृदय वाले पुरुष की संगति उत्तम होगी और जिसकी संगति अच्छी है वो हर प्रकार का गौरव प्रदान करती है।

धर्म मनुष्यों को स्वर्ग ले जाता है और सत्पुरुषों की संगति उसको धर्माचरण में रत करती है।

सम्यक्त्व रहित जीव का लक्षण

उग्गो तिव्वो दुट्ठो दुब्भावो दुस्सुदो दुरालावो।

दुम्मदरदो विरूद्धी सो जीवो सम्मउम्मुक्को।। (43) रयण।

अन्वयार्थः-(उग्गो) उग्र (तिव्वो) तीव्र (दुट्ठो) दुष्ट (य) और (दुब्भावो) दुर्भावना वाला (दुस्सुदो) दुश्रुत (दुरालावो) दुर्भाषण-मिथ्या भाषण (दुम्मदरदो, मिथ्यामद में अनुरक्त (विरूद्धो) विरोध वाले (सो) वह (जीवो) जीव (सम्मउम्मुक्को) सम्यक्त्व गुण से विमुक्त है।

पद्य- उग्र तीव्र-दुष्ट-दुर्भाव-दुश्रुत, दुर्भाषण, दुर्मदरत (जीव)।

होता है सम्यक्त्व रहित जो विरोध से सहित।। (1)

क्षुद्र स्वभावी व दुर्भावना युक्त जीव सम्यक्त्व हीन हैं

खुद्वो रुद्वो रद्वो अणिद्वपिसुणा सग्गत्थि असूयो।

गायण जायण भंडण दुस्सुणसीलो दु सम्मउम्मुक्को।। (44) रयण.

अन्वयार्थः—(खुद्वो) क्षुद्र (रुद्वो) रौद्र (रुद्वो) रुष्ट (अणिद्व) अनिष्ट (पिसुणा) चुगलखोर (सग्गत्थि) अभिमानी (असूयो) ईर्ष्यावाला (गायण) गाना गाने वाला (जायण) याचक (भण्डण) झगड़ा करने वाला (दु) और (दुस्सुणसीलो) अनेक दूषण युक्त (सम्मउम्मुक्को) ऐसे परिणाम वाला मनुष्य प्राणी सम्यक्त्व गुण रहित होता है।

पद्य- क्षुद्र, रौद्र, रूष्ट-अनिष्ट-पैशुन्य, अहंकारी-ईर्ष्या युक्त।

गायक, याचक, कलह, युक्त, दूषण युक्त वह सम्यक्त्व मुक्त।। (1)

जिन धर्म विनाशक जीवों के स्वभाव

वाणर गद्दह साण गय वग्घ वराह कराह।

पक्खि जलूय सहावणर जिणवरधम्म विणासु।। (45) रयण.

अन्वयार्थः—(वाणर) बंदर (गद्दह) गर्दभ (साण) कुत्ता (गय) हाथी (वग्घ) व्याघ्र (वराह) शूकर (कराह) ऊँट (पक्खि) पक्षी (जलूय) जलोक (सहावणर) स्वभाव वाले मानव (जिणवरधम्म विणासु) श्रेष्ठवर जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए धर्म का विनाश करने वाले होते हैं।

पद्य- वानर, गर्दभ, कुत्ता, हाथी, व्याघ्र, शूकर, ऊँट, पक्षी।

जोंक स्वभाव वाले मानव होते हैं जिनेन्द्र धर्म ध्वंशी।। (1)

सम्यक्त्व की हानि का कारण

कुतव कुलिंग कुणाणी कुवय कुसीले कुंदसण कुसत्थो।

कुणिमित्ते संथुय थुइ पसंसणं सम्महाणि होइ णियमं।। (46) रयण.

अन्वयार्थः—(कुतव) कुतप (कुलिंग) निर्ग्रथ दिग्बरत्व को छोड़कर अन्य प्रकार के भेष को धारण करने वाले (कुणाणी) कुज्ञानी अर्थात् आत्ममुक्ति का सच्चा ज्ञान नहीं है (कुवय) कुव्रत अर्थात् जिस व्रतों में कर्म निर्जरा पाप नाश आदि नहीं है, जिसमें शुद्ध चारित्र नहीं है (कुसील) शील भ्रष्ट (कुसत्थो) कुशास्त्र अर्थात् मनोवांछित

तथा मनोकल्पित शास्त्र समझकर रचना करना अर्थात् जिसमें केवली भगवान् सर्वज्ञ देव का उपेदश नहीं है ऐसे (कुनिमित्ते संथुइ थुइ पसंसण) कुदेव कुशास्त्र कुगुरु कुधर्म की स्तुति प्रशंसा करने से (णियम सम्म हाणि होदि) नियम से सम्यक्त्व की हानि होती है।

पद्य- कुतप, कुलिंग, कुज्ञानी, कुव्रत, कुशील, कुदर्शन, कुशास्त्र।

कुनिमित्त से स्तुति, प्रशंसा करे जो, सो सम्यक्त्व करे विनाश।।

चातुर्मास में हजारों का कलश लाखों में आज मिलता क्या है?

साल के चार माह, तैंतीस फीसदी समय एक ही जगह सब ज्ञानगंगा की प्रवाह नदी की तरह बहने से ठहरकर तालाब का रूप ग्रहण कर लेता हैं। अपने आसपास जमकर बरसता है, जिसमें खुद भी भीगता है और औरों को भी भिगोता है। यह बरसों की कहानी है, जो देखने में कम सुनाने में ज्यादा आती है। प्रवचन शृंखला हो गई, पांच-छः बड़े-बड़े अपने अपने मूँछ के अनुसार कार्यक्रम हो गए, बीच में अगर कोई अपनी या अपने गुरु की जयति आ गई तो वो धूमधाम से मना ली।

कलशों की दुकान सजाकर बोली से खरीदारी

कई जगह कलशों की भीड़ लगा दी जाती है और दुकान से बीके कलशों की यहाँ फिर खरीदारों के बीच बोलियाँ लगा दी। चातुर्मास में तो हर मंदिर में कलशों की एक दुकान लग जाती हैं और खरीदार को चार माह बाद वो माल मिल जाता हैं। आज कलशों की बस इतनी अहमियत रह गई हैं कि पांच से पचास हजार का दुकान से लो और इससे बीस गुना दाम पर मंदिर में बेच दो। कड़वी भाषा है पर उतनी ही कड़वी हकीकत है। आप सबमें, ज्ञानवृद्ध गणिनी आर्यिका ज्ञानमति माताजी की बात दोहराऊं तो आज जब वे 65 से ज्यादा चातुर्मास कर चूकी है। वर्तमान में उनसे ज्यादा किसी भी त्यागी के नहीं है। उन्होंने आ.श्री शातिसागरजी आ.श्री वीरसागरजी, आ.श्री शिवसागरजी आ.श्री धर्मसागरजी के संघ में रहकर देखा पर इन महान् संतो ने कलश स्थापना नहीं की पर आज तो एक-दो से संतुष्टी नहीं। मेरी धोती से तेरी धोती सफेद क्यों। हमारे यहाँ आपसे कलश कम क्यों? यही नहीं आपके

यहाँ की बोली से मेरी बड़ी क्यों नहीं। बुरा ना मानिए, आज तो आपनी नाक के लिए बोलियाँ तक सेट की जाने लगी है। जब प्रवचन नहीं, घर-घर के किस्से पसंद हैं हमे, कलशों के बाद ज्ञान की धारा में डूबकी लगाते हैं। हाँ, यह पहले कह दे कि हर बात के अपवाद भी होते हैं पर जो ज्यादा होता है उसे ही कहना पड़ता है।

स्वाद प्रवचनों का

कड़वी हकीकत यह भी है कि अगर संत केवल आत्मकल्याण के, आगम अनुसार गंभीर प्रवचन करने लगे, तो सामने बैठनेवाले चंद श्रावक ही होंगे। हाँ, यह भी सच है कि हमें आज ज्ञान से ज्यादा अपनी रोज-मर्रा की बातों में ही मजा आता है। जब तक प्रवचन में कोई ग्लैमरस कहानी, रविवारीय पत्रों पर आनेवाले चूटकलों, घर-घर की कहानी की दास्तां न हो वो आज की भाषा में प्रवचन नहीं कहा जाता। ऐसे प्रवचनों में हम कर्मों की निर्जरा कम अर्जन ज्यादा करते हैं। हम कभी महाराज को अपनी शक्ति दिखाने आते हैं तो कभी उनकी देखने। तो अब जब स्वाध्याय जैसे शब्दों संत और विद्वानों के बीच सिमट कर रह गए हैं तब हमें तप त्याग से ज्यादा राग में मजा आता है।

चातुर्मास बन गया लाखों-करोड़ों का इवेंट

प्रतिस्पर्धा का आलम आज यहां तक नाक से ऊपर पहुंच गया है कि चातुर्मास समिति हो या फिर वर्षायोग करनेवाला संत या फिर दोनों का योग इसको अधिकांश ने एक प्रोजेक्ट बनाकर रख दिया है। आज चातुर्मास का सीधा संबंध धर्म-ध्यान से न होकर धन-मान से हो गया है। जैसे धनाढ्य परिवारों में विवाह जैसे महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यक्रम को बाहरी इवेंट कंपनी को सौंपकर स्नेह, वात्सल्य, अतिथि देवो भवः जैसी की तरह किया जाने लगा है। सजावटों, बड़े पंडालों, रईसी खानपान के बीच सभी बाहरी दिखावों का आडंबर बनाकर रख दिया है हम लोगों ने। कोई बाहरी व्यक्ति इसके लिए दोषी नहीं है। अतित में वर्ष का श्रेष्ठतम धार्मिक काल कहलाया जाने वाला आज दिखावे की चकाचौंध में नोटों की गड्डियों की तुला पर सफलता का पैमाना बन गया है।

बड़े प्रोजेक्टों का प्रोफेशनल कलेक्शन-

हो सकता है आप इससे इन्तेफाक ना रखे, पर ऐसे अनेक चातुर्मास होते हैं,

जिनका लक्ष्य ही एक बड़ा कलेक्शन होता है। आज तो कई संत अपने-अपने धाम और प्रोजेक्ट चला रहे हैं। एक बार भी इन पर विराम लगानी होगी। शहरों में देखा भी होगा कि रोजाना सप्लाय करनेवाली जल की पाइप लाईन में कुछ समय जल को रोककर उसकी सफाई और मरम्मत करनी पड़ती है वरना जंग और लीकेज उस पानी को हानिकारक नुकसान का कारण बना देती है। इसी तरह अब अपने समाज में ऐसे प्रोजेक्टों पर से विराम लगाने का समय आ गया है। वरना, इनके नाम पर अनाफ सनाफ तरीके से कमाया पैसा बटोर लिया जाता है और एक नये प्रोजेक्ट की नींव डाल दी जाती है, फिर काफी समय तक उसके नाम पर दोहन जारी रहता है। इस लगाम लगाने के लिए समाज समितियों को आगे आना होगा।

एक साथ सब मिलकर बोलो जैनधर्म की जय जय।

जी हाँ, अब वक्त आ गया है जब जोर शोर से बोले जा रहे जैन धर्म की जय जय जय। जैसे नारे बेमानी हो गए हैं। आज मंच, माइक, माला की पहल धर्म के लिए नहीं धर्म के नाम पर नहीं, धन-धनादन-धन के लिए ही होती है। जितना बड़ा दान उतना बड़ा सम्मान। त्यागी व्रती को दरकिनार कर दिया जाता है और ऊंची बोली लगानेवालों को सिर पर रखा जाता है उनको खूब आशीर्वाद भी देते हैं। परिग्रह से दूर रहने वाले संत उनके चेहरे पर ऐसे धन्नासेटों को देखते ही अनायास मुस्कराहट झलक जाती है। आज धर्म की पीठ पर धन की गड्डी को खड़ा किया जाता है।

जो त्याग के मार्ग पर आगे बढ़े उनको दशलक्षण के बाद कहीं कहीं तिलक से सम्मान जरूर मिलता है वरना पूरा चौमासा धन की जयकारों से शुरू कर उसी पर समाप्त होता है। धर्म में धन का उतना ही योग हीतकर हैं जितना आटे-दाल में नमक का वरना एक बार नमक-नमक के बीच दाल के चंद दाने खाकर देखिए ठीक वैसा ही स्वाद हमने आज धर्म का कर दिया है। इस धर्म से धर्म के असली स्वाद को कभी खाकर देखने की कोशिश नहीं की हमने।

तप त्याग से ज्यादा राग, परिग्रह की पुष्टि-

दस धर्म साल में तीन बार में से एक बार इसी वर्षायोग के दौरान भी आते हैं। वैसे हम यहीं याद रहते, शेष दो तो पूजन, पाठ, में ही दबे रहते हैं। न संत उसको प्रकाश में लाते हैं, न हम श्रावकों को उस सुगंध को लेने की चाहत होती है। चातुर्मास

का काल, धर्म ध्यान, तप-त्याग के लिए आता है पर हकीकत में यह राग, परिग्रह को बढ़ाने का केन्द्र बना देते हैं हम लोग।

हकीकत में आज हम धर्म और भगवान् के प्रति संवेदनशील हैं, पर उनके अनुयायियों संतों के प्रति नहीं। हम भगवान् को मानते हैं, पर उनकी नहीं मानते। आज हम आत्मा के बाहरी आवरण के प्रति शरीर के प्रति जो संवेदनशील हैं, पर अंतरात्मा के प्रति नहीं। जिस दिन हम बाहर से अंदर की यात्रा करनी शुरू करेंगे तब असली मायने में चातुर्मास करना सार्थक होगा।

आज हमारी सोच अहिंसा के प्रति नकारात्मक हो गई है। बात-बात पर हिंसा की देख लेने की बात करते हैं। आज भौतिकता की अंधी दौड़ में भागे जा रहे हैं। जिसमें धर्म के प्रति हमारा लगाव छूट गया है। हमें पता ही नहीं चलता। आईए लौट चले अपने पुराने सनुहरे अतित के पलों में। एक सच्चे चातुर्मास के आनंद में।

साभार-(जैनमित्र) ता.18-7-2019

भारत की पावन धरा पर विद्यमान सर्व आडम्बरों से रहित एक अत्यंत निस्पृहि-महाज्ञानी दिगम्बर जैन सन्त

सन् 1978 से संयम मार्ग पर आरूढ़ 42 वर्ष से साधनारत स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिकधर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज जिनके ज्ञान बल योग्यता के समकक्ष वर्तमान में इस सम्पूर्ण विश्व में अत्यंत दुर्लभ ही महापुरुष होंगे।

आप जैनागम-विज्ञान-आध्यात्म-गणित के श्रेष्ठ पंडित 30 भाषाओं में पारंगत, 6500 आध्यात्म रस से परिपूर्ण कविताओं व 350 साहित्यों की रचना करने वाले वर्तमान में इस सम्पूर्ण विश्व में एकमात्र हस्ती श्री दिगम्बर जैनाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज हैं जिनकी साहित्य व काव्य सृजनता आगे भी यथावत है।

इतने महान् विश्वोत्तम सन्त होते हुए भी अत्यंत सहज, सुलभ, एकांत प्रिय, आडम्बर रहित, छोटे से छोटे गाँवों में विहार करने वाले महामनस्वी जिनके सानिध्यता का लाभ छोटा सा बच्चा भी सरलता से पा जाता है, आइये जाने ऐसे सर्वश्रेष्ठ जैनाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज की वर्तमान में धर्म में समा चुके प्रदर्शनों व आडम्बरों का विनाश करते हेतु अनेक वर्षों पूर्व से ली हुई प्रमुख क्रांतिकारी प्रतिज्ञाएँ-

1. निमंत्रण पत्रिकाओं-बड़े बड़े होल्डिंग-निमंत्रण कार्ड छपवाने का त्याग।
2. जन्म जयंती मानने का त्याग-जब जन्म जरा मरण के विनाश के लिए व मोक्ष हेतु सन्त बना हूँ इसलिए जन्म जयंती भी नहीं मनाते।
3. याचना व भौतिक निर्माण कराने का त्याग-मैं मुमुक्षु-भिक्षुक हूँ मैं भिखारी नहीं, सर्व परिग्रह त्यागी साम्यधारी अतः कोई याचना-चन्दा नहीं व भौतिक निर्माण हेतु कुछ भी नहीं।
4. भेदभाव, विद्वेष, विघटनपूर्ण व्यवहार कदापि नहीं-जब कोई प्रपंच व आवश्यकता ही नहीं तो क्या गरीब-क्या अमीर-क्या छोटा-क्या बड़ा सबके प्रति समतापूर्ण भाव साथ ही समाज में विभाजन हो ऐसा कोई व्यवहार नहीं, पर संघ-सन्त निंदा नहीं करना।
5. ढोंग पाखंड-दबाव-प्रलोभन आदि से दूर-भय रहित निर्भय किसी धनपति-संघपति-ब्रह्मचारी-आर्यिका-मुनि का कोई दबाव या अधिपत्य नहीं, आगमनुकूल स्वसंघ नियमानुसार।
6. वर्षायोग स्वीकृति हेतु कोई प्रदर्शन नहीं-सिर्फ एक परिवार के भी अत्यंत अल्प निवेदन पर अनेक महीनों पूर्व से ही स्वीकृति। वर्षायोग निवेदन में समाज बसें बसें भर भर कर जितना अपव्यय करती हैं उससे आधे व्यय में पूरा वर्षायोग हो सकता है, साथ ही ऐसे निवेदन प्रदर्शनों से समाज व अन्य सन्तों संघ को उस नगर में वर्षायोग करने व कराने में अस्पष्टता की दुविधा बनी रहती है।
7. गृहस्थों से कोई सांसारिक चर्चा नहीं, 5 प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर मौन।
8. अत्यंत निस्पृह प्रवृत्ति में रहना व संघ को रखना वर्षायोग में किसी प्रकार की बोली व धर्म में धन के बाजारवाद वगैरह की भी आवश्यकता नहीं हो इसलिए सामान्य से एक परिवार के आग्रह या छोटे से गाँव या हल्दीघाटी जैसे एकांत स्थानों पर वर्षायोग।
- अभी तक 7 चातुर्मास एकान्त (जंगलों) जंगल व गाँव के एक परिवार द्वारा हो चुके हैं।
9. सर्व विधाओं में महा पारंगत होते हुए भी पंचकल्याणकों, बड़े- बड़े

विधानों से प्रायः स्वयं को दूर रखते हुए अध्ययन-ध्यान-शिक्षण व लेखन में रत रखते हैं क्योंकि अब ये बड़े आयोजन आत्मविशुद्धि की जगह प्रदर्शन-अपव्ययों-धन संग्रह-नाक मूँछ सम्मान व सामाजिक विघटन के ही केन्द्र बन चुके हैं।

इस तरह जैनागम के महान् सिद्धांतों को पढ़ने व पढ़ाने के साथ आत्मसाथ करते हुए धर्म में व्याप्त हो चुके आडम्बरों के नाश हेतु मौन क्रांति का संचार कर रहे हैं।

अद्भुत आश्चर्य ऐसे सरल परिणामी निर्मल आत्म धनी आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज छोटे से सामान्य स्थानों में रहते हुए भी उनके द्वारा रचित साहित्यों पर विश्व के 5 महाद्वीपों के विश्व विद्यालयों में शोध शिक्षण होता है, आपके दिग्म्बरों के अलावा अनेकानेक श्वेताम्बर, हिन्दू मुस्लिम अति उच्च शिक्षाविद् भक्त हैं जो आपकी विलक्षणता को जानते हुए वर्षों से समय समय पर अध्ययन व मार्गदर्शन लेने आते हैं।

आचार्य भगवन्त ससंघ अभी राजस्थान राज्य, डूंगरपुर जिले के सागवाड़ा से 8 किमी दूर नंदौड़ ग्राम में विद्यमान हैं, जिसमें एक ही जैन परिवार में आचार्य श्री संघ का तृतीय चातुर्मास चल रहा है एवं आगे भी चातुर्मास हेतु निवेदन है।

जैन दर्शन की चलती फिरती विशाल लाइब्रेरी के सम ज्ञानी वर्तमान में विद्यमान ऐसे विश्वोत्तम महामनस्वी स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिकधर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज को कोटिशः नमन।

शब्दसुमन-शाह मधोक जैन, चितरी

विशेष-आचार्य श्री मध्याह्न में सामायिक से लेकर 3 बजे तक व रात्रि में सामायिक से प्रातः काल तक एकान्त मौन में साधना रत रहते हैं। अतः इस समय में दर्शनार्थी व शिक्षार्थी को लाभ नहीं मिलता।